आदर्श गार्हस्थ्य जीवन

ओ३म्

आदर्श गार्हस्थ्य जीवन

लेखक—
आचार्य भद्रसेन
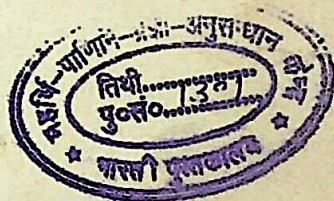
सम्पादक—
राजपाल सिंह शास्त्री

प्रकाशक :
वैदिक-प्रकाशन
आर्य समाज मन्दिर, बाजार सीताराम
दिल्ली-११०००६

प्रथम संस्करण दिसम्बर १९८९ मूल्य अजिल्द २२-००

दो शब्द

मानव अपने जीवन को सुखमय बनाना चाहता है। प्रत्येक नर-नारी सुख प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील है। अहर्निश उसका यही प्रयत्न रहता है कि वह अधिक-से-अधिक सुख तथा शान्ति प्राप्त करे। वास्तव में संसार में आकर ऐहिक सुख तथा पारलौकिक आनन्द को प्राप्त करना ही मानव-मात्र का परम लक्ष्य है। इसीलिए विश्व में मानव का अवतरण हुआ है। गृहस्थाश्रम ही उपर्युक्त दोनों प्रकार के सुखों को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। गार्हस्थ्य जीवन में रहते हुए हम सब प्रकार के सुख भोगों को तो भोग ही सकते हैं—साथ ही, यदि चाहें तो, पारलौकिक परमानन्द को भी इसी आश्रम में प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु यह तभी सम्भव है; जबकि हमारा यह गृहस्थाश्रम एक आदर्श गृहस्थ आश्रम बने—हमारा गार्हस्थ्य जीवन वास्तव में एक गार्हस्थ्य जीवन हो।

हम गार्हस्थ्य जीवन की महान् तथा उदात्त मर्यादाओं का जितना पालन व अनुसरण करेंगे तथा तदनुकूल इस गार्हस्थ्य जीवन का निर्माण करेंगे—दूसरे शब्दों में इसे 'आदर्श गार्हस्थ्य जीवन' बनायेंगे—उतना ही यह गृहस्थ जीवन हमारे लिए सुख व शान्ति का स्रोत बन जायेगा। इसके विपरीत यदि हमने गृहस्थाश्रम की पवित्र मर्यादाओं का पालन न किया, उनकी अवहेलना तथा उल्लंघन ही करते रहे, तो निश्चय समझिये कि सकल सुखों का दाता होते हुए भी स्वर्गसम यह गार्हस्थ्य जीवन हमारे लिए दुःखदायी नरक बन जायेगा। हमें वह पूर्ण सुख तथा परम शान्ति कदापि प्रदान न कर सकेगा, जिसके लिए इस आश्रम का विधान हुआ है।

इस ग्रन्थ में मैंने अथर्ववेद के एक मन्त्र के आधार पर उपर्युक्त मर्यादाओं एवं आदर्शों की विशद व्याख्या की है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि यदि पाठक-पाठिकाओं ने ग्रन्थ में वर्णित मर्यादाओं व आदर्शों का पालन किया तथा उन्हें अपने जीवन में चरितार्थ किया, तो उनका यह गार्हस्थ्य जीवन सुखों का भण्डार अर्थात् स्वर्गमय बन जायेगा। वे इस गार्हस्थ्य जीवन के सब प्रकार के ऐहिक सुखों का भोग करते हुए अन्त में परमानन्द के भी भागी बनेंगे।

—लेखक

लेखक-परिचय

इस पुस्तक के लेखक आचार्य भद्रसेन जी वेद व संस्कृत वाङ्मय के प्रकांड विद्वान् थे। संस्कृत के अतिरिक्त आप हिन्दी, मराठी, उर्दू और फारसी के भी विद्वान् थे। पश्चिमी पंजाब में टोबा टेकसिंह से कुछ मील दूर एक छोटे-से ग्राम में आपका जन्म हुआ था।

कुमार अवस्था में वैदिक धर्म ग्रहण करते ही उनकी ज्ञान-पिपासा बढ़ती गई। घर-बार छोड़कर वेद-शास्त्रों के व संस्कृत के पठन-पाठन के लिए कई गुरुओं व आश्रमों में गये। अन्त में देश के विख्यात राष्ट्रीय विद्वान् श्री पं० ब्रह्मदत्त जी जिज्ञासु के चरणों में बैठकर ज्ञान के गहरे सागर में डुबकी लगाई। काशी में दर्शनों का अध्ययन किया।

वीतराग स्वामी सर्वदानन्द जी के सत्संग से योग में अभिरुचि बढ़ी। लोणावाला के प्रसिद्ध योग संस्थान (कैवल्यधाम) में कई वर्ष निवास करके योग साधना करते रहे। अजमेर को केन्द्र बनाकर आपने अपना जीवन देश व समाज की सेवा के लिए समर्पित कर दिया। वेद प्रचार, संस्कृत प्रचार, योग विद्या के प्रचार, कुरीति उन्मूलन, दलितोद्धार और जाति भेद निवारण के लिए आपने अर्द्ध शताब्दी से ऊपर सतत साधना की। संस्कृत के कई विद्वानों ने आपके चरणों में बैठकर देववाणी की शिक्षा प्राप्त की। योग विद्या के लिए आप भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद द्वारा सम्मानित हुए।

आप मन, वचन और कर्म से एक थे। आपने किसी भी विरोध की परवाह न करते हुए जाति-बंधन तोड़कर अपना विवाह किया।

मलकाना राजपूतों की शुद्धि के आन्दोलन में आपको स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज के नेतृत्व में सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।

कई मौलिक ग्रन्थों के लेखक आचार्य भद्रसेन एक आदर्श गृहस्थी थे। सुशिक्षित सन्तान के पिता आचार्य भद्रसेन जी ने लगभग ७५ की आयु में १९७५ में देह का त्याग किया। वे बड़े भाग्यशाली थे कि उनके सुपुत्रों में उनकी सेवा-शुश्रूषा के लिए होड़ लगी हुई थी। जन-जागरण व समाज सेवा के लिए इस तपस्वी ने जो कठोर कष्ट सहे, उनका वर्णन करते हुए भी आज हृदय कांप उठता है। अपने जीवन में उन्होंने सैकड़ों प्रेरणाप्रद व खोजपूर्ण लेख लिखे और एक दर्जन के लगभग उत्तम पुस्तकों का प्रकाशन किया। अपने तपोबल से आगे बढ़ने वाले आचार्य भद्रसेन जी का जीवन हम सब के लिए प्रेरणाप्रद है।

—राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

प्राक्कथन
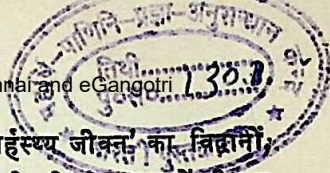
आचार्य भद्रसेन जी द्वारा लिखित 'आदर्श गार्हस्थ्य जीवन' का विद्वानों, नेताओं व जन-साधारण में बड़ा प्रचार हुआ। उनके जीवन काल में ही इस पुस्तक के एक से अधिक संस्करण निकल गये। जनता में इसकी मांग को देखते हुए 'वैदिक-प्रकाशन' इसका नया संस्करण आपके हाथों में पहुंचा रहा है।

गृहस्थ के विषय में उत्तम, स्वस्थ व उपयोगी साहित्य की प्रत्येक देश व प्रत्येक काल में मांग रही है और आगे भी रहेगी। उत्तम साहित्य के अभाव में और कुछ अज्ञानवश लोग घटिया पुस्तकों के चक्करों में पढ़कर हानि उठाते हैं। आचार्य जी की यह पुस्तक ऐसी है कि विवाह योग्य प्रत्येक युवक-युवती को जो गृहस्थ में प्रवेश कर चुके हैं, उन्हें भी इसका अध्ययन करना चाहिए।

प्रत्येक व्यक्ति को, जो अपने गृहस्थ को सुखमय व सफल बनाना चाहता है, उसे इस पुस्तक से एक नई दिशा व स्फूर्ति मिलेगी। यह पुस्तक किसी मत विशेष व देश विशेष के लोगों के लिए नहीं लिखी गई। किसी भी देश व किसी भी विचार का व्यक्ति इसके पठन-पाठन से लाभान्वित होगा। विद्वान् लेखक ने अथर्ववेद के एक मन्त्र को लेकर आदर्श गृहस्थ के प्रत्येक पहलू पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला है। पुस्तक ज्ञानवर्द्धक व प्रेरणाप्रद है।

आचार्य जी ने कुछ रोगों के लिए कुछ अचूक व अनुभूत आयुर्वेदिक औषधियों का वर्णन करके पुस्तक के महत्त्व को बढ़ा दिया है।

ऐसा करना आवश्यक भी था। कई बार अज्ञानवश या लज्जावश सामान्य रोगों से या कल्पित रोगों से ग्रसित युवक-युवतियां अनाड़ी व धनलोलुप वैद्यों, हकीमों व डाक्टरों के पंजे में फंसकर बड़ी हानि उठाते हैं।

ध्यान रहे कि यह पुस्तक उन लोगों के लिए है, जो अपनी सन्तान को और गृहस्थ को सुखी व सफल देखना चाहते हैं। यह पुस्तक उन युवक-युवतियों के लिए है, जो भले हैं या भले बनकर गृहस्थ चलाना चाहते हैं। यह पुस्तक कामांध विलासी गृहस्थियों के लिए है।

हमारा कर्त्तव्य है कि नव-दम्पतियों में इसका अधिक से अधिक प्रचार करें। विवाह अथवा विवाह की वर्षगांठ पर युवक-युवतियों को भेंट करने योग्य इस के प्रकाशन के लिए मैं 'वैदिक-प्रकाशन' को हार्दिक बधाई देता हूं।

प्रस्तुत पुस्तक का सुसम्पादन श्री राजपाल सिंह जी शास्त्री ने कर, इसे जन-साधारण के लिए अधिक उपयोगी बना दिया।

वेद सदन, नई सूरज नगरी-१५२११६ —राजेन्द्र 'जिज्ञासु'

विषय-सूची

आदर्श गार्हस्थ्य जीवन

१. मानव-जीवन

विश्व के समस्त प्राणियों में मनुष्य ही एक ऐसा प्राणी है, जो अपने पुरुषार्थ द्वारा उत्कर्ष की चरम सीमा को प्राप्त कर जीवन को सुखी तथा शांतिमय बना सकता है, तथा विश्व के समस्त प्राणियों को भी सुख, शान्ति का सन्देश सुना सकता है। वास्तव में यह आत्मा अपनी दैवी शक्तियों का विकास करके ही इस मानव-देह को सार्थक कर सकता है और पूर्ण सुख और परम शान्ति की उपलब्धि भी वह इसी मनुष्य जीवन में ही कर सकता है। इस मानव-देह में वह दुःख में भी सुख का अनुभव करता है। यह आत्मा जब कभी भयंकर बीमारी, घोर आपत्ति, आर्थिक संकट, पारिवारिक कलह आदि के कारण दुःख की चरम सीमा तक पहुंच जाता है तब भी वह इस मानव-देह का परित्याग नहीं करना चाहता। घोर आपत्ति तथा परम निराशामय जीवन में भी मृत्यु उसे भयावह प्रतीत होती है। इसका एकमात्र कारण यही है कि इस प्राणी को इस पवित्र मानव-देह में भयंकर दुःख भी सुख की अनुभूति कराता है। उसे अत्यन्त दुःखमय जीवन भी परम सरस तथा सुखमय प्रतीत होता है।

यही कारण है कि यह मानव-देहधारी प्राणी भयंकर आपत्ति तथा घोर संकट में भी अपने इस मानव-देह को नहीं छोड़ना चाहता। इसीलिए इस मानव-देह को अमूल्य हीरा जीवन कहा गया है, जो कि प्राणी को अनेक जन्म-जन्मान्तरों के सुकृत कर्मों के फलस्वरूप प्राप्त होता है। किसी कवि ने कहा है—

पूर्वजन्म के सुकृत सहस्रों होते हैं जब एके तीर।
पाता है तब मनुज मनोहर मानव का यह रुचिर शरीर॥

इसीलिए इस मानव-देह को प्राचीन शास्त्रकारों तथा महात्माओं ने इसकी महत्ता के कारण कई प्रकार की उपमाएं दी हैं। कईयों ने इसे संसार-सागर से

पार उतरने की नौका कहा है। उपनिषदों ने इसे संसार की यात्रा को तय करने के लिए एक मनोहर रथ की उपमा दी है। कईयों ने इसे एक चलते-फिरते सुन्दर और विलक्षण वृक्ष की उपमा दी है जिसका मूल अर्थात् जड़ तो ऊपर है और शाखायें नीचे हैं। जिस मानव-देह रूपी वृक्ष पर एक नहीं, दो नहीं, प्रत्युत् चार प्रकार के सुमधुर फल लगते हैं, जो अत्यन्त स्वादु होते हुए भी एक दूसरे से विलक्षण तथा भिन्न-भिन्न स्वाद वाले हैं। वे फल हैं—

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इन्हीं चार प्रकार के फलों का स्वयं रसास्वादन करने तथा अन्यों को कराने के लिए ही मानव-देह का सृजन हुआ है और इन्हीं को प्राप्त कर लेना ही मनुष्य-जीवन का चरमध्येय तथा अन्तिम लक्ष्य है। इनके प्राप्त कर लेने पर ही मनुष्य को सच्चा सुख तथा पूर्ण शांति मिल सकती है। इन चार प्रकार के फलों को प्राप्त करने के लिए ही प्राचीन ऋषियों ने आश्रम मर्यादा का निर्माण किया है। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास; यह चार आश्रम ही धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति के मुख्य साधन हैं।

ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ मुख्यतया धर्म रूपी फल की प्राप्ति के साधन हैं। और संन्यास मोक्ष रूपी फल की प्राप्ति का। किन्तु यदि कोई आश्रम चारों फलों की प्राप्ति का मुख्य साधन है तो वह केवल **गृहस्थाश्रम** ही है। यही एक ऐसा आश्रम है, जहां मानव को चारों प्रकार के फलों के रसास्वादन का सुअवसर मिलता है। इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने इस आश्रम को सब आश्रमों से श्रेष्ठ तथा शिरोमणि आश्रम कहा है। मनु महाराज कहते हैं—**तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही**

वास्तव में ऋषियों का यह कथन परम सत्य है। क्योंकि यह गृहस्थाश्रम जहां धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों फलों की प्राप्ति का मुख्य साधन है, वहां अन्य तीन आश्रमों का सहारा तथा मूलाधार भी यही गृहस्थाश्रम है। यही इन आश्रमों का निर्माता तथा जीवनदाता है। इसलिए महाराज मनु ने कहा है—

यथा वायुं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वजन्तवः ।
तथा गृहस्थं समाश्रित्य वर्तन्ते सर्वआश्रमाः ॥

जैसे सब प्राणी वायु का आश्रय लेकर ही जीते हैं, वैसे सब आश्रम भी गृहस्थ आश्रम का सहारा लेकर ही जीते तथा अपना-अपना व्यवहार करते हैं।

जितने भी पुराकाल में ऋषि तथा मुनि हुए हैं, वे सभी गृहस्थाश्रम सेवी ही थे। विदेह कहलाने वाले राजा जनक जैसे ब्रह्मज्ञानी भी गृहस्थी ही थे। और तो क्या जितने भी अवतार माने गए हैं, वे सब भी गृहस्थाश्रमी ही तो थे। मध्यकालीन सन्त-समाज में भी अधिकतर गृहस्थाश्रम में रहकर ही अपनी साधना द्वारा सन्त, महात्मा तथा भक्त कहलाए।

गृहस्थाश्रम कितना उच्च, पवित्र तथा महान् है, इसकी कल्पना प्रिय पाठकों को उपर्युक्त उद्धरणों से भली प्रकार मिल गई होगी। किन्तु अत्यन्त दुःख से लिखना पड़ता है कि आज सब आश्रमों के शिरोमणि इस गृहस्थाश्रम की जितनी दुर्दशा है, जितनी गिरावट तथा पतन है, उतना शायद ही किसी अन्य आश्रम का होगा। वर्तमान में दूसरे आश्रमों के विकृत तथा विगड़ जाने पर भी वे कम से कम अपने नाम में तो एक पवित्र तथा उदात्त भावना लिए हुए हैं। उनका नाम सुनते ही मन में कम से कम कोई गर्हित भावना तो उत्पन्न नहीं होती। किन्तु आज इन ऋषि-मुनियों के जन्मदाता गृहस्थ का तो नाम लेते ही एक प्रकार की विलासिता तथा कामुकता के अतिरिक्त और कोई उदात्त विचार ही उत्पन्न नहीं होता।

कोई समय था, जब यह गृहस्थाश्रम स्वर्ग का भण्डार तथा सुख और शांति का आगार था। घर के आबाल वृद्ध सभी प्राणी प्रसन्न-वदन तथा खुशहाल थे। आज जहां गृहस्थाश्रम के नारकीय जीवन से घबराकर हमारे नवयुवक शादी के थोड़े समय पश्चात् ही गृहस्थ को छोड़ कर भाग जाते हैं। और कई युवक तो आज के नरकमय जीवन से अत्यन्त दुःखी होकर आत्महत्या तक कर लेते हैं। कई गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से ही घबराते हैं। वहां वेद नव-दम्पत्ति के सम्मुख गार्हस्थ्य जीवन का उच्चादर्श रखता हुआ कहता है—

इहैव स्त मा वियौष्ट विश्वमायुर्व्यश्नुतम् ।
क्रीड़न्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे दमे ॥ ऋग्वेद

हे वर-वधू ! तुम इस गृहस्थाश्रम में खूब आनन्द मनाते हुए, अपने नाती और पुत्रों के साथ हंसते-खेलते हुए गृहस्थ जीवन में ही रहो। कभी भी गृहस्थ जीवन से अलग मत होवो। तुम अपनी सारी आयु आनन्दपूर्वक इस गृहस्थ आश्रम में ही गुजार दो।

भगवान ने हमें गृहस्थ आश्रम किसलिए दिया, इस सम्बन्ध में वेद स्वयं कहता है—

क्षेमाय वः शान्त्यै प्रपद्ये शिवं शग्मं शंयोः शंयोः ।।

"हे मनुष्यो ! मैं तुम्हें कल्याण के लिए, सुख और शान्ति के लिए इस गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराता हूं। तुम्हारा इस पुनीत आश्रम में रहकर चारों तरफ से कल्याण हो। तुम इस आश्रम को चलाते हुए सदा सुख और शांति की जिन्दगी बसर करो।"

उपर्युक्त वेदवचन इस बात का स्पष्ट निर्देश करता है कि गार्हस्थ्य जीवन दुःख, अशान्ति और क्लेश के लिए नहीं, अपितु सुख, शान्ति और आनन्द प्राप्त करने के लिए है। किन्तु खेद है कि आज वर्तमान गार्हस्थ्य जीवन के विकृत स्वरूप को देखकर और इस गार्हस्थ्य जीवन में प्रविष्ट दम्पत्तियों को दुःखी और अशान्त देखकर कई युवक और युवतियां तो इस आश्रम में प्रवेश ही नहीं करना चाहते। उनके ऊपर वर्तमान दुःखी गृहस्थ जीवन की विभीषिका इतनी गहरी सवार हो चुकी है कि वे इसका नाम सुनते ही घबरा जाते हैं। ऐसे भीरु युवक-युवतियों के लिए ही मानों एक आदर्श गार्हस्थ्य जीवन के रहस्य को जानने वाला युवक यजुर्वेद-३/४१ के निम्न शब्दों में उपदेश देता है—

गृहा मा बिभीत मा वेपध्वमूर्जं बिभ्रत एमसि।
ऊर्जं बिभ्रद् वः सुमनाः सुमेधा गृहानेमि मनसा मोदमानः ।।

"हे गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने वाले युवक और युवतियो ! तुम इस आश्रम से मत डरो। इसके नाम से मत कांपो। आओ ! हम सब ऊर्जं अर्थात् बल, वीर्य, पराक्रम और तेज को धारण करते हुए इस आश्रम में प्रवेश करें। देखो ! मैं भी तुम्हारे साथ अपने मन, बुद्धि और आत्मा को पवित्र और बलवान् बनाकर, अपने को सुमेधावी तथा विद्वान् बनाकर और इस गृहस्थाश्रम

की हृदय से चाहना करता हुआ तथा इस नए आश्रम में प्रवेश करने की खुशियां मनाता हुआ इस आश्रम में प्रवेश कर रहा हूं।"

पाठक देखें, वेद ने गार्हस्थ जीवन को कितना महत्व दिया है तथा इससे डरकर भागने वालों को सांत्वना तथा प्रोत्साहन दिया है। उपर्युक्त मन्त्र में जहां गृहस्थाश्रम के महत्व को दर्शाया है, वहां उन गुणों का भी सुन्दर वर्णन किया गया है कि जिन्हें धारण करके ही गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने से मनुष्य गृहस्थ के वास्तविक आनन्द का भोग कर सकता है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व विवाहेच्छुक वर और वधू को जिन गुणों का अपने जीवन में समावेश करना चाहिए वे हैं—

ऊर्ज अर्थात् शारीरिक बल, वीर्य और तेज। अपने मन और आत्मा को पवित्र और वलवान् बनाना तथा मेधावी, शिक्षित और विद्वान् बनाना। विवाह करने अर्थात् गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने से पूर्व उपर्युक्त गुणों का जीवन में समावेश कर लेना परम आवश्यक है। तभी यह आश्रम हमारे लिए परम सुख-दायी वन सकता है। इसलिए इन गुणों को अपने जीवन में धारण करने के लिए ही गृहस्थ से पूर्व ब्रह्मचर्य आश्रम की रचना की गई है।

किन्तु खेद से लिखना पड़ता है कि आज उपर्युक्त गार्हस्थ्य जीवनोपयोगी सद्गुणों में से एक गुण भी अपने जीवन में चरितार्थ न कर हमारे युवक और युवतियां दाम्पत्य जीवन में प्रवेश कर जाते हैं और फिर अपनी ही अयोग्यताओं तथा निर्बलताओं के कारण इस गार्हस्थ्य जीवन के धारण करने में असमर्थ होने से दुःख पाते और ठोकरें खाते हैं। तब वे धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी सुमधुर फलों को प्रदान कर जीवन को परम सुखदायी बनाने वाले इस पवित्र गृहस्थ आश्रम को ही कोसने लगते हैं।

वेद के कथनानुसार विवाहेच्छुक युवक और युवती का प्रथम गुण यह है कि वह संयम और ब्रह्मचर्य द्वारा अपने में बल, वीर्य और तेज को धारण करे। उनके शरीर तेजस्वी, बलवान् और वीर्यवान् हों। आज हमारे युवक-युवतियों के अन्दर संयम और ब्रह्मचर्य के अभाव से और विलासितामय जीवन के कारण बल, वीर्य का सर्वथा अभाव हो रहा है। उनके क्षीण चेहरे पर न ओज है, न

तेज, न लावण्य है; न कान्ति। आज उनके चेहरे की कान्ति बढ़ाने का साधन ब्रह्मचर्य अर्थात् वीर्यरक्षा नहीं। प्रत्युत् क्रीम तथा पाउडर सुन्दरता के साधन बन रहे हैं। जिस गृहस्थ आश्रम के सम्बन्ध में महाराज मनु ने हमें यह चेतावनी दी है —

स धार्यो प्रयत्नेन सुखमक्षय्यमिच्छता।
स्वर्गं चेच्छता नित्यं योऽधार्यो दुर्बलेन्द्रियैः॥

"जो मनुष्य इस संसार में सुख और शान्ति चाहते हैं, जो अपने परलोक को भी स्वर्गमय बनाना चाहते हैं। उन्हें इस गृहस्थाश्रम को बड़े प्रयत्न से धारण करना चाहिए। जिस गृहस्थ को दुर्बलेन्द्रियों वाले कमजोर और अशक्त मनुष्य कभी भी धारण नहीं कर सकते।" आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानंद भी अपने वेदभाष्य में लिखते हैं—

"यह पूर्ण निश्चय है कि ब्रह्मचर्य, उत्तमशिक्षा; विद्या, शरीर और आत्मा का वल, आरोग्य, पुरुषार्थ, सज्जन पुरुषों का संग, आलस्य का परित्याग, यम-नियम का पालन और परमेश्वर के उत्तम सहाय के बिना कोई भी मनुष्य गृहस्थाश्रम को भली प्रकार से धारण नहीं कर सकता।"

वर्तमान गृहस्थाश्रम

इसके विपरीत आज भारत के युवक और युवतियां अपने विलासी और उच्छृंखलतामय जीवन द्वारा अपने को निर्वीर्य बनाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। कई युवक तो विवाह से पूर्व ही अनेक प्रकार की कुटेवों और दुर्व्यसनों द्वारा अपना सर्वनाश कर लेते हैं और अपने को गृहस्थाश्रम के सर्वथा अयोग्य बना लेते हैं। लेखक के पास ऐसे युवकों के बीसियों पत्र आते रहते हैं कि जो शादी से पूर्व ही नाना प्रकार के कुटेवों के द्वारा अपना सर्वनाश कर चुके हैं और अब निर्वीय तथा निस्तेज बनकर अपने भावी दुःखमय गार्हस्थ्य जीवन को याद करके निराशामय जीवन व्यतीत कर रहे हैं। ऐसे जीवन से निराश युवकों के पत्रों में से हम केवल एक पत्र को ही पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। उत्तरप्रदेश निवासी एक युवक अपने पत्र में लिखता है—

श्रीमान् आचार्य जी, सादर नमस्ते।

अचानक मेरे हाथ आप द्वारा रचित "योग और स्वास्थ्य" नामक पुस्तक पड़ गई। मैं बहुत दिनों से वीर्य विकार से पीड़ित हूं। मैं यहां बड़े-बड़े प्रसिद्ध वैद्यों का इलाज करा चुका हूं। परन्तु उससे कुछ लाभ नहीं हुआ। मुझे शीघ्र-पतन की भयंकर बीमारी हस्तमैथुन की कुटेव के कारण हो गई है। जिससे न तो शरीर में शक्ति ही रही है और न ही स्त्री के ही योग्य रहा हूं। अभी तक मेरी शादी भी नहीं हुई। मेरी आयु लगभग २३ वर्ष की है। वीर्य पानी की तरह पतला हो चुका है। बहुत इलाज कराकर थक गया हूं। आपकी पुस्तक को पढ़कर बहुत साहस हो रहा है कि शायद फिर जीवन प्राप्त कर सकूं। मैं यह जानना चाहता हूं कि मैं इस भयंकर रोग से मुक्त हो सकूंगा या नहीं ? मैं आपको अपना शुभचिन्तक समझता हूं।

आशा है मुझको अपना बालक समझकर ठीक-ठीक राय देने की कृपा करेंगे। अब मैं थोड़ा सा अपने रोग के बारे में बता देना उचित समझता हूं ताकि आपको मेरी स्थिति का ठीक-ठीक अनुमान हो सके। जैसा कि मैं पूर्व लिख चुका हूं मेरी आयु २३ वर्ष की है। न जाने मैं कब से हस्तमैथुन करता चला आ रहा हूं। यही कारण है कि काफी इलाज करने पर भी शीघ्रपतन दूर नहीं हुआ। शायद मैं स्त्री के पास जाने योग्य भी नहीं हूं। किसी भी स्त्री के पास बैठते ही वीर्यपात हो जाता है। पेट में सदा कब्ज रहता है। दिन भर आलस्य बना रहता है। भूख खुलकर नहीं लगती। अपनी इस बीमारी की चिन्ता में स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा है। अतः आप कृपया बिना हिचकिचाहट के बताएं कि मैं आपकी यौगिक चिकित्सा से ठीक भी हो सकता हूं या नहीं ? इत्यादि।

यह अवस्था केवल इसी एक युवक की नहीं, प्रत्युत् सौ में से कम से कम अस्सी युवकों की यही हालत है। अब प्रिय पाठक स्वयं ही विचार करें कि जिस युवक ने अपनी बाईस-तेईस वर्ष की अल्प आयु में अपना सर्वनाश कर लिया हो, वह कैसे गार्हस्थ्य जीवन के भोगों को भोग सकेगा और कैसे अपने जीवन को सुखमय बना सकेगा। विवाह से पूर्व ही अपना सर्वनाश कर बैठने वाले युवक यदि गृहस्थ जीवन में सच्चे सुख और आनन्द से वञ्चित् रहें, तो इसमें आश्चर्य क्या है ? कहां तो महर्षि मनु का यह आदेश है कि—

अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रमं समाविशेत् ।

अर्थात् जिस युवक ने अपने जीवन में एक बार भी ब्रह्मचर्य को नष्ट नहीं किया, वही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और कहां हमारे युवकों की आज यह दशा।

दूसरा गुण विवाहेच्छुक युवक का वेद कहता है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व न केवल अपने शरीर को ही स्वस्थ, बलवान् तथा वीर्यवान् बनाओ, प्रत्युत् अपने आत्मा तथा मन को भी बलवान् और पवित्र बनाकर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करो। वेद वर-वधू को यह आदेश इसीलिए देता है कि यदि इस आश्रम में प्रवेश करने से पूर्व हमारे युवक-युवतियों के मन और आत्मा बलवान् तथा पवित्र नहीं होंगे तो वे गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करते ही विलासिता की दासता में जकड़ जायेंगे। वे अपने मन पर कन्ट्रोल न कर सकने के कारण इन्द्रिजन्य भोगों में ही रात-दिन लिप्त होकर अपना सर्वनाश कर लेंगे।

वे चाहे प्रारम्भ में हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् भी क्यों न हों। पुनरपि असंयत तथा विलासी जीवन के कारण अपनी शारीरिक सम्पत्ति को शीघ्र ही नष्ट कर थोड़े ही दिनों में निर्बल, निस्तेज तथा निर्वीर्य बनकर नारकीय जीवन बिताने के लिए विवश होंगे। इसलिए वेद ने विवाह से पूर्व वर-वधू की न केवल शारीरिक उन्नति पर बल दिया है, अपितु मानसिक और आत्मिक उन्नति को भी आवश्यक बताया है।

तीसरा वर-वधू का गुण यह है कि वे बुद्धिमान्, मेधावी, शिक्षित तथा विद्वान् हों। वेद इन गुणों को धारण करने का इसलिए उपदेश देता है कि निखिल आश्रमों के शिरोमणि इस गृहस्थ-आश्रम को सुव्यवस्थित रूप से चलाने के लिए बड़े प्रयत्न की आवश्यकता है। इसलिए मनु ने कहा है—'स धार्यो प्रयत्नेन' अर्थात् इस गृहस्थाश्रम को बड़े प्रयत्न से धारण करो।

अतः इस आश्रम को बुद्धिमान्, सब प्रकार के व्यवहार में चतुर, सब प्रकार से इस आश्रम को चलाने तथा धनादि उपार्जन करने के योग्य शिक्षा से युक्त विद्वान् ही भली प्रकार चला सकता है। जिस युवक ने विवाह से पूर्व धर्मशास्त्र, कामशास्त्र तथा अर्थशास्त्र की शिक्षा को भली प्रकार से ग्रहण नहीं किया।

वह न तो भली प्रकार गृहस्थाश्रम को ही चला सकता है और न ही मानव-देह रूपी कल्पवृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी मधुर तथा स्वादु फलों का आस्वादन कर अपने जीवन को सुखमय बना सकता है। उनका अथर्ववेद १२/५/७ में संक्षेप से निम्न शब्दों में वर्णन करता है—

ओजश्च तेजश्च सहश्च बलं च वाक् चेदिन्यं च श्रीश्च धर्मश्च ॥

अर्थात् विवाहेच्छुक युवक को विवाह से पूर्व अपने में ओज, तेज, सहन-शीलता, बल, वाक् आदि इन्द्रियों तथा मन की पवित्रता, धनोपार्जन की योग्यता तथा धार्मिक नियमों, सिद्धांतों और आचरणों की जानकारी अवश्य प्राप्त कर लेनी चाहिए।

किन्तु खेद है आज चारित्र्य, बल, बुद्धि तथा सदाचार को सर्वथा नष्ट कर देने वाली पाश्चात्य शिक्षा से दूषित वातावरण, सिनेमा आदि दुर्व्यसन तथा छोटी उम्र की शादि आदि अवगुणों के कारण गृहस्थाश्रमोपयोगी उपर्युक्त वेद प्रतिपादित सद्गुण रूपी सुमनों को हमारे युवक तथा युवतियां अपने जीवनोद्यान में विकसित ही नहीं कर पाते। शायद ही कोई सौभाग्यशाली युवक और युवती होगी कि जिसने उपर्युक्त सद्गुणों को अपने अन्दर धारण कर फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया हो। फिर यदि वे गार्हस्थ्य जीवन के आनन्द को न प्राप्त कर, उससे सर्वथा वंचित रहें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है।

आदर्श गार्हस्थ्य जीवन का स्वरूप

अब हमारा आदर्श गार्हस्थ्य जीवन कैसा हो, वेद के शब्दों में ही इसका विषद वर्णन हम पाठकों के सम्मुख रखेंगे। आशा है पाठक इस आदर्श गार्हस्थ्य जीवन का भली प्रकार अध्ययन कर तथा इसे अपने जीवन में चरितार्थ कर सुख और शान्ति के भागी बनेंगे। गृहस्थ जीवन के उच्चादर्श का अथर्ववेद ७/६०/२ में बहुत सुन्दर वर्णन किया है। जो कि इस प्रकार है—

इमे गृहा मयोभुव ऊर्ज्जस्वन्तः पयस्वन्तः।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः॥

आदर्श गार्हस्थ्य जीवन की कामना करने वाले भद्रजन भगवान् से प्रार्थना करते हुए कहते हैं—"हे भगवन् (इमे+गृहाः) हमारे ये घर (मयोभुवः) सुख, शान्ति और आनन्द को जन्म देने वाले (उर्ज्जस्वन्तः) शरीर को बलवान्, वीर्यवान्, तेजस्वी तथा पराक्रमशाली बनाने वाले (पयस्वन्तः) दूध, दही तथा माखन से परिपूर्ण और अन्य धनधान्य आदि सुखप्रद सामग्री से भरपूर, और (वामेन+पूर्णाः+तिष्ठन्तः) सदा सन्मार्ग पर चलने वाले हों, तथा (ते+आयतः+नः+जानन्तु) वे जब हम अपने घरों को वापस लौटें तो हमको भली प्रकार से जानने और पहिचानने वाले हों।"

इस मन्त्र में आदर्श गृहस्थाश्रम के ५ गुण बताए गये हैं। (वे सुख, शान्ति और आनन्द से पूर्ण हों, शरीर से स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग हों। दूध, दही तथा माखन आदि पौष्टिक पदार्थों से पूर्ण और पारिवारिक जीवन के लिए उपयोगी धन-धान्य आदि सामग्री से भरपूर हों। सदा सन्मार्ग पर चलने वाले हों, तथा जब बाहर से घर पर आयें तो वे हमें जानने तथा पहिचानने वाले हों। अब हम इन्हीं पांच गुणों की विशद व्याख्या इस पुस्तक में प्रिय पाठकों के सम्मुख रखेंगे।

इमे गृहा मयोभुव ऊर्ज्जस्वन्तः पयस्वतः।
पूर्णा वामेन तिष्ठन्तस्ते नो जानन्त्वायतः ॥

अथर्ववेद—७/६०/२

१ —मयोभुवः

जिस गृहस्थ आश्रम को हमने दुःखमय समझ रखा है। वेद ने उसका पहला ही गुण यह बताया है कि हमारे गार्हस्थ्य जीवन सुख, शान्ति तथा आनन्द के देने वाले हो। यदि हमारे गृहस्थ सुख, शान्ति और आनन्द के जन्मदाता न होते, प्रत्युत् आजकल की विचार धारा के अनुसार पूर्ण दुःखमय ही होते तो वेद गार्हस्थ्य जीवन का ऐसा सुन्दर वर्णन न करता।

अब प्रश्न होता है कि हमारे घर सुख, शान्ति और आनन्द के जन्मदाता कैसे हों। गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने का उपाय क्या है। ऊपर बताया जा चुका है कि ये गृहस्थाश्रम ही मानव-जीवन रूपी कल्पवृक्ष के धर्म, अर्थ काम और मोक्षरूपी इन चारों मधुर फलों को प्रदान करने वाला है। अतः गृहस्थाश्रम में रहकर इन चारों फलों को प्राप्त करने का पूर्ण प्रयास करना ही अपने गार्हस्थ्य जीवन को परम सुखमय बनाना है।

जो गृहस्थ इनकी प्राप्ति का प्रबल प्रयत्न नहीं करता, वह कदापि अपने गार्हस्थ्य जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव नहीं कर सकता। इसीलिए प्राचीन ऋषियों ने इन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति पर बहुत बल दिया है और इन्हें न केवल गृहस्थाश्रम का प्रत्युत् सारी वैदिक सभ्यता का आधार माना है, तथा इन्हें प्राप्त कर लेना ही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य बताया है। अतः यही आर्य संस्कृति की आधार शिला है। इन धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में ही मानव-जीवन की सभी अभिलाषाएं अन्तर्भूत हो जाती हैं। जिन कामनाओं को लेकर इस मानव-जीवन का विश्व में अवतरण हुआ है।

मानव-शरीर में विविध कामनाओं तथा अभिलाषाओं को चाहने वाले चार ही स्थान हैं। ये धर्मादि चारों पदार्थ इन चारों स्थानों की भली प्रकार पूर्ति कर देते हैं। मनु महाराज ने इन चारों स्थानों का निम्न प्रकार से वर्णन किया है।

अद्भिर्गात्राणि शुयद्ध्न्ति मनः सत्येन शुद्ध्यति।
विद्यातपोभ्यां भूतात्मा बुद्धिर्ज्ञानेन शुद्ध्यति॥

अर्थात्—जल से शरीर, सत्य से मन, विद्या और तप से आत्मा और ज्ञान से बुद्धि शुद्ध होती है। इस मनु वचन में शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की गणना पृथक्-पृथक् रूप में की गई है। अतः इन चारों पदार्थों की जहां जलादि चारों वस्तुओं से शुद्धि होती है, वहां इन्हीं चारों अङ्गों की धर्म आदि चारों पदार्थों से पूर्णतया तृप्ति होती है। अर्थात् ये चारों पदार्थ ही उपर्युक्त चारों अङ्गों को पूर्णतया सुखमय बनाने के मुख्य साधन हैं। जहां जलादि इन चारों स्थानों की शुद्धि के मुख्य साधन हैं, वहां इन चारों स्थानों को पूर्णतया सुखमय बनाने के लिए भी चार ही पदार्थों की आवश्यकता है। और वे हैं—धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। शरीर के पोषण के लिए अर्थ की आवश्यकता है। मनःतुष्टि के लिए काम की आवश्यकता है। बुद्धि को पवित्र और कुशाग्र बनाने के लिए धर्म की आवश्यकता है और आत्मा को शान्ति और आनन्द के लिए मोक्ष की आवश्यकता है।

अतः बिना इन चारों के प्राप्त किए मनुष्य के यह चारों अंग पूर्ण सुखमय नहीं बन सकते। क्योंकि बिना भोजन, वस्त्रादि (अर्थ) के शरीर निर्बल और निकम्मा हो जाता है। बिना काम अर्थात् स्त्री के मन निकम्मा हो जाता है। बिना धर्म अर्थात् सत्य, अहिंसा आदि नियमों के बुद्धि निकम्मी अर्थात् कुपथ-गामिनी बन जाती है और बिना मोक्ष अर्थात् अमरपन के बिना आत्मा निकम्मी बन जाती है। इसलिए शरीर के साथ अर्थ का, मन के साथ काम का तथा बुद्धि के साथ धर्म का और आत्मा के साथ मोक्ष का घनिष्ठ सम्बन्ध है। अतः गृहस्थाश्रम में इन चारों पदार्थों से द्वारा उपर्युक्त चारों अङ्गों की आवश्यकताओं को पूर्ण कर लेने में ही गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने का परम रहस्य निहित है।

१—धर्म

सर्व-प्रथम हमारा यह कर्त्तव्य है कि हम अपने जीवन में धर्म अर्थात् धार्मिक विचारों और भावों को जागृत करें। हमारे जीवन धर्मपरायण और सदाचारमय हों। जिससे हमारी बुद्धि सदा सत्पथगामिनी बनकर हमें सदा कल्याण मार्ग की ओर ही प्रेरित करने वाली हो। कभी हमें कुमार्गगामी न बनाए। शुभाशुभ कर्म करने की सर्वप्रथम साधन बुद्धि ही है। बुद्धि ही मनुष्य को कुमार्ग की ओर प्रेरित कर उसका सर्वनाश कर देती है, तथा बुद्धि ही सन्मार्गगामिनी बनकर मनुष्य का बेड़ा पार कर देती है। अतः इसे धर्मपरायण बनाना परम आवश्यक है। यह धर्मपरायण कैसे बने, इसके लिए प्राचीन आचार्यों ने अपने ग्रन्थों में कुछ धार्मिक साधन तथा उपाय दर्शाये हैं। जो कि संक्षेप से निम्न प्रकार हैं।

१—सदाचार, २—स्वाध्याय, ३—सत्संग, ४—सुविचार, ५—सेवाभाव, ६—सततपुरुषार्थ, ७—सादा तथा संयमी जीवन, सर्वेश चिन्तन तथा ८—यज्ञ ९—दान और १०—तप। इन दस सद्गुणरूपी सुमनों को अपने जीवनोद्यान में विकसित कर लेने से यह गार्हस्थ्य जीवनरूपी सुन्दर बगीचा सदा हराभरा, पुष्पित तथा फलित बनकर मनुष्य-जीवन को सुख और शान्ति की चरम अनुभूति करा देता है। चूंकि धर्म से सम्बन्धित कई विषय आगे भी आयेंगे, अतः यहां धर्म के सम्बन्ध में संक्षेप से ही लिखा गया है।

●

२—अर्थ

मनुष्य जीवनरूपी कल्पवृक्ष के धर्मरूपी प्रथम फल का संक्षेप से वर्णन हो चुका। अब इस कल्पवृक्ष के द्वितीय फल अर्थ का संक्षिप्त वर्णन हम प्रिय पाठकों के सम्मुख रखेंगे।

अर्थ की प्रधानता

जिस प्रकार धर्महीन गार्हस्थ्य जीवन शुष्क और नीरस है, उसी प्रकार अर्थहीन गार्हस्थ्य जीवन भी अशान्त और दुःखमय है। विना अर्थ के गृहस्थ जीवन का सुखपूर्वक गुजारना कठिन ही नहीं, अपितु नितान्त असम्भव है। गृहस्थ जीवन में पग-पग पर अर्थ अर्थात् धन की आवश्यकता पड़ती है। विना अर्थ के उसका कोई कार्य सफलतापूर्वक नहीं चल सकता। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थी तथा संन्यासी शायद विना अर्थ के अपना कार्य चला भी सकें।

परन्तु गृहस्थ परिवार कभी नहीं चला सकता। खान, पान, वस्त्र, आभूषण शादी, गमी, पढ़ाई, लिखाई, लेन-देन आदि प्रत्येक व्यवहार में अर्थ की परमावश्यकता है। अतः गार्हस्थ्य जीवन का अर्थवान् होना परमावश्यक है। अर्थहीन गृहस्थ परिवार में कभी भी सुख और शान्ति का निवास नहीं होता। वह अपने किसी भी व्यवहार को सुचारुरूप से नहीं चला सकता। इसीलिए नीतिकार ने कहा है—

> अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः ।
> क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरिता यथा ॥

अर्थात् धन रहित मूर्ख मनुष्य के सभी कार्य इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं, जैसे ग्रीष्म ऋतु में छोटा नदियां सूख जाती हैं।

जहां विष्णु अर्थात् सर्वान्तर्यामी भगवान् के विना गार्हस्थ्य जीवन में सुख और शान्ति का निवास नहीं, वहां लक्ष्मी अर्थात् धन के बिना गार्हस्थ्य-जीवन का कल्याण नहीं। अतः जिस घर में विष्णु और लक्ष्मी दोनों का निवास है,

वही घर सौभाग्यशाली है। इसलिए प्रत्येक गृहस्थी का यह परम कर्त्तव्य है कि जहां वह अपने परिवार को धर्मपरायण तथा ईश्वर भक्त बनाए, उसे धर्म और ईश्वर से कभी पराङ्मुख न होने दे। वहां उसका एक यह भी मुख्य कर्त्तव्य है कि वह अर्थ के अर्जन में भी सदा प्रयत्नशील रहे। धनोपार्जन में कभी आलस्य और प्रमाद न करे। भगवान् मनु ने जहां प्रातः उठकर धर्म के चिन्तन का अर्थात् जीवन को धर्मपरायण तथा सदाचारी बनाने का आदेश दिया है, वहां उन्होंने अर्थ के चिन्तन अर्थात् अर्थ प्राप्ति के साधनों पर विचार करने का भी आदेश दिया है। जैसा कि उन्हें लिखा है—

ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थकामांश्च चिन्तयेत्।

अर्थात् "गृहस्थी का कर्त्तव्य है कि वह प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में उठे और धर्म, अर्थ, काम का चिन्तन करे।" वेद में जहां अपने जीवन को उच्च, पवित्र और महान् बनाने की प्रार्थनाएं हैं, वहां धनपति बनने के भी स्थान-स्थान पर आदेश तथा प्रार्थनाएं मिलती हैं। यथा—

वयं स्याम पतयो रयीणाम्।

हे प्रभो! हम धनों और ऐश्वर्यों के स्वामी बनें। इतना ही नहीं, अथर्ववेद में तो यहां तक कहा है—

मूर्धाहं रयीणां मूर्धा समानां भूयासम्।

"मैं धनपतियों का भी शिरोमणि बनूं। मैं अपने बराबर वालों में सब का अग्रणी बनूं।" वेद के इस वचनानुसार मनुष्य को केवल धनपति ही नहीं, प्रत्युत् धनपतियों का भी शिरोमणि बनने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने जीवन को सुखमय बनाने की अभिलाषा वाला एक आदर्श परिवार वेद में प्रभु से कैसे सुन्दर शब्दों में प्रार्थना करता है—

उपहूता भूरिधनाः सखायः स्वादु सम्मदः।
अक्षुध्या अतृण्यस्ते गृहा माऽस्मद् विभीतन॥

"हे प्रभो! हमारे गृहस्थाश्रम प्रभूत धन वाले, सन्मार्गदर्शक, हितैषी मित्रों वाले, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक पदार्थों से भरपूर, सदा आनन्दित रहने वाले, भूख

और प्यास से रहित तथा हमारे लिए डरावने न बनकर हमें निर्भयता प्रदान करने वाले हों।"

इस मन्त्र में जहां अन्य गार्हस्थ्य जीवन के कई सुन्दर गुणों को दर्शाया है, वहां यह भी कहा गया कि हमारे घर प्रभूतधन वाले हों। अतः अपने गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने के अभिलाषी को धनोपार्जन अवश्य करना चाहिए।

केवल धनोपार्जन ही जीवन का लक्ष्य नहीं

जहां आलसी और प्रमादी बनकर धनोपार्जन न करना, उसके लिए परिश्रम और पुरुषार्थ न करना, दुःख और आपत्ति का कारक है, वहां रात-दिन धन कमाने के पीछे ही लग जाना तथा धनोपार्जन को ही अपने जीवन का परम लक्ष्य बना लेना और भी अधिक दुःख और अशांति का कारण है। धनोपार्जन को ही अपना चरम लक्ष्य समझने वाला मनुष्य केवल अपना ही अहित नहीं करता, प्रत्युत् दूसरों को ही हानि पहुंचाने का कारण बनता है। अहर्निश धनोपार्जन की चिन्ता में लगे रहने के कारण न तो वह अपने शरीर की ही सम्भाल करता है और न ही उसे स्वथ्य, वलवान् तथा निरोग बनाने का ही प्रयत्न करता है। परिणाम यह होता है कि एक दिन वह नाना रोगों से आक्रांत हो, अपने जीवन को दुःखमय बना लेता है। दूसरा वह जीवन को सुखी तथा धर्म परायण बनाने वाले प्रभुभक्ति, स्वाध्याय, सत्संग आदि के लिए भी समय नहीं निकाल पाता। जिसका परिणाम यह होता है कि आगे चलकर उसका जीवन दुःखमय और अशांत बन जाता है। इसीलिए नीतिकार ने कहा है—

सन्तोषामृत तृप्तानां यत् सुखं शान्त-चेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

अर्थात्—जो शांत स्वभाव मनुष्य अपने पुरुषार्थ द्वारा कमाए धन में ही तृप्त रहते हैं। जो सुख उन्हें मिलता है, वह धन के लोभी बनकर इधर-उधर भागने वालों को कहां!

दूसरा धन-लोलुप नर दूसरे लोगों का भी भारी अहित करता है। वह परहानि करके भी पैसा कमाने में परहेज नहीं करता। झूठ बोलकर, कम तोल कर, ब्याज दर ब्याज सूद लगाकर, गरीबों तथा किसानों का खून चूसकर,

मुद्दई, मुद्दालय का माथा मूंडकर, छल-कपट, प्रपंच आदि तथा नाना प्रकार के भ्रष्टाचार, अनाचार, दुराचार आदि से येन-केन-प्रकारेण पैसा प्राप्त करना ही उसके जीवन का परम उद्देश्य बन जाता है। इससे उसका अपना भी अधः पतन होता है तथा परजनों की भी पीड़ा का कारण बनता है। पैसा कमाओ, अवश्य कमाओ। पर उसके पीछे पागल मत बन जाओ।

ईमानदारी, नेकनियती और सत्यता से कमाओ। ईमानदारी और नेक नीति से कमाया हुआ थोड़ा भी पैसा तुम्हारे प्रभूत सुखप्राप्ति का कारण बनेगा। उस पैसे से प्राप्त सूखी रोटी भी तुम्हें परम आनन्द तथा पूर्ण शान्ति प्रदान करने में परम सहायक बनेगी। विपरीत इसके छल, कपट से कमाए हुए पर्याप्त धन से प्राप्त नाना स्वादिष्ट पकवान भी तुम्हारी परम अशान्ति और दुःख का कारण बनेंगे। इसलिए जहां वेद में धन कमाकर अपने को धनवान बनाने का आदेश है, वहां धन कैसे कमाया जाए, इसका भी सुन्दर उपदेश वेद में मिलता है। वेद कहता है—

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्

अर्थात्—हे प्रभो ! धन कमाने के लिए हमें सदा सन्मार्ग पर ही ले चलो। "हम धन कमाते समय कुपथगामी न बन जाएं।"

मानव-जीवन रूपी वृक्ष के चारों फलों में अर्थ से पहिले धर्म के रखने का भी यही अभिप्राय है कि मनुष्य अर्थ का उपार्जन करते समय धर्म का अवश्य ध्यान रखे। अर्थात् धर्मपूर्वक धन को कमाए, अधर्म से नहीं।

धन का उपयोग

धर्मपूर्वक पर्याप्त धन कमाने पर भी यदि हम उसका ठीक उपयोग करना नहीं जानते तो भी वह धन हमारे गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय नहीं बना सकता। अतः जहां हमें धन को ईमानदारी और सच्चाई से कमाना चाहिए, वहां हमें उसका सदुपयोग करना भी अवश्य सीखना चाहिए। अन्यथा अपने गाढ़े पसीने से कमाया हुआ धन भी हमें कुछ विशेष लाभ न पहुंचा सकेगा। इतना ही नहीं, प्रत्युत् हमारे गार्हस्थ्य-जीवन के दुःख और अशान्ति का कारण बनेगा।

एक मनुष्य धन तो अपने पुरुषार्थ से खूब कमाता है, किन्तु उसे नशे, सिनेमा, जुआ, वैश्यागमन, इन्द्रिय लोलुपता आदि दुर्व्यसनों में नष्ट कर देता है। वह गृहस्थी भी चाहे कितना ही धन कमाए तथा ईमानदारी और सच्चाई से भी क्यों न कमाए। तो भी वह उसके गार्हस्थ्य-जीवन के सुख और शान्ति का कारण नहीं बन सकता। अतः गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बनाने के लिए हमें धन का सदुपयोग करना अवश्य सीखना चाहिए।

धन के सदुपयोग के दो ही मार्ग हैं—धन का स्वयं उपभोग करना और उससे अन्यों को लाभ पहुंचाना अर्थात् उससे प्राणिमात्र के हित के लिए व्यय करना। धन का स्वयं उपभोग कैसे किया जाए, इस सम्बन्ध में अपने विचार हम पाठकों के सम्मुख रखेंगे। अपने लिए धन व्यय करने के तीन मार्ग हैं—अपव्यय, मितव्यय तथा अव्यय। अपव्यय अर्थात् फिजूलखर्ची, मितव्यय अर्थात् उचित व्यय, अव्यय अर्थात् कृपणता। इन तीनों मार्गों में मध्यम मार्ग अर्थात् मितव्ययता ही सर्वोत्तम मार्ग है। अपव्ययता अर्थात् फिजूलखर्ची से लाखों का कमाया धन भी थोड़े दिनों में नष्ट हो जाता है तथा परिवार को भी पराधीन और कंगाल बनाकर नष्ट कर देता है। यदि परिवार में एक भी ऐसा प्राणी है, जिसे फिजूलखर्ची की लत पड़ गई है, वह चाहे स्त्री हो या पुरुष, बालक हो या युवा, वह सारे परिवार की बर्बादी का कारण बनता है।

खर्चीला जीवन

विलास-प्रिय जीवन ही खर्चीला जीवन है। जिस परिवार में जितनी भी अधिक विलासिता का वास होगा, उतना ही वह परिवार फिजूलखर्ची का निवास बनेगा। अतः फिजूलखर्ची से बचने के लिए गार्हस्थ्य-जीवन में विलासिता को बिल्कुल स्थान नहीं मिलना चाहिये। खेद से लिखना पड़ता है कि आज हमारे जीवन विलासिता की ओर बहुत अधिक अग्रसर हो रहे हैं। शहरी जीवन तो विलासिता के अड्डे ही बन रहे हैं। विशेषकर हमारे युवक और युवतियां तो विलासिता की पराकाष्ठा तक पहुंच चुके हैं। आर्थिक दृष्टि से हमारा भारतवर्ष अन्य सब देशों से निर्धन देश है। किन्तु हम नकल करते हैं विलासिता में उन देशों की, जो आर्थिक दृष्टि से हम से कहीं अधिक बढ़े-चढ़े हैं।

वस्तुतः भारतवर्ष की औसतन आय अन्य देशों की अपेक्षा स्वल्पतम है। इतनी स्वल्प आय से तो जीवन की मुख्य-मुख्य आवश्यकताओं की भी पूर्ति होना सम्भव नहीं और तो क्या यदि सम्पूर्ण आय को केवल खाद्य पदार्थों पर ही व्यय कर दिया जाए तो भी लोगों को भरपेट भोजन भी उपलब्ध नहीं हो सकता। जब जीवनदायक पदार्थ भी पर्याप्त मात्रा में हमारे देशवासियों को उपलब्ध नहीं, तो अन्य आवश्यक पदार्थों का तो कहना ही क्या। हमारे भोजन में दुग्ध, घृत आदि पौष्टिक पदार्थों का उपभोग तो दुर्लभ हो गया है। वस्त्र भी ऋतु के अनुसार बहुत कम लोगों को नसीब होते हैं। यह तो हमारे भारतवासियों की भोजन वस्त्र की स्थिति है। अब जरा निवास की हालत को देखिए। नगरों में मकानों का पूर्ण अभाव है। लोग मकानों के लिए दर-बदर धक्के खाते फिरते हैं' किन्तु उन्हें किराए पर मकान नहीं मिलता।

स्थानाभाव के कारण एक-एक कमरे में दस-दस, पन्द्रह-पन्द्रह मनुष्य रहते हैं। कई बेचारे तो सड़कों पर ही पड़े-पड़े अपने जीवन के कष्ट के समय को काट देते हैं। विशेषकर बेचारा मजदूर वर्ग तो ऐसी तंग कोठड़ियों में अपनी जिन्दगी के दिन गुजारता है कि जहां प्रकाश और हवा का नाम नहीं। ग्रामीण जनता की हालत और भी अधिक शोचनीय है। कम आय में उनके गार्हस्थ्य-जीवन का स्तर क्या हो सकता है तथा वे किस प्रकार सुखपूर्वक जीवन व्यतीत कर सकते हैं? इसका अनुमान विज्ञ पाठक स्वयं लगा लें। ग्रामों में प्रायः कच्चे, छोटे, गन्दे और अन्धकारमय मकान ही पाए जाते हैं, जिनमें रह कर मनुष्य कभी भी स्वस्थ जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। ग्रामों में प्रायः मनुष्य और पशु एक ही जगह पर जीवन निर्वाह करते हैं और आस-पास कूड़ा-करकट, राख आदि का ढेर लगा रहता है।

यही कारण है कि जहां ग्रामीण लोगों को अधिक स्वस्थ और निरोग होना चाहिए, वे नाना प्रकार के रोगों का शिकार बने रहते हैं। मेरे इतना लिखने का सारांश यह है कि आज हम भारतीयों का आर्थिक जीवन स्तर इतना गिरा हुआ है कि हम में अधिकांश लोग भूखे और अर्धनग्न अवस्था में अपने जीवन के दिन काटते हैं। उस पर भी यदि हम भारतीयों का जीवन विलासितामय

और खर्चीला हो तो किस प्रकार हमारा गार्हस्थ्य-जीवन सुखमय बन सकता है। अतः इस विलासितामय जीवन के कारण ही हमारे गार्हस्थ्य-जीवन आज दुःखी और अशांत बन रहे हैं।

अर्थ का दुरुपयोग

आज ११-१२ सौ रुपये मासिक कमाने वाला भी दुःखी है और २५ सौ कमाने वाला भी। जहां अधिक आमदनी वाले को अधिक सुख मिलना चाहिए। वहां आज अधिक कमाने वाला अधिक दुःखी हो रहा है। क्योंकि उसने अपनी आय की अपेक्षा जीवन की आवश्यकताओं को कहीं अधिक बढ़ा लिया है। जहां उनके पारिवारिक जीवन में फिजूल खर्च का समावेश हो गया है, वहां धनमद के कारण उनके पारिवारिक जीवन में आलस्य और प्रमाद भी अधिक मात्रा में आ गया है। आज बाबूजी का वेतन ७००-८०० होते ही जहां उस परिवार का आबाल युवा नित्य नए फैशन करना तथा उसका प्रदर्शन करना अपना कर्त्तव्य समझता है, वहां उस परिवार के स्त्री-पुरुषों में आलस्य और प्रमाद इतना बढ़ जाता है कि उस परिवार की देवियां तो साक्षात् मन्दिर की देवियां ही बन जाती हैं, अपने हाथ से काम करना तो उनके लिए अपमान का विषय ही बन जाता है। बरतन मांजना, झाड़ू लगाना, कपड़े धोना, चक्की पीसना आदि तो दूर रहा, भोजन बनाना भी उनके लिए दूभर हो जाता है।

अतः ये सब कार्य बाबूजी को नौकरों को मुंहमांगा वेतन देकर ही कराने पड़ते हैं। जिसके तीन दुष्परिणाम होते हैं। धन का अपव्यय, कार्य का बिगाड़ और घर में रोग का निवास। जहां गृह के सब छोटे-बड़े कार्यों के लिए नौकर रखने के लिए पैसों का पर्याप्त व्यय करना पड़ता है। भोजन बनाने आदि जिन को गृह देवी सुचारू रूप से कर सकती थी, उन्हें नौकरों के हवाले कर दिया जाता है और नौकरों का उद्देश्य चूंकि अपनी तनख्वाह पाना ही होता है। अतः वे किसी भी कार्य को उस प्रेम, लगन और तन्मयता से नहीं करते जितनी कि लगन, प्रेम और तन्मयता से गृहदेवियां कर सकती हैं।

अतः वे कार्य बिगड़ जाते हैं, अधूरे रह जाते हैं तथा परिवार का स्वास्थ्य हानि का कारण बनते हैं। तीसरा बाबूजी की आठ सौ मासिक वेतन की

अवस्था में जब देवीजी गृह के सब कार्य अपने हाथों से करती थीं तो शरीर का व्यायाम हो जाने से स्वस्थ और निरोग रहती थीं। किन्तु बाबूजी की २५ सौ रुपये वेतन की हालत में जब श्रीमती जी ने गृहकार्य को तिलांजलि दी, तो शारीरिक परिश्रम के अभाव में वे सदा बीमार रहने लगीं। आज पेट में दर्द है, आज कमर दुखती है, आज जुकाम और खांसी सता रही है।

अतः डाक्टरों की फीसों और दवाइयों के बिल आने लगे। बाबूजी के ऊपर जहां खर्चे की दोहरी मार पड़ी अर्थात् नौकरों का भी खर्च और डाक्टरों की फीसों और इंजेक्शनों का भी खर्च, वहां परिवार में रोग के घर कर जाने के कारण दुःख और अशांति बढ़ने लगी। बीमार तो बीमार था ही, किन्तु उसके पीछे तन्दुरुस्त भी बीमार बन गए। दूसरे शब्दों में हमारी देवियां न केवल अपने लिए प्रत्युत् सकल परिवार के लिए सच्ची गृहिणी के स्थान पर एक दुःख-दायी असाध्य संग्रहणी बन गईं। जब बाबूजी का वेतन आठ सौ रुपये था। तब वे उतने ही वेतन से अपने परिवार का निर्वाह भी भली प्रकार से चलाते थे और प्रतिमास ५०-१०० रुपये आसानी से बचा लेते थे। किन्तु अब वेतन आठ सौ से १२ सौ हुआ तब खर्च १३ सौ मासिक हो गया।

परिणामतः रुपया बचाना तो पृथक् रहा, उलटा बाबूजी कर्जदार रहने लगे। दिन प्रतिदिन कर्ज बढ़ता गया। एक दिन ऐसा आया कि बाबूजी इतने कर्जदार बन गए कि उसे चुकाना भी कठिन हो गया और यह स्वर्गोपम गार्हस्थ्य जीवन भार रूप बनकर न केवल बाबूजी, प्रत्युत् सारे परिवार के लिए रौरव नरक का द्वार बन गया। यह सब क्यों हुआ, केवल अर्थ रूपी मानव जीवन के द्वितीय फल को फिजूलखर्ची और विलासिता में बरबाद कर देने से।

अर्थ का अनुपयोग

जहां अर्थ को विलासिता और फिजूलखर्ची में बरबाद कर देने से वह अनर्थ का रूप बन जाता है। वहां अर्थ का उपयोग न करना भी अनर्थ का कारण बन जाता है। प्रायः देखा गया है कि जहां लोग अर्थ को फिजूलखर्ची में लुटा देते हैं, वहां ऐसे परिवारों की भी कमी नहीं. जो धन का अपनी आवश्यकता की पूर्ति में भी उपयोग नहीं करते। चाहे उनके अत्यावश्यक कार्य भी अधूरे रह

जाएं। चाहे कृपणवृत्ति की वजह से अनेकों कष्ट भी सहन कर पड़ें। ऐसे कृपण लोगों का धन-संचय करना ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बन जाता है। खान-पान में कंजूसी, वस्त्र परिधान में कंजूसी, चिकित्सा और निदान में कंजूसी, आदान-प्रदान में कंजूसी, किं बहुना कृपणों के प्रत्येक कार्य में कंजूसी ही कंजूसी नजर आती है।

एक बार मैं ट्रेन से यात्रा कर रहा था। जिस डिब्बे में बैठा था, उसमें मारवाड़ का एक जागीरदार भी बैठा था। वार्तालाप में उसने अपना परिचय देते हुए कहा—मेरे इतने कुएं हैं, चार-पांच सौ बीघा जमीन है, घर में पन्द्रह-बीस गौएं तथा आठ-दस भैंसे दूध देती हैं। ईश्वर की कृपा से घर में किसी प्रकार की भी कमी नहीं। इस वार्तालाप के थोड़ी देर पश्चात् ही उसके भोजन खाने का समय आया। वह अपनी गांठ से रोटी निकाल कर खाने लगा। मैंने देखा जौं की रोटी है और वह भी बिल्कुल रूखी। घी का नाम नहीं। दाल; शाक का पता नहीं। रूखी रोटी वह वृद्ध जमींदार कट-कट करके चबाने लगा। मैंने कहा—ठाकुर साहब ! आपने तो फरमाया था, हमारे घर में इतनी गौएं हैं, इतनी भैंसे हैं, ईश्वर कृपा से दूध, घी की कमी नहीं। किन्तु आप तो बिल्कुल रूखी रोटी खा रहे हैं। अव्वल तो यात्रा में पूरी, परोंठे आदि बनवा कर लाना चाहिये, जिससे वह नरम रहें। यदि इतना नहीं तो कम से कम प्रवास में रोटी तो थोड़ी चुपड़ी होनी चाहिए। मेरे इतना कहने पर वह ठाकुर साहब बोले—

पण्डित जी ! हमारे यहां इस तरह भोजन के साथ दूध-घी खाने का रिवाज नहीं। घर में भी हम छाछ (मठा) से ही रोटी खाते हैं। दूध-घी को अपने काम में नहीं लाते। वह तो सारे का सारा हम बेच देते हैं। ऐसे कृपण मनुष्य यदि हजार गाय, भैंसों के मालिक भी क्यों न हों। उनसे उन्हें क्या लाभ ? वह तो उन गायों-भैंसों का चरवाहा मात्र है, न कि मालिक। इसी प्रकार जो मनुष्य अपनी सम्पत्ति का अपने गार्हस्थ्य जीवन जो सुखमय बनाने में व्यय नहीं करता, वह उस धन का स्वामी नहीं, प्रत्युत् रक्षक मात्र ही है।

गार्हस्थ्य जीवन का मूल-आधार गृह देवियां हैं। उनका जैसा अर्थ सम्बन्धी

व्यवहार होगा, वैसी परिवार की आर्थिक दशा होगी। प्रायः देखा गया है कि कई परिवारों की देवियां तो इतना फिजूल खर्च करने वाली होती हैं कि वेचारे पति देवता उनसे तंग आ जाते हैं। वस्त्रों में, आभूषणों में, अन्य शृंगारिक वस्तुओं में, जिह्वा के चटोरपन में वे इतना फिजूलखर्च कर देती हैं, कि वेचारे पतिदेवता को १० तारीख के बाद खाने के भी लाले पड़ जाते हैं। विपरीत इसके कई गृहदेवियां ऐसी भी हैं जिन्हें कृपणता का साक्षात् अवतार कहा जाए तो कोई अत्युक्ति न होगी। वे न तो स्वयं अच्छा खाती, पीती और पहनती हैं और न अपने पति और पुत्र आदि को अच्छा खाने, पीने और पहिनने देती हैं। यदि पति कभी अपने लिए या वाल-वच्चों के लिए किसी दिन कुछ विशेष खर्च कर भी दे तो उसके सिर पर सवार हो जाती हैं।

कई स्त्रियों को मैंने स्वयं देखा है कि घर में सब प्रकार की खुशहाली होने पर भी रोज सूखी और बासी रोटी चवाती रहती हैं। विशेष कर गर्भावस्था में जबकि उन्हें खान-पान में विशेष ध्यान रखना चाहिए और उन्हें सात्विक और पौष्टिक पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए। ऐसी अवस्था में भी सड़ी, गली, रूखी और वासी रोटी उनके भोजन का विशेष अंग होता है और फटे-पुराने, मैले-कुचैले वस्त्र पहिनने में ही अपना परम सौभाग्य समझती हैं। ऐसी स्त्रियां प्रभु कृपा से घर में किसी प्रकार की कमी न होने पर भी घर को दुःखमय बना देती हैं। इसीलिए महाराज मनु ने कहा है––स्त्रियों को न तो अधिक फिजूल-खर्च करने वाली होना चाहिए और न ही कंजूस। क्योंकि जहां फिजूल खर्च गार्हस्थ्य जीवन के लिए दुख:दायी है, वहां कृपणता उससे भी अधिक दुःखदायी है।

अतः अपने गार्हस्थ्य को सुखमय बनाने के अभिलाषी को फ़िजूल खर्च और कंजूसी दोनों का परित्याग करके मध्यमार्ग अर्थात् मितव्ययता का ही आश्रय लेना चाहिए। मितव्ययता का मार्ग ही गृहस्थ जीवन को सुखदायी वनाने वाला है। जो मितव्ययता से धन का उपयोग नहीं करता, उसे अपनी आय में परिवार का निर्वाह न कर सकने के कारण दूसरों से क़र्जा लेना पड़ता है और ऋणी परिवार कभी सुख की नींद नहीं सो सकता। याद रखो उधार परिवार का पूर्ण

शत्रु है। वह सदा परिवार के जीवन की जड़ काटता रहता है। वह गृहस्थ को भी चैन की नींद नहीं सोने देता। ऋण न चुका सकने की अवस्था में कभी कोई दरवाजे पर आकर तकाजा करता है, कभी कोई ऋण मांगता है, कभी कोई आकर खोटी-खरी सुनाता है। कोई कहता है -लेते समय तो ले लिया, अब देते समय मौत आती है। इधर-उधर छुपे-फिरते हैं। कोई कहता है—आज देंगे, कल देंगे, अभी तनखा नहीं आई, ऐसे नित्य नए बहाने ही बनाते हैं। देने की मन में नियत ही नहीं।

इस प्रकार के ऋणदाताओं के नित्य नए ताने और झड़पें एक इज्जतदार आत्मा को कितना दारुण दुःख देती हैं, इसका अनुमान पाठक स्वयं लगा सकते हैं। संक्षेपतः ऋण लेने में निम्न दोष हैं—

१—ऋणी बनना तथा कहलाना

२—ब्याज चुकाना

३—तिरस्कार और अपमान सहना

४—झूठ बोलने की आदत पड़ना

५—ऋणदाता से दबना और शर्मिन्दा होना

६—बेईमानी सीखना

७—वचन भंग की आदत पड़ना

८—अपने परिवार के लिए आपत्ति मोल लेना, आदि।

अतः जहां तक हो सके, सुखी जीवन के अभिलाषी को कर्ज से सदा बचने का ही प्रयत्न करना चाहिए और यदि किसी अनिवार्य कारणवशात् कर्जा लेना भी पड़े, तो उसे वायदे के अनुसार ठीक समय पर चुका देना चाहिए।

अर्थ का दूसरा सदुपयोग है—उसे परार्थ में व्यय करना। अर्थात् अपनी नेक कमाई का केवल आप ही भोग न करना, किन्तु दूसरों के हित के लिए भी उसे व्यय करना। प्रभु ने हमें मानव-जीवन प्रदान किया है। शरीर के सभी अंग, प्रत्यंग और इन्द्रियां आदि निर्विकार तथा निर्दोष रूप में प्रदान की हैं जिससे हम धनादि कमाकर उसका भली प्रकार से भोग कर सकते हैं।

अतः प्रभु का हमें धन्यवाद करना चाहिए और जिन प्राणियों को मनुष्य

जीवन नहीं मिला और यदि मिला भी है, तो अपूर्ण अर्थात् हाथ, पैर या आंख कान आदि से रहित मिला है। ऐसे दुःखी प्राणियों को हम अपने कमाए धन में से कुछ भाग प्रदान कर उनके दुःखों को प्रदान कर उनके दुःखों को दूर करें और इसके अतिरिक्त जितने भी देश, जाति, धर्म तथा राष्ट्रोत्थान के साधन या कार्य हैं, उनमें यथेष्ट सहयोग प्रदान करें। याद रखो! अपने कमाए धन का केवल आप ही भोग करना केवल पाप का भोग करना है। वेद के कथनानुसार ऐसा केवलादी अन्न नहीं खाता, प्रत्युत् पाप खाता है—

केवलाघो भवति केवलादी।

भुंजते त्वघं पापा ये पचन्त्यात्मकारणात्॥

अतः गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने के अभिलाषी को जहां अपनी कमाई के धन का स्वयं यथोचित उपभोग करना चाहिए, वहां अपनी नेक कमाई का यथाशक्ति पर-हित तथा परोपकार में भी व्यय करना चाहिये। यही 'अर्थ' का सदुपयोग है। जो जन अपनी कमाई न तो स्वयं उपभोग करते हैं और न ही परहित में व्यय करते हैं। उनके धन की तृतीय गति अर्थात् केवल नाश ही है। चाहे वह आज हो या कल।

अतः हमें अपनी आंखों से अपने गाढ़े पसीने की कमाई की नाश रूपी तीसरी गति न देखनी पड़े, इसलिए इससे पूर्व ही धन को दान और उपभोग इन दोनों गतियों का अनुसरण करना प्रारम्भ कर देना चाहिये। यही गार्हस्थ्य जीवन के लिए श्रेयस्कर और मनुष्य जीवनरूपी कल्प वृक्ष के द्वितीय फल 'अर्थ' के आस्वादन का सुन्दर उपाय है।

अर्थ शास्त्र

अर्थोपार्जन कैसे किया जाए, तथा उसका उपभोग भी किस प्रकार से किया जाय। इसकी पूर्ण जानकारी के लिये अर्थशास्त्र का अध्ययन करना अत्यावश्यक है। बिना अर्थशास्त्र का ज्ञान प्राप्त किए मनुष्य न तो भली प्रकार अर्थोपार्जन कर सकता है, और न ही उसका यथेष्ट उपभोग, संक्षेप से अर्थ-शास्त्र अर्थ प्राप्ति के साधन, वस्तुओं का उत्पादन, उनका उपभोग, विनिमय

और वितरण आदि का हमें भली प्रकार से ज्ञान कराता है। अतः एक सद् गृहस्थी के लिए अर्थशास्त्र का भली प्रकार से ज्ञान प्राप्त कर लेना अत्यावश्यक है। अर्थशास्त्र के नियमों के अनुसार चलने से परिवार की सीमित आय का इस प्रकार से व्यय किया जा सकता है कि परिवार की अधिक से अधिक आवश्यकताओं की पूर्ति होकर गृहस्थ-जीवन को सुखमय बनाया जा सके। इसी प्रकार पारिवारिक बजट की सहयता से यह ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है कि प्रत्येक मद के व्यय का क्या अनुमान है। इससे अनावश्यक वस्तुओं पर व्यय कम करके आवश्यक वस्तुओं पर बढ़ाया जा सकता है।

मानलो एक गृहस्थी बीड़ी, सिगरेट, चाय शराब, अफीम आदि के सेवन, सिनेमा के देखने तथा अन्य फैशनेवल वस्तुओं पर अधिक खर्च करता है, जिसके कारण उसे भोजन, वस्त्र, बच्चों की शिक्षा के लिए द्रव्य की कमी पड़ जाती है। यदि वह अर्थशस्त्र का ज्ञाता है तो अनावश्यक वस्तुओं के व्यय को कम करके उससे बचे द्रव्य से आवश्यक वस्तुओं के व्यय पूर्ति सुगमतापूर्वक करके अपने परिवारिक जीवन को अधिक सम्पन्न तथा सुखी बना सकेगा। अतः प्रत्येक गृहस्थी को अर्थशास्त्र का पारिचय प्राप्त करना परमावश्यक है।

अर्थशास्त्र के अनुसार आय को बढ़ाने तथा उसे फिजूलखर्ची से बचाने के

कुछ उपयोगी-नियम

धनोपार्जन के पांच मुख्य साधन हैं।

प्रथम—"भूमि" अर्थात् पृथ्वी ओर पृथ्वी सम्बन्धी पहाड़, जंगल, नदी, वर्षा, सर्दी, गर्मी, जल, वायु आदि।

दूसरा—श्रम, भूमि सम्बन्धी साधनों से उपयोग लेने में जो शारीरिक और मानसिक प्रयत्न किया जाता है, उसे श्रम कहते हैं।

तीसरा—पूंजी, अर्थात धन का वह भाग जो अधिक धन पैदा करने के लिये उपयोग किया जाता है, उसे 'पूंजी कहते हैं।

चौथा साधन है—'संगठन'। धनोपार्जन के विविध साधनों का ठीक प्रकार से प्रवन्ध, निरीक्षण तथा व्यवस्था करने का नाम "संगठन" है।

पांचवां—"साहस। धनार्जन में जो पूंजी लगाने की जोखिम उठाना है,

उसे साहस कहते हैं। ये ही धन कमाने के मुख्य पांच साधन हैं। उपर्युक्त साधनों को भी कार्यरूप में परिणित करने के लिए कुछ अवान्तर साधनों की आवश्यकता पड़ती है, जो कि निम्न प्रकार हैं—

१—पुरुषार्थमय-जीवन

धनोपार्जन के अभिाषी का जीवन पुरुषार्थमय होना चाहिए। जिस मानव जीवन के अन्दर पुरुषार्थ नहीं, किसी भी महत्वपूर्ण कार्य को करने का उत्साह उमंग और लगन नहीं, जो सदा आलस्य और प्रमाद में पड़ा अपने अमूल्य जीवन नष्ट कर रहा है, ऐसा मनुष्य कभी भी धनवान् नहीं हो सकता। अतः धनवान् बनने के अभिलाषी को सदा पुरुषार्थ-परायण बनना चाहिये। उसे केवल नौकरी पर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए, प्रत्युत धन कमाने के प्रत्येक साधन, कला कौशल, दस्तकारी, बनज-व्यापार, मेहनत, मज़दूरी आदि में से जो भी समय तथा परिस्थिति के अनुसार करना पड़ें, उसे करने के लिए सदैव तत्पर रहना चाहिये।' नेक नियती तथा ईमानदारी पर आधारित चाहे किसी भी प्रकार का पुरुषार्थ हो, उसके करने में शर्म, लज्जा या हीनता और अपमान का अनुभव नहीं करना चाहिए। हां धनोपार्जन के वे साधन जो कि दूसरे प्राणियों को दुःख पहुंचाने का कारण बनें, जो देश, जाति तथा राष्ट्र को पतन की दिशा में ले जाने वाले हों, संक्षेप से जिन साधनों को 'भ्रष्टाचार' के नाम से पुकारा जा सकता है। उनके करने में ही शर्म, लज्जा और हीनता का अनुभव करना चाहिए और उनसे सदा दूर रहना चाहिये। अपने बाहुबल तथा पुरुषार्थ से कमाया थोड़ा धन भी पुरुष के परिवारिक जीवन को सुखमय बना देता है। विपरीत इसके चोरी, दगाबाजी, धोखेबाजी तथा दास्ता द्वारा कमाया पुष्कल धन भी गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय नहीं बनाता। प्रत्युत समय पर उसके दुःख का कारण बनता है।

मिले खुश्क रोटी जो आजाद रहकर।
तो जिल्लत और ख्वारी के हलवे से बेहतर॥

कवि के इस सुनहरे वचन को अपने जीवन का सदैव लक्ष्य बनाये रखना चाहिये।

२—स्वस्थ तथा निरोगी शरीर

धन कमाने के लिये शरीर का स्वस्थ तथा बलवान् होना अत्यावश्यक है। स्वस्थ तथा बलवान मनुष्य ही धन को भली प्रकार से कमा सकता है, तथा उसका सम्यक् उपभोग कर सकता है। सं० १ में बताए धनोपार्जन के जितने भी साधन दर्शाये गये हैं। उनका मूल आधार स्वस्थ और बलवान् शरीर ही है। अतः धनवान बनने के अभिलाषी को अपने शरीर का पूरा ध्यान रखना चाहिए। उसे उत्तम आहार, व्यवहार आदि के द्वारा सदा स्वस्थ और बलवान बनाये रखना चाहिये।

३—उच्च जीवन स्तर

धन कमाने का एक मुख्य उपाय जीवन-स्तर का उच्च तथा महान होना भी है। मनुष्य अपने परिवारिक जीवन स्तर को जितना उच्च तथा महान समझेगा उतना ही उस जीवन स्तर को बनाये रखने के लिए धन कमाना भी आवश्यक समझेगा, तथा उसके लिए सदा प्रयत्नशील रहेगा। इसके विपरीत नीचे स्तर वाला व्यक्ति अपने स्तर को बनाये रखने के लिये धनोपार्जन में उतना प्रयत्नशील नहीं रहेगा, जितना कि उसे रहना चाहिये। क्योंकि उसे धन कमाने की उतनी चिन्ता नहीं होती, जितनी कि अपने गृहस्थ-जीवन के स्तर को ऊंचा बनाये रखने वाले को। उच्च जीवन स्तर से कदाचित् प्रिय पाठक तथा पाठिकायें यह न समझें, कि हम अपने परिवार की अनावश्यक जरूरतों को बढ़ा लें या उसे विलासप्रिय बना लें। प्रत्युत अपनी आवश्यकताओं को मर्यादित रखते हुए भी अपने परिवार के जीवन स्तर को न गिरने दें। उसे सदा ऊंचा बनाये रखने का ही प्रयत्न करें जिससे कि हम अपने ऊंचे जीवन स्तर को बनाये रखने के लिये धनोपार्जन में प्रयत्नशील हों।

४—शिक्षित जीवन

धनोपार्जन करने तथा धन का सदुपयोग करने के लिए पारिवारिक जीवन का सुरक्षित होना आवश्यक है। शिक्षित मनुष्य अन्यों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान्, चतुर, समझदार तथा दूरदर्शी होने के कारण वह अनेक उपायों तथा तरीकों से अधिक सफलतापूर्वक धन कमा सकता है। शिक्षा मनुष्य में कार्य-

कुशलता की वृद्धि करती है जिसके कारण शिक्षित मनुष्य की आय में वृद्धि होती। आय की वृद्धि के साथ-साथ शिक्षा उस आय का सदुपयोग करना भी सिखाती है और मनुष्य को मितव्ययी बनाती है। शिक्षा से हमारा तात्पर्य केवल स्कूली शिक्षा नहीं है। प्रत्युत् उस आदर्श शिक्षा से है, जो वास्तव में मनुष्य में कार्य करने की क्षमता, दूरदर्शिता, विचारशीलता तथा मितव्ययता के लाने का मुख्य साधन है। अतः धनोपार्जन तथा उसके सदुपयोग करने के अभिलासी को न केवल स्वयं एक आदर्श शिक्षित बनना चाहिये, प्रत्युत् सारे परिवार को आदर्श शिक्षा के सांचे में ढालने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिए।

अब तक हमने अर्थशास्त्र की दृष्टि से अर्थ-संचय अनेक धनोपार्जन के साधनों पर विचार किया। अब उस संचित अर्थ का किस प्रकार से सदुपयोग किया जाए। जिससे हमारा गार्हस्थ्य जीवन सुखमय बने, इस पर विचार करेंगे।

संचित-अर्थ का सदुपयोग

१—धार्मिक तथा सादा जीवन—

अपनी आय के स्तर को ठीक रखने के लिये गार्हस्थ्य जीवन का धार्मिक तथा सादा होना परमावश्यक है। धार्मिक जीवन विलासप्रिय नहीं होता, तथा सादा जीवन खर्चीला नहीं होता और जो परिवार विलासिता तथा खर्चीलेपन से परे है, वहां अर्थ का सदुपयोग ही होगा, दुरुपयोग कदापि नहीं हो सकता। और जहां धन का सदुपयोग है, वहां परिमित अर्थ भी गार्हस्थ्य जीवन को पूर्ण सुखमय बनाने का सर्वोत्तम साधन बनेगा, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। अतः जो परिवार चाहता है कि वह अपनी परिमित आय में भी अपने गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बना सके, उसे अपने परिवार प्रत्येक सदस्य को सादा तथा धर्मपरायण बनाने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

२—स्वस्थ तथा बलवान् सन्तान

धन को फिजूल खर्ची से बचाने के लिये सन्तान का स्वस्थ तथा बलवान् होना अत्यावश्यक है। सदा कमजोर तथा बीमार रहने वाली सन्तान

डाक्टरों तथा वैद्यों की औषधियों, इंजेक्शनों तथा भारी फीसों के बिलों के चुकाने का कारण बनती है जिससे प्रतिमास मासिक आय में से व्यर्थ में पर्याप्त धन का व्यय होता है। समय अलग नष्ट होता है। परिवार के एक भी व्यक्ति के बीमार पड़ जाने पर सारा परिवार अशान्ति, दुःख और क्लेश का घर बन जाता है। अतः अपने पैसे को अपव्यय से बचाने के लिये अपनी सन्तान को सदा स्वस्थ, बलवान् और निरोग बनाये रखने का प्रयत्न करना चाहिये। उनका पालन, पोषण और रक्षण अत्यन्त सावधानी से करना चाहिये।

३—खर्चीली रुढ़ि, रीति-रिवाजों का परित्याग

भारतीय पारिवारिक जीवन में व्यर्थ के रुढ़ि और रिवाजों की भरमार है, जिनमें गार्हस्थ्य-जीवन का करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया जाता है। भारतीय जनता जातीय रीति-रिवाजों और अनावश्यक रुढ़ियों के बन्धनों में इतनी जकड़ी हुई है, कि उसे अनिवार्य रूप से अपने अन्य अत्यावश्यक खर्चों को भी कम करके अपना धन सामाजिक तथा जातीय प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिये सामाजिक रीति-रिवाजों तथा अनावश्यक रुढ़ियों में खर्च करना पड़ता है। सामाजिक तथा जातीय रुढ़ियों की दासता भारतीय जीवन में इतना उग्र रूप धारण किये हुए है कि अशिक्षित तो क्या, शिक्षित समाज को भी विवश हो, इनमें पर्याप्त धन व्यय करना पड़ता है। शादी, गमी, टीका; दहेज, लेन, देन आदि सभी व्यवहारों में हमारे देश में खर्चीली रुढ़ियों ने घर कर लिया है। अतः अपने धन को अपव्यय से बचाने के अभिलाषी परिवारों को खर्चीली रुढ़ियों और रिवाजों का सर्वथा बहिष्कार करना चाहिये। विशेषकर शिक्षित वर्ग तथा धनी-मानी सज्जनों को तो इनके बहिष्कार में सबसे पहले अग्रसर होकर जनता के सम्मुख अपना आदर्श उपस्थित करना चाहिये।

४—सन्तति निरोध

अधिक सन्तान का होना भी धन के अतिव्यय का एक मुख्य कारण है। जितनी भी सन्तान की संख्या अधिक होगी, उतना ही अधिक व्यय होगा। बाबूजी या लालाजी की आमदनी तो उतनी ही बनी रहती है। किन्तु सन्तान

की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ती जाती है। अतः जो धन वह पहले अपने परिवार के चार प्राणियों पर व्यय करता था, अब उसी धन को उसे आठ प्राणियों पर व्यय करना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि अत्यावश्यक व्ययों में भी कटौती करनी पड़ती है। तिस भी यदि पूर्ति नहीं होती, तो उसे कर्जा लेना पड़ता है। इससे गार्हस्थ्य-जीवन अति दुःखमय तथा अशान्त बन जाता है। अतः अपने धन को अति व्यय से बचाने तथा गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बनाने के लिये सन्तान की अधिकता को छोटी आयु में विवाह के न करने, तथा इन्द्रियनिग्रह अर्थात् ऋतुगामी आदि नियमों के पालन करने और अन्य उपायों से रोकने का अवश्य प्रयत्न करना चाहिये।

५—व्यय करने का ढंग

व्यय को कम तथा सीमित करने के लिये व्ययकर्त्ता को व्यय करने के ढंग को भी जानना अत्यावश्यक है। हम प्रायः सुनते हैं कि अमुक व्यक्ति व्यय करने में बहुत होशियार है। वह थोड़ा खर्च करके भी अपने परिवार का निर्वाह भली प्रकार से चला रहा है। इसका तात्पर्य यह है कि वह व्यक्ति व्यय करने के ढंग को भली प्रकार से जानना है और व्यय करने के नियमों को समझता है जिन्हें कि अधिक व्यय करने वाले नहीं समझते। अतः हम पाठकों की जानकारी के लिये व्यय करने के कुछ मोटे-मोटे नियमों को नीचे लिख रहे हैं जिनके अनुसार व्यय करने से व्यय कम होगा किन्तु जीवन-निर्वाह अधिक व्यय करने वालों की अपेक्षा से भी उत्तम ढंग से चलेगा।

(क) वस्तुओं के गुणों की जानकारी

प्रायः देखा जाता है कि बाजार में एक ही प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये कई प्रकार की वस्तुएं मिलती हैं। ऐसी अवस्था में क्रय करते समय क्रयकर्त्ता का कर्त्तव्य है कि वह प्रत्येक वस्तु के गुण को भली प्रकार से जाने और अपने प्रयोजन की पूर्ति के लिये उसी वस्तु को खरीदे; जो अधिक उपयोगी हो, टिकाऊ और मजबूत हो तथा मूल्य में भी अन्य वस्तुओं की अपेक्षा कम न हो तो अधिक मूल्य की भी न हो। क्रयकर्त्ता को किसी भी वस्तु के बाह्य रूप पर ही मुग्ध न हो जाना चाहिये। प्रत्युत उसके टिकाऊपन तथा मजबूती

का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये। बहुधा देखा गया है कि लोग वस्तुओं के बाह्यरूप पर अधिक मुग्ध तथा आकर्षित हो जाते हैं। विशेषकर स्त्रियां। और वे वस्तु के वाह्य सौन्दर्य पर मुग्ध होकर विक्रयकर्त्ता को मुंहमांगे दाम दे देती हैं। ऐसा करने पर खर्च भी अधिक होता है और वस्तु भी उपयोगी तथा टिकाऊ नहीं मिलती। अतः कम व्यय के अभिलाषी को उपर्युक्त नियम की जानकारी करना परमावश्यक है।

(ख) क्रय करने में कुशलता

बाजार में वस्तु विक्रेता दुकानदार कई प्रकार के होते हैं। ठीक दाम से वस्तुएं बेचने वाले और अधिक दाम लेकर ग्राहक को ठगने वाले भी। ठीक दाम बताने वाले दुकानदार तो बहुत कम ही हुआ करते हैं। अधिकतर तो ऐसे दुकानदार होते हैं जो वस्तु के दुगने, तिगुने दाम वताकर ग्राहक को ठग लेते हैं। ऐसी अवस्था में ग्राहक का वस्तु खरीदने में पूर्ण निपुण होना परम आवश्यक है अन्यथा वह दुकानदार से ठगा जायेगा और थोड़े दाम की वस्तु के भी अधिक दाम चुका कर नुकसान उठायेगा। अतः वस्तु क्रयकर्त्ता को चाहिये कि वह आंख मूंद कर ही किसी वस्तु को न खरीद ले। प्रत्युत् ठीक भाव-ताव करके और दो-चार दुकानों पर पूछ कर फिर किसी वस्तु को खरीदे। जहां तक हो सके ऐसी ही दुकान से सौदा खरीदे कि जिसकी भली प्रकार से जानकारी के पश्चात् पता लग जाय कि उसका भाव ठीक और निश्चित अर्थात् एक है और वस्तु भी उत्तम तथा तोल आदि भी पूरा है। ऐसे निश्चित भाव की दुकान पर जहां वस्तु उत्तम तथा ठीक भाव पर मिल जाती है, वहां व्यर्थ में बारम्बार भाव-ताव पूछने में फिजूल का समय भी नष्ट नहीं होता और अनेक बार झूठ सच भी नहीं बोलना पड़ता।

(ग) आवश्यकताओं का पूर्ण ज्ञान

कम खर्च के अभिलाषी क्रेता को किसी भी वस्तु खरीदने से पूर्व अपनी आवश्यकताओं का पूरा-पूरा ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। उसे दुकानदार के वहकावे में आकर अथवा अन्य यार-दोस्तों या सखी-सहेलियों के आग्रह से या उनकी देखादेखी कोई वस्तु नहीं खरीद लेनी चाहिये। उसे किसी भी वस्तु

के खरीदते समय इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिये कि इसकी आवश्यकता भी है या नहीं। अमुक वस्तु सस्ती है, या सुन्दर है, केवल इसीलिये ही उसे नहीं खरीद लेना चाहिये।

(घ) उत्तम क्रय-स्थान की जानकारी

कम खर्च के अभिलाषी सफल क्रेता को इस बात का भी पूरा ध्यान रखना चाहिये, कि किस स्थान पर चीजें अच्छी तथा सस्ती मिलती हैं। वह स्थान चाहे अपने घर से कुछ दूर भी क्यों न हो, तो भी वहां जाकर चीजें खरीदने में आलस्य नहीं करना चाहिये। प्रत्युत् हिम्मत करके तथा थोड़ा समय अधिक खर्च करके भी वहीं से ही चीजें खरीदनी चाहिये।

(ङ) वस्तु खरीदने के उचित समय का ज्ञान

जो वस्तु जिस समय खरीदनी आवश्यक है या जिस समय खरीदने पर वह अच्छी और सस्ती मिल सकती है उसी समय वह वस्तु खरीदनी चाहिये। जैसे ईन्धन वर्षा ऋतु से पहिले खरीद लेना आवश्यक है। रजाइयां, गद्दे, तकिये तथा परिवार के गर्मक पड़े आदि शरद ऋतु से कुछ पहिले बनवा लेना चाहिये। गेहूं, चना आदि अनाज तथा अन्य फसली तथा मौसमी चीजों को, जो अधिक समय तक बिगड़ने वाली न हों, उन्हें फसल पर ही खरीद लेना आवश्यक है। ऐसा करने से चीज सस्ती मिल जाने से पैसा भी कम खर्च होता है और चीज भी अच्छी मिल जाती है।

(च) वर्तमान और भावी आवश्यकताओं का ज्ञान

जीवनोपयोगी वस्तुओं में कई ऐसी वस्तुएं होती हैं, जिनकी कि हमें तत्काल आवश्यकता होती है। जिनके खरीदे बिना हमारा काम चल ही नहीं सकता। किन्तु कई ऐसी भी वस्तुयें होती हैं, जिनकी कि हमें आवश्यकता तो है, किन्तु यदि वर्तमान में उन्हें न भी खरीदा जाये तो भी काम चल सकता है। अर्थात् जिनकी हमें भविष्य में आवश्यकता है। ऐसी अवस्था में परिमित आय वाले व्यक्ति को उन्हीं चीजों को ही खरीद करना चाहिये जिनकी कि उसे तत्काल आवश्यकता है। कुछ लोग वर्तमान और भविष्य की आवश्यकताओं के बीच तुलना करने में बड़े कुशल होते हैं। वे तुलनात्मक दृष्टि

से इस बात का तत्काल ही निर्णय कर लेते हैं, कि किन आवश्यकताओं की पूर्ति प्रथम की जाए और किन की बाद में। अर्थात् व्यय करते समय या किसी भी वस्तु के खरीदते समय उन्हें इस बात का पूरा-पूरा ध्यान रहता है। इससे आवश्यकता की पूर्ति भी यथासमय हो जाती है और व्यय भी कम होता है।

(छ) भाव के अनुसार वस्तुएं खरीदना

बाजार में कई वस्तुयें अपेक्षाकृत महंगी मिलती हैं और कई सस्ती। कई वस्तुओं का भाव समय-समय पर बदलता रहता है। कभी वह महंगी हो जाती हैं और कभी सस्ती। मितव्यय के अभिलाषी का कर्त्तव्य है कि वह सस्ती वस्तुओं को तो चाहे अधिक मात्रा में खरीद कर ले, किन्तु जो महंगी वस्तुयें हैं, उन्हें थोड़ी मात्रा में खरीद कर उतने में ही अपने पारिवारिक निर्वाह के चलाने तथा उसकी आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करे। महंगी वस्तुओं को अधिक मात्रा में खरीद कर अपना निर्वाह चलाना मानो अपनी आय का दिवाला आउट करना है। हां, यदि किसी मनुष्य की आय पर्याप्त है। ऐसी अवस्था में यदि वह महंगी वस्तुयें भी खरीद लेता है, तो भी उसके पारिवारिक व्यय में कुछ बाधा नहीं पड़ती।

(ज) पारिवारिक बजट

आय से व्यय अधिक न होने पाये, प्रत्युत् जितनी आय है उतने में ही भली प्रकार गुजारा चल सके और व्यय के पश्चात् शादी, गमी आदि के लिये कुछ बच भी जाए, इसका एक उपाय पारिवारिक बजट भी है। अर्थात् अपने व्यय का प्रतिमास बजट बनाना तथा उसके अनुसार ही खर्च करना। पारिवारिक बजट से गृहस्वामी प्रत्येक व्यय के मद को तुलनात्मक दृष्टि से जांच कर यह जान सकता है कि अमुक मद में अधिक व्यय हो रहा है, या ठीक। क्या किसी मद के व्यय को कम करना वाञ्छनीय है। दूसरे शब्दों में यूं कहा जा सकता है कि पारिवारिक बजट गृहस्वामी का सब मदों के खर्च में समता रखने में बड़ा सहायक होता है। विपरीत इसके पारिवारिक बजट के अभाव में वह अपनी आय को लापरवाही से खर्च कर सकता है।

पारिवारिक बजट ही सीमित आय से सुगमतापूर्वक गार्हस्थ्य-जीवन के

निर्वाह के चलाने का एक उत्कृष्ट साधन है, तथा थोड़ी आय में भी परिवार की अधिकतम तृप्ति करने का एक सुन्दर उपाय है। अतः अपनी सीमित आय से भी अधिकतम सुख प्राप्ति के इच्छुक को प्रतिमास का पारिवारिक बजट अवश्य बना लेना चाहिये तथा उनके अनुसार ही खर्च करना चाहिये।

(झ) वस्तुओं का उचित प्रयोग

परिवार में काम आने वाली वस्तुओं का उचित प्रयोग भी अपना जीवन निर्वाह सुगमता पूर्वक चलाने के अभिलाषी के लिए एक अत्यावश्यक नियम है। यदि हम या हमारे परिवार के अन्य धर्मपत्नी आदि सदस्य घर में आई वस्तुओं का ठीक प्रयोग करना नहीं जानते तो व्यय के अन्य सम्पूर्ण नियमों का करते हुए भी हम अपनी परिमित आय में अपना निर्वाह सुगमता तथा सुख पूर्वक नहीं चला सकते। खाद्य वस्तुओं को ही लीजिये कई गृह देवियां रोटी, दाल, चावल आदि इतनी अधिक मात्रा में बना देती हैं, कि वह सब परिवार के भोजन कर लेने के पश्चात् भी अधिक वच रहती हैं जो कि या तो पड़ी सड़ती रहती हैं या दुर्गन्धित हो जाने के कारण फेंकनी पड़ती हैं। या बहुत समय के बासी पदार्थ स्वयं खाने पड़ते हैं जो कि स्वास्थ के लिए अत्यन्त हानिकारक है। इससे धन और स्वास्थ्य दोनों की हानि होती है।

कई परिवारों में अनावश्यक तथा अधिक मात्रा में आग जलती ही रहती है, इससे लकड़ियां तथा कोयले भी अधिक खर्च होते हैं और घर की दीवारें भी जल्दी काला हो जाती हैं। कई परिवारों में वस्त्रों का ठीक प्रयोग नहीं होता, वस्त्र इधर-उधर बिखरे हुए खराब तथा मैले होते रहते हैं। बच्चे उन्हें फाड़-फूड़कर फैंक देते हैं। तो भी घर के माता-पिता आदि बड़े बूढ़े उन्हें नहीं टोकते। कभी-कभी बड़े आदमी भी बाहर से घर में आते ही वस्त्र उतार कर उन्हें उनके निश्चित स्थान पर न रख कर जहां मन में आया वहीं फेंक देते हैं। इससे वस्त्र जल्दी मैले तथा फट भी जाते हैं और दुबारा ढूंढ़ने में भी कठिनता पड़ती है तथा घर भी बहुत मैला-कुचैला और बहुत बुरा मालूम होता है, इसी प्रकार जूते आदि। कई परिवारों में विजली अनावश्यक समय में भी जलती रहती है। किसी-किसी घर में तो सूर्य भगवान के उदय होकर विद्युत देवी की

ड्यूटी स्वयं प्रारम्भ कर देने पर भी विद्युत देवीजी अपने कार्य से विरत नहीं होतीं। यही बातें अन्य वस्तुओं के सम्बन्ध में भी समझिये। अतः सुखी गार्हस्थ्य जीवन के अभिलाषी को वस्तुओं के असद्व्यवहार तथा उनकी फिजूलखर्ची से सदैव बचना चाहिए।

यहां तक हमने मानव जीवन रूपी कल्पवृक्ष के द्वितीय मधुर फल "अर्थ" के सम्बन्ध में विचार किया। अब हम तृतीय सुमधर फल "काम" का वर्णन करेंगे। आशा है गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बनाने के अभिलाषी इस सुमधुर फल पर भी सम्यक् विचार करेंगे।

मानव जीवन रूपी कल्पवृक्ष का 'अर्थ' है। सुमधुर फल—

●

३—काम

(काम शब्द का अर्थ तथा उपभोग)

प्रभु के रचे पदार्थों द्वारा संसार के सुखों का भोग करना ही "काम" कहलाता है। विश्व के मधुर और परम स्वादु पदार्थों का सृजन ही उस स्रष्टा ने हमारे सुख भोग के लिये किया है। अतः यदि हम प्रभु के रचे पदार्थों द्वारा संसार के सुखों का भोग नहीं करते तो हम से बढ़कर अभागा कौन होगा। मानव का विश्व में अवतरण ही इसलिये हुआ है कि वह जहां परम पुरुषार्थ द्वारा परमात्म-प्राप्ति में प्रयत्नशील हो, वहां लौकिक पुरुषार्थ द्वारा उस विश्व-रचयिता के विविध पदार्थों का भोग कर इस संसार में भी अपने जीवन को सुखमय बनाए। जो जन इस जगत् में अपने जीवन को सुखमय बनाने में प्रयत्नशील नहीं होते। केवल परलोक प्राप्ति में ही प्रयत्न करते हैं, उसके लिए शरीर को विविध यातनाओं द्वारा कृश, रोगी और कमजोर बना लेते हैं, ऐसे लोगों का इहलोक तो बिगड़ता ही है, किन्तु परलोक का परमानन्द भी उनके पल्ले नहीं पड़ता। इसीलिए ऋषियों ने मनुष्य जीवन रूपी कल्पवृक्ष के मधुर तथा स्वादु फलों में काम रूपी फल को भी तीसरा स्थान दिया है।

मनुष्य अल्पज्ञ प्राणी है। इसीलिये इससे पद-पद पर भूलें होती रहती हैं। कभी गिरता है, कभी उठता है। अतः कहीं मनुष्य संसार के भोगों और काम-नाओं में आसक्त होकर अपना पतन न कर ले। अपने जीवन को सुखमय बनाने के स्थान पर उल्टा दुखमय न बना ले और यह अत्यन्त स्वादु तथा सुखप्रद "काम" रूपी सुमधुर फल उल्टा उसके लिये विषरूप बनकर उसके विनाश का कारण न बन जाये, हमारे ऋषियों ने काम को प्रथम स्थान अर्थात् पहिला दर्जा न देकर तीसरा स्थान प्रदान किया है। अर्थात् मनुष्य संसार की काम-नाओं का भोग किस प्रकार करे, जिससे कि वे कामनायें और भोग उस को

सुख और शांति ही प्रदान करने वाले हों, उसे दुःखी और अशान्त न बना सकें। उसे कामरूपी तीसरी मनोवृत्ति से पहिले दो और मन्जिलों को तय करने का ऋषियों ने आदेश दिया है। जीवन की ऊंची बिल्डिग पर चढ़ कर सुखों का भोग करने के लिए यदि हम उसकी सीढ़ियों पर क्रमशः पग न रख कर एक दम तीसरी सीढ़ी पर छलांग मार कर चढ़ने का दुःसाहस करेंगे, तो कभी न कभी हमारा पतन भी अवश्यम्भावी है।

मानव-जीवन रूपी प्रसाद की पहिली दो सीढ़ियां हैं "धर्म" और "अर्थ" और तीसरी सीढ़ी है, 'काम' अर्थात् संसार के भोगों तथा कामनाओं का उपभोग करने के लिए प्रथम उसे अपने जीवन को धार्मिक नियमों, जो कि हम पहिले लिख आए हैं, के पालन द्वारा धर्मपरायण, जितेन्द्रिय तथा संयमी बनाना होगा; यदि वह ऐसा नहीं करता तो वह संसार के सुखों और भोगों में आसक्त हो जायेगा। संसार की कामनाओं में फंस जायेगा। उसे संसार के विषय अमृत के स्थान पर विष का काम देंगे और उसके न केवल शारीरिक पतन के प्रत्युत् उसकी आत्मिक मृत्यु का भी कारण बनेंगे। गृहस्थ आश्रम में जो कि वास्तव में संसार के सुख, भोगों और कामनाओं के भोगने का साधन है, उसमें प्रवेश करने से पूर्व ही उसे इसके लिये सर्वथा अयोग्य और निकम्मा बना देंगे और वह गृहस्थाश्रम बजाय स्वर्गधाम के नरकधाम बन जायेगा। इसी प्रकार यदि वह गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करने से पहिले अर्थ का संचय नहीं करता, तो भी वह संसार के सुखों का उपभोग नहीं कर सकता। क्योंकि अर्थ ही कामनाओं के भोग करने का मूल कारण है।

बिना अर्थ के काम का उपभोग करना सर्वथा असम्भव है और यदि बिना अर्थ के मनुष्य संसार की कामनाओं का भोग करना भी चाहे तो भी नहीं कर सकता। उसे इसके लिए उचित नहीं तो अनुचित उपायों से अर्थ का उपार्जन करना पड़ेगा। चोरी, ठग्गी दगाबाजी आदि-आदि अनुचित उपायों द्वारा वह अर्थ के प्राप्त करने का प्रयास करेगा, जिससे उसका जीवन बजाये सुखी के दुःखमय तथा अशान्त बन जायेगा तथा औरों के भी दुख का कारण बनेगा। इसलिये संसार के सुखमय भोगों के अभिलाषी को धर्माचरण तथा अर्थोपार्जन अवश्य करना चाहिए। इसीलिये प्राचीन ऋषियों ने सांसारिक सुख भोग के

साधन गृहस्थाश्रम से पूर्व धर्म और अर्थ को प्राप्त करने के लिए ब्रह्मचर्यावस्था का विधान किया है। अर्थात् ब्रह्मचर्याश्रम में निवास कर मनुष्य धर्म का अर्जन करे। अपने शरीर मन और आत्मा को बलवान् तथा संयमी बनाये। अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करे और अपने को पूर्ण धर्मपरायण बनाकर फिर कुछ वर्ष स्नातकावस्था में अविवाहित रहकर धनोपार्जन का प्रयत्न करे तथा उस कमाए धन से अपने शरीर को अधिक हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् बनाकर फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर धर्म और धन के सहयोग से 'काम' की प्राप्ति में प्रयत्नशील हो।

अतः धर्म और अर्थ पूर्वक 'काम' का उपभोग करना ही सच्चे सुख और शान्ति का मूल कारण है और यही गृहस्थाश्रम का मुख्योद्देश्य है। इस गूढ़ रहस्य को प्राचीन काल में हमारे गुरुजन ब्रह्मचारी को वर्णमाला के प्रारम्भिक अक्षरों के द्वारा ही दर्शा दिया करते थे। वे ब्रह्मचारी को उपदेश देते हुए कहते थे—देखो वत्स ! यह "अकार" आदि स्वर तुम्हें उपदेश दे रहीं हैं कि तुम ब्रह्मचर्याश्रम में रह कर हमारे समान स्वतन्त्र और स्वाधीन बनो। अपने मन और इन्द्रियों पर काबू पाकर जैसे व्यंजन स्वरों के आधीन हैं, वैसे तुम भी इनके आधीन न होकर इनको अपने वशवर्ती बनाओ। ब्रह्मचर्याश्रम समाप्त करने के पश्चात् स्नातक बन कर।

(क) खूब धन कमाओ, फिर (ख) उस कमाए धन को खाकर अपने शरीर को और अधिक बलवान् बनाओ, फिर (ग) गृहस्थाश्रम में प्रवेश कर, (घ) अपना घर बसाओ, जहां धर्म को सम्मुख न रखकर कमाया हुआ अर्थ अपने और दूसरे दोनों के लिये अनर्थ का कारण है, वहां धर्मपूर्वक अर्थ का अर्जन न कर 'काम' के भोगने का प्रयत्न करना भी उसके लिये महान् अनर्थ का कारण है। अतः धर्म और अर्थ पूर्वक ही संसार की कामनाओं का भोग करना सच्ची शान्ति और सुख का मूल कारण है।

'काम' का महत्व

क्या 'काम' घृणा की वस्तु है ?

यूं तो संसार के सभी इन्द्रियों के भोगों और कामनाओं के भोगने का नाम

"काम" है। किन्तु काम शब्द मुख्यतया विषयेन्द्रिय-जन्य भोग के भोगने के अर्थ में ही प्रयुक्त होता आया है। इसके दो मुख्य कारण हैं। एक तो अन्य इन्द्रियों के भोग-जन्य सुख की अपेक्षा इसमें सुख की मात्रा अधिक है। यही कारण है कि अन्य भोगों की अपेक्षा लोगों में काम-जन्य भोग भोगने की अधिक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। इसीलिये जहां अन्य इन्द्रिय-जन्य विषयों पर काबू पाना इतना कठिन नहीं, जितना कामेन्द्रिय-जन्य विषय पर काबू पाना। दूसरा जननेन्द्रिय जन्य भोग से जहां सुख विशेष की प्राप्ति होती है, वहां सन्तान उत्पत्ति का भी यही साधन है। यही कारण है कि काम को अन्य इन्द्रियों के विषयों की अपेक्षा अधिक महत्व दिया गया है। यहां तक कि उसे 'कामदेव' कहकर पुकारा गया है।

किन्तु खेद है कि ऐसे पवित्र, महान् और सबसे अधिक सुखदायक मनुष्य-जीवन रूपी वृक्ष के सुमधुर फल को आज लोग अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखने लगे हैं और जहां भी किसी पुस्तक में या व्याख्यान आदि में यदि कोई काम का यथार्थ वर्णन भी करता है तो उसे अश्लील और गन्दा कहकर घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। आज यदि सन्तान हितैषी माता-पिता अपने पुत्र-पुत्री को काम के दुरुपयोग न करने की तथा उसके वशीभूत न होने की भी शिक्षा देते हैं तो उसे बेशरमी के नाम से पुकारा जाता है। यही कारण है कि आज माता-पिता अपनी आंखों से अपने पुत्र-पुत्री को पथभ्रष्ट होते तथा चरित्रहीन बनते देखते हुए भी उन्हें उस कुपथ से हटने की शिक्षा देते हुए शरमाते हैं। और तो क्या कई माता-पिता तथा शिक्षक लोग तो अपने बच्चों तथा छात्रों को जननेन्द्रिय सम्बन्धी तथा काम सम्बन्धी बातों की हवा भी नहीं लगने देना चाहते। परिणाम यह होता है कि हमारे देश में अधिकांश बालक युवावस्था से पूर्व ही अपने चरित्र-भ्रष्ट सहपाठियों तथा पास-पड़ोस के आचरणहीन साथियों की संगत से नाना प्रकार के वीर्यनाशक निन्दनीय तथा अप्राकृतिक ढंग सीख कर उनके द्वारा अपने शरीर को निर्वीर्य बना, नाना प्रकार के शारीरिक रोगों, कमजोरियों तथा मानसिक निर्बलताओं के शिकार हो जाते हैं और युवावस्था से पूर्व ही जवानी को नष्ट कर बूढ़े बन जाते हैं तथा अपनी भावी सन्तान को भी अपने समान निर्बल, रोगी और निर्वीर्य बना देते हैं।

वीर्य नाशकारी दुर्व्यसनों का एक बार चस्का लग जाने पर फिर उनसे पीछा छुड़ाना बहुत कठिन हो जाता है। अतः बाल्यकाल की कुटेवों तथा कदाचरण से उनका समस्त जीवन ही दुःखमय बन जाता है। क्या इस पाप के भागी वे माता-पिता तथा शिक्षक नहीं हैं, कि जिन्होंने अपने बच्चों तथा शिष्यों को उनके लिये उपयोगी कामशास्त्र सम्बन्धी बातों की हवा तक भी नहीं लगने दी, जिनका यह मुख्य कर्त्तव्य था कि वे अपने बालक-बालिकाओं को विवाह से पूर्व ही जननेन्द्रिय तथा कामशास्त्र सम्बन्धी आवश्यक बातों को बताकर उन्हें सचेत कर देते जिससे कि वे अपने शत्रुरूपी मित्रों के जाल में फंस कर अपने सर्वस्व का नाश न करते। यह विचारणीय बात है कि जबकि बालक जननेन्द्रिय सम्बन्धी आवश्यक बातों को मां के पेट से तो सीख कर आता नहीं, और माता-पिता तथा बड़े-बूढ़े इस सम्बन्ध में उसे कुछ बताते नहीं, बल्कि बताना पाप समझते हैं और आजकल का शिक्षक तो बच्चों को ब्रह्मचर्य सम्बन्धी आवश्यक बातें बताना तो पृथक्, उल्टा कई शिक्षक तो अपनी कुसंगति से उनके जीवन को बरबाद कर देने का कारण बनते हैं। फिर हमारे बच्चे नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में फंस कर निरुत्साही, रोगी, कायर, डरपोक, निर्बल, निस्तेज तथा निर्वीर्य बनें, तो क्यों न बनें।

विवाह से पूर्व काम-शास्त्र का ज्ञान आवश्यक

विवाह से पूर्व कामशास्त्र सम्बन्धी आवश्यक बातों को न जानने के कारण युवक विवाह करके इतना मदान्ध हो जाता है कि वह अपनी सहधर्मिणी की इच्छा-अनिच्छा की भी कुछ परवाह न कर, उसे काम शास्त्रोक्त प्रेममय वैज्ञानिक प्रयोगों, इसके लिये उसे उद्यत न कर, उसके कोमलाङ्गों पर जबरदस्ती बलात्कार करना ही अपना परम कर्त्तव्य समझता है जिसका परिणाम यह होता है कि स्त्री के अन्दर पति से उत्तरोत्तर प्रेम के बजाय घृणा की वृद्धि होती जाती है, और वह सुखमय दाम्पत्य जीवन दुःख और अशान्ति का कारण बन जाता है।

बेचारी कन्याओं को भी काम सम्बन्धी आवश्यक बातों की शिक्षा न मिलने के कारण, वे भी अपने कामान्ध पतियों को समझा कर उन्हें सत्पथ पर नहीं ला पातीं। बड़े आश्चर्य तथा दुःख की बात है कि जो माता और बहिन

अपनी पुत्री और छोटी बहिन के विवाह में सब लोगों के सम्मुख गन्दे गीत गाते-गाते नहीं शरमाती, उस माता और बहिन को विवाह से पूर्व अपनी पुत्री तथा छोटी बहिन को काम-शास्त्र की उचित शिक्षा देना भी गन्दी गालियों से बदतर मालूम होता है। यही कारण है कि काम शास्त्र से सर्वथा अपरिचित बेचारे दम्पत्ति जवानी के नशे में चूर हो कर, अल्पकाल में ही अपना सर्वनाश कर लेते हैं और फिर हाथ मल-मल कर पछताते हैं। मेरे पास यौगिक चिकित्सार्थ ऐसे युवकों के अनेक पत्र आते रहते हैं जिन्होंने अल्प आयु में ही अपना सर्वनाश कर लिया है। जब मैं उनके पत्रों में उनकी करुण कहानी पढ़ता हूं तो मुझे करुणा आ जाती है। इस प्रकार के पत्रों में से केवल एक पत्र जो कि कच्छ प्रान्त के एक युवक ने लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिए उद्धृत करता हूँ—

आदरणीय आचार्य जी ! सादर प्रणाम

मैं एक अपरिचित व्यक्ति आपको कष्ट दे रहा हूं। अतः क्षमा चाहता हूं। आशा है, आप मेरी दुःखमय कहानी ध्यान से पढ़ेंगे। इस समय मेरा इक्कीसवां वर्ष चल रहा है। किन्तु इस भरी जवानी में भी जैसा आन्दोल्लास, उत्साह व उमंग होनी चाहिये, वह कुछ भी मेरे अन्दर नहीं है। मेरे जीवन में केवल चिन्ताएं, निराशा और दुःख व दर्द ही शेष रह गया है। मैं जीवित होते हुए भी मृतक से भी गया बीता हूँ। जीवन वरदान के बदले अभिशाप बन गया है। मुझे तो यह जीवन एक भार सा प्रतीत हो रहा है और इस सब दुर्गति व विनाश का कारण मैं स्वयं हूँ। आप समझ तो सब कुछ गये होंगे। फिर भी कुछ खोलकर लिखता हूं। 'विनाश काले विपरीत बुद्धिः' किसी ने यह ठीक ही कहा है। जब मैं लगभग १४ वर्ष का था तब धार्मिक व नैतिक शिक्षा के अभाव से फलतः कुसंगति के कारण न जाने किस अशुभ घड़ी में पहली बार हस्तमैथुन कर बैठा। फिर तो यह दैनिक नियम ही बन गया। इस कुटेव ने मेरा सर्वनाश कर दिया। कभी-कभी तो दिन में दो-तीन बार भी हस्तमैथुन कर लेता था। उस समय मुझे केवल इतना ही ज्ञान था कि इस सफेद वस्तु का नाम 'वीर्य' है। किन्तु यह बोध नहीं था कि इस वीर्य पर ही मनुष्य का सारा जीवन अवलम्बित है।

इसके संरक्षण से ही मनुष्य में दिनोंदिन बल, पराक्रम, शौर्य तथा बुद्धि की अभिवृद्धि होती है और इसके विनाश से मनुष्य निवीर्य तथा निस्तेज बनकर संसार के सब रोगों तथा कमजोरियों का घर बन जाता है। इस समय इस कुटेव के कारण मुझ में ये सब रोग घर कर चुके हैं, जैसे जल्दी-जल्दी ज्वर का आक्रमण, सरदर्द, आंखों की कमजोरी, जुकाम, खांसी, सदा पूरे शरीर में दर्द रहना, फलतः आलस्य, थकावट, काम में जी न लगना, कब्जी, कभी घुटनों में भारी दर्द तो कभी कमर में दर्द। इसलिये अब मैं अपनी दुःखी जिन्दगी पर रोता हूँ। मैंने इस हस्तमैथुन के कारण उत्पन्न हुई स्वप्नदोष आदि बीमारियों के बड़े-बड़े प्रसिद्ध वैद्यों से इलाज भी कराये हैं। किन्तु बीमारियों ने मेरा पीछा नहीं छोड़ा। कोई समय था जब मैं पढ़ने में अपने सहपाठियों में फर्स्ट रहता था। किन्तु अब तो पढ़ने में बिल्कुल जी ही नहीं लगता। मैं सब तरफ से सर्वथा निराश हो ही चुका था। यहां तक कि मैंने कई बार आत्म-हत्या करने का भी विचार किया। इतने में अकस्मात् मुझे आपकी पुस्तक "योग और स्वास्थ्य" देखने को मिली। देखकर चित्त प्रसन्न हुआ और कुछ ढाढ़स मिली। आपकी पुस्तक को पढ़कर मुझे विश्वास हो गया है कि आप ही यौगिक चिकित्सा के द्वारा मेरे रोगों की चिकित्सा कर सकते हैं। अतः अब मैं आपकी शरण में हूं। इत्यादि। आपका दुःखी पुत्र—वासुदेव।

पत्र लम्बा है। अतः इसे हम यहीं समाप्त करते हैं। यह दयनीय दशा केवल उपर्युक्त युवक की ही नहीं, प्रत्युत् अस्सी प्रतिशत ऐसे युवक हैं, जो उपर्युक्त दुर्दशारूपी ग्रह से ग्रसित हैं। इसका कारण केवल मात्र बालक-बालिकाओं को काम सम्बन्धी नैतिक शिक्षा न देना ही है।

यदि विवाह या यौवनावस्था से पूर्व काम-शास्त्र की उचित शिक्षा देना उतना ही गर्हित तथा निन्दित होता, जितना कि आज समझा जाता है, तो महर्षि वात्स्यायन विवाह से पूर्व कन्याओं को काम-कला की शिक्षा देने का आदेश न देते। जैसा कि वे अपने 'कामसूत्र' ग्रन्थ लिखते हैं—

प्राग् यौवनात् स्त्री। —वा० का० सू० २

अर्थात् यौवनावस्था से पहले ही कुमारी कन्या को माता-पिता के घर

कामशास्त्र पढ़ना चाहिये । फिर यदि काम विज्ञान ऐसा ही गन्दा, अश्लील और त्याज्य होता, तो ब्रह्मनिष्ठ महर्षि वात्स्यायन काम सूत्रों की रचना ही न करते । अखण्ड ब्रह्मचारी दयानन्द अपने ग्रन्थों में गर्भाधान की स्पष्ट विधि का वर्णन न करते । महर्षि पाराशर अपने गृह सूत्रों में—

सा ना पूषा शिवतमामैरय सा न उरू उशति विहर ।
यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफं यस्यामु कामा बहवो निविष्ठ्यै ॥

पा० का० १/४/१३

इन बिल्कुल खुले तथा स्पष्ट कामोत्तेजक शब्दों में काम-क्रीड़ा का वर्णन न करते और महर्षि दयानन्द वात्सायन ऋषि के इन उपर्युक्त वाक्यों को अपनी संस्कार विधि में विवाह संस्कार में वरवधू के मुख से न कहलाते और तो क्या स्वयं ईश्वरीय ज्ञान वेद काम के मुक्त कण्ठ से गुणानुवाद न गाते और काम के रहस्यों को स्पष्ट शब्दों में न खोलते तथा रति-क्रीड़ा का स्पष्ट वर्णन न करते । देखिए अथर्ववेद ९/२/२० में काम के गुणानुवाद किन शब्दों में गाता है—

यावती द्यावापृथिवी वरिम्णा यावदापः सिष्यतुर्यावदग्निः ।
ततस्त्वमसि ज्यायान् विश्वहा महाँस्तस्मै ते काम नम इत कृणोमि ॥

अर्थात्—"हे कामदेव ! अपने विस्तार के कारण जितने द्युलोक तथा पृथिवी लोक महान् हैं, जितने जल महान् बनकर बहते हैं । जितनी अग्नि महान् बनकर प्रज्वलित होती है, तू इन सबसे भी बड़ा और महान् है । तू सबके मनों को घायल कर देने वाला है । इसलिए हे कामदेव ! मैं तुझे नमस्कार करता हूं ।"

इस मन्त्र में काम की महत्ता तथा व्यापकता को बताकर, अन्त में उसे नमस्कार किया गया है । ऊपर जो महर्षि पाराशर का वचन दिया गया है, उससे बिल्कुल मिलता-जुलता ऋग्वेद का भी मन्त्र है जिसमें काम शास्त्र के रहस्य को वैसा ही खोलकर स्पष्ट किया गया है । जैसा कि पाराशर ऋषि ने । हम यथास्थान उसका उल्लेख करेंगे और तो क्या हमारे ऋषियों ने तो इस 'काम विद्या' का अध्यात्म विद्या के साथ समन्वय कर उसे अध्यात्म विद्या का ही रूप दे दिया है । छान्दोग्य उपनिषद में काम-कलाओं को सामवेद के वाम-

देव्य गान की हिंकार आदि सप्त कला बताकर उसे सामवेद ज्ञान का रूप निम्न शब्दों में दिया है—

"उपमन्त्रयते स हिंकारः, ज्ञापयते सः प्रस्तावः, सहशेते स उद्गीथः, प्रतिस्त्री सहशेते सह प्रतीहारः, कालं गच्छति तन्निधनम्, पारंगच्छति तन्निधनम्, एतद् वामदेवं मिथुनं प्रोक्तम् ।"

"स्त्री के साथ एकान्त में प्रेमालाप करना हिंकार है। उसको आलिंगन आदि के द्वारा मनाना प्रस्ताव है। उसके पास सोना उद्गीथ है। उसके सह-वास में रहना प्रतिहार है। उसके साथ कालयापन करना तथा उसकी काम-वासना को तृप्त करना निधन है। इस प्रकार सामवेद का यह वामदेव्य गान पति-पत्नी के जोड़े में ओत-प्रोत है।" पाठक देखें छान्दोग्योपनिषद् में ऋषि ने किस प्रकार काम शास्त्र और अध्यात्म अर्थात् मोक्षशास्त्र का समन्वय किया है।

इस प्रकार हमारे वेद, उपनिषद्, वात्स्यायन तथा गृहसूत्र के कामकला सम्बन्धी प्रमाणों को उद्धृत करने का एकमात्र उद्देश्य यही है कि हम जिस प्रकार काम-शास्त्र को गर्हित, निन्दित तथा अश्लील समझकर उसकी उपेक्षा किये हुए हैं, उस प्रकार हमारे प्राचीन ऋषियों ने इसकी उपेक्षा नहीं की थी। वे काम-शास्त्र को भी अध्यात्म अर्थात् मोक्ष शास्त्र का एक अंग समझते थे। मोक्ष के उस परमानन्द को प्राप्त करने के लिए स्वस्थ, बलवान् तथा आदर्श सन्तान को जन्म देना भी वे परमावश्यक समझते थे। इसके लिए स्त्रीरूपी आदर्श भूमि में वीर्यरूपी आदर्श बीज का वपन किस प्रकार किया जाए, इस काम-विज्ञान को भी उन्होंने अध्यात्म विद्या का रूप देकर उसका मोक्ष शास्त्र के साथ समन्वय किया था और इस काम-विज्ञान को अन्य शास्त्रों के समान 'काम शास्त्र' के नाम से पुकारा था। किन्तु खेद है कि आज काम का नाम सुनते ही लोगों के मन में गर्हित तथा घृणित भावनाएं पैदा होने लग जाती हैं। और तो क्या, यदि कोई काम विषय की बात भी सुन ले तो वह वर्तमान सभ्य सौसायटी के योग्य नहीं समझा जाया। उससे लोग घृणा करने लगते हैं।

पाश्चात्य देशों में काम-विज्ञान की नित्य नई-नई पुस्तकें निकाली जा रही

हैं जिनमें युवक, युवतियों को कामशास्त्र की उचित शिक्षा दी जाती है। और तो क्या 'मेरीस्टोपस' जैसी देवियां भी इस विषय की पुस्तकें लिख कर अपने देश के युवक, युवतियों को कामरूपी मधुर फल का वास्तविक रसास्वादन कराने का प्रयत्न कर रही हैं। काम-शास्त्र सम्बन्धी डा० मेरीस्टोपस की एक पुस्तक का तो यूरोप की बारह भाषाओं में अनुवाद हो चुका है और इंगलिश में कई लाख प्रतियां बिक चुकी हैं। किन्तु हम हैं कि इस विषय का नाम भी सुनना महापाप समझते हैं और काम शब्द हमारे कानों तक को भी न छूने पाए, इसी को हम सदाचार के नाम से पुकारते हैं। काम विज्ञान की अनभिज्ञता से कितनी हानियां होती हैं, इस सम्बन्ध में अपना स्वयं का अनुभव, काम-विज्ञान की मर्मज्ञ, डा० मेरीस्टोपस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक "विवाहित जीवन" की भूमिका में निम्न शब्दों में लिखा है—

"मुझे अपने पहिले विवाह में काम विज्ञान की अनभिज्ञता की ऐसी भयंकर कीमत चुकानी पड़ी, कि मैं अनुभव करती हूं, कि इतनी बड़ी कीमत पर प्राप्त हुआ ज्ञान मैं मानव-जीवन की सेवा करने में ही अर्पण कर दूं।"

'काम' का दुरुपयोग

अब प्रश्न होता है कि यदि वास्तव में 'काम' इतनी महत्व की वस्तु है तो लोगों के मन में काम के प्रति इतने घृणित और गर्हित विचार क्यों हैं ? इसका एकमात्र कारण हैं काम का दुरुपयोग, अतियोग तथा घृणित प्रयोग। आज जो वैश्यागमन, परस्त्रीगमन, गुदागमन, पशुगमन तथा अतिगमन आदि अनेकों अप्राकृतिक, गर्हित और घृणित साधन काम लोलुपजनों में प्रचलित हो रहे हैं। इन अप्राकृतिक तथा निन्दित मैथुन क्रियाओं के कारण ही 'काम' बदनाम तथा निन्दित समझा जाने लगा है। यहां तक कि 'काम' का नाम लेते ही उपर्युक्त गर्हित तथा अप्राकृतिक मैथुन ही प्रायः हमारे सम्मुख उपस्थित हो जाते हैं, जो कि 'काम' के प्रति कुत्सित भावनाएं जागृत कर देते हैं और हम भी 'काम' का यही अर्थ समझने लगते हैं।

'काम' का सदुपयोग

'काम' का यथार्थ प्रयोग किस प्रकार किया जाए; 'काम' द्वारा अधिकाधिक

सुख तथा उत्तम बलिष्ठ सन्तान कैसे उत्पन्न की जाए, इसकी ओर हम तनिक भी ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि मनुष्य जीवनरूपी वृक्ष के इस कामरूपी मधुर फल के द्वारा जितना हमें सुख तथा आनन्द मिलना चाहिये, जिस प्रकार की वीर, धर्मात्मा, बलिष्ठ और निरोग सन्तान उत्पन्न होनी चाहिए, वह नहीं हो रही। उपर्युक्त विवेचन से पाठक-पाठिकाओं को यह स्पष्ट अवगत हो गया होगा कि 'काम' द्वारा सच्चा सुख और उत्तम सन्तान उत्पन्न करने के लिए कामशास्त्र का जानना प्रत्येक नवविवाहित दम्पत्ति के लिए कितना परमावश्यक है। इस कामविज्ञान के रहस्य को न जानना 'काम' द्वारा सुख और सन्तान से वञ्चित होना है।

अतः कामशास्त्र के जानने में जो नव दम्पत्ति लज्जा और शर्म अनुभव करते हैं, वे सदा ही इस सुमधुर फल द्वारा प्राप्त सुख और सन्तति से सदा वञ्चित ही रहते हैं। अतः जिस प्रकार शरीर की आरोग्यता के लिये आरोग्य विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान, भोजन विज्ञान तथा वैद्यक शास्त्र का जानना आवश्यक है। जिस प्रकार धार्मिक जीवन बनाने के लिये धर्म शास्त्र आवश्यक है। ब्रह्मतत्व को जानने के लिए मोक्षशास्त्र आवश्यक है। जिस प्रकार आत्मतत्व को पहिचानने तथा आत्मा की दिव्य विभूतियों को प्राप्त करने के लिए योगशास्त्र आवश्यक है, जिस प्रकार वाणी के वास्तविक रस को प्राप्त करने के लिए काव्य शास्त्र आवश्यक है, उसी प्रकार 'काम' द्वारा वास्तविक सुख तथा उत्तम, धर्मात्मा तथा बलिष्ठ संतान प्राप्त करने के लिए कामशास्त्र का जानना भी उतना ही परमावश्यक है।

जैसे आरोग्य शास्त्र के जाने बिना मनुष्य अपने शरीर को निर्बल और रोगी बना लेता है। जैसे धर्मशास्त्र के वास्तविक ज्ञान के बिना मनुष्य नानाप्रकार के धर्म के नाम पर चले अन्धविश्वासों तथा आडम्बरों में फंसकर अपने तथा अपने समाज के जीवन को दुःखमय बना लेता है। जिस प्रकार मोक्ष प्राप्ति के सच्चे साधनों की अनभिज्ञता के कारण श्रद्धालु मनुष्य ठगी साधुओं और पाखण्डी गोसाइयों के चक्र में फंसकर उल्टा अपने जीवन को दुःख तथा अशान्ति के बन्धन में डाल देता है। जिस प्रकार योग शास्त्र का वास्तविक ज्ञान न होने से मनुष्य योग के नाम पर होने वाले बाह्य हठ प्रयोगों को ही वास्तविक

योग समझ, उसी में ही अपने समस्त जीवन को खपा, योग के वास्तविक लाभ से वञ्चित रह जाता है, उसी प्रकार काम शास्त्र के वास्तविक ज्ञान के अभाव से उसके द्वारा उत्तम सन्तान तथा वास्तविक सुख की अभिलाषा रखता हुआ भी मनुष्य कामान्ध हुआ उल्टा सन्तानहीनता तथा दुःख का भी भागी बनता है। इसलिये आवश्यक है कि हम अन्य शास्त्रों की भांति कामशास्त्र को भी जानें, गर्हित और निन्दित समझ उसकी अवहेलना न करें।

'काम' के सम्बन्ध में कुछ आवश्यक निर्देश

अब हम पुस्तक के अगले पृष्ठों में प्रियपाठक, पाठिकाओं के लाभार्थ चरक ग्रन्थ, वात्स्यायन काम-सूत्र तथा वेद मन्त्रों के आधार पर कामशास्त्र की आवश्यक बातों का स्पष्टीकरण करेंगे। आशा है पाठक कामशास्त्र के इन अत्यावश्यक निर्देशों से लाभ उठा कर अपने गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बनायेंगे। पूर्व इसके कि हम कामशास्त्र की आवश्यक बातों का कुछ विषद वर्णन पाठकों के सम्मुख रखें, यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश के अभिलाषी युवक और युवती को कैसा बनकर गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहिए। अर्थात् उनके अन्दर किन गुणों का समावेश हो, जिससे कि वे अपने इस द्वितीय आश्रम में सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें तथा इस मानव-जीवनरूपी सुन्दर वृक्ष के तृतीय फल 'काम' से पूर्ण लाभ उठा सकें।

क्योंकि यदि पति, पत्नी विवाह के अयोग्य हैं, उन्होंने अपने जीवन में उन गुणों को धारण नहीं किया कि जिनका होना गार्हस्थ्य जीवन के लिए अत्यावश्यक है, तो वे यदि काम शास्त्र से परिचित भी क्यों न हो जाएं तो भी वे काम द्वारा अभीष्ट फल को प्राप्त नहीं कर सकते। यूं तो नव दम्पति के अन्दर उन सभी गुणों का होना परम आवश्यक है जिनका कि पहिले वर्णन किया जा चुका है, किन्तु शारीरिक बल और जितेन्द्रियता—ये दो ऐसे गुण हैं, जिनका विवाहेच्छुक वर-वधू के अन्दर होना परम आवश्यक है। बिना इन दोनों गुणों के वे काम द्वारा प्राप्त वास्तविक सुख तथा बलिष्ठ सन्तति, जो कि गार्हस्थ्य जीवन का मुख्य लक्ष्य है, प्राप्त नहीं कर सकते। इसीलिये विवाह

संस्कार में जिन प्रतिज्ञा के छः मन्त्रों को बोलकर वरवधू प्रतिज्ञा करते हैं उनमें से एक मन्त्र में वर स्वयं कहता है—हे देवि ! मैं कैसा बनकर अर्थात् किन गुणों को धारण करके तुम्हारा हाथ पकड़ रहा हूं। वर कहता है—

भगस्ते हस्तमग्रभीत सविता ते हस्तमग्रभीत

हे देवि ! मैं भग अर्थात् धनवान्, गुणवान् यशस्वी, वीर्यमान् और धर्मात्मा अर्थात् जितेन्द्रिय आदि गुणों को धारण करके और सविता अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने योग्य शरीर से बलवान होकर तेरा हाथ पकड़ रहा हूं। अर्थात् मैंने उपर्युक्त गुणों को पहिले अपने जीवन में धारण किया है और फिर तुम्हारा हाथ पकड़ा है। वर के इस प्रतिज्ञा वचन से विदित होता है कि पुराकाल में इन गुणों की प्रतिज्ञा करने पर ही वर और वधू विवाह करने के अधिकारी समझे जाते थे। केवल प्रतिज्ञा ही नहीं, प्रत्युत् वर की परीक्षा भी ली जाती थी जो कि अपनी कन्या के अनुरूप कन्या का पिता अथवा स्वयं कन्या लेती थी। इसी परीक्षा का दूसरा नाम था 'स्वयंवर'।

ऋषि दयानन्द अपने यजुर्वेद भाष्य में एक मन्त्र के भावार्थ में लिखते हैं — विवाह की इच्छा करने वाली युवती को चाहिये कि जो पुरुष छल, कपट आदि दुराचरण से रहित, सत्य स्वभाव का प्रकाश करते हुए, एक स्त्री व्रती, जितेन्द्रिय, उद्योगी, धार्मिक, दानशील अर्थात् उदार और विद्वान हो, उसके साथ ही विवाह करके निरन्तर सुख को प्राप्त करे।

जो युवक अपनी शारीरिक या मानसिक अयोग्यता के कारण या अन्य किसी कारण से गृहस्थ-जीवन के बन्धन में बन्धना नहीं चाहते, वे उसके बिना रह भी तो नहीं सकते। उन्हें किसी न किसी रूप में दाम्पत्य रूप में आना ही पड़ता है। क्योंकि प्रकृति और पुरुष का, अर्थात् नर और नारी का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। प्रकृति के बिना पुरुष नहीं रह सकता और पुरुष के बिना प्रकृति नहीं रह सकती। विधाता ने दोनों का सृजन ही इसीलिये किया है कि वे दोनों मिलकर एक दूसरे को नवजीवन प्रदान करते हुए अपने जीवन को सुखमय बना सकें। इस सम्बन्ध में श्री एफ. डब्ल्यू. वेन ने बहुत रोचक तथा सुन्दर लेख लिखा है। वे लिखते हैं—

हिन्दूओं के ब्रह्मा जब नारी की रचना करने बैठे, तब उन्होंने देखा कि उनका सारा मसाला तो पुरुष की रचना में ही समाप्त हो गया है और कोई भी ऐसा पदार्थ बाकी नहीं रहा। यह देख ब्रह्माजी बहुत चक्कर में पड़े कि क्या करें। अन्त में बहुत सोच-विचार के पश्चात् उन्होंने चन्द्रमा की गोलाई ली, लताओं का लिपटना लिया, नन्हीं-नन्हीं टहनियों का घुमाव लिया, दूर्वा-घास का कम्पन लिया, नर जाति की क्षीणता ली, पुष्पों का खिलना लिया, पत्तियों की ताजगी ली, हाथी की सूंड का आकार लिया, हिरण की दृष्टि ली, मधुमक्खियों की पंक्ति का चिपटना लिया, वायु की चंचलता ली, खरगोश की भयव्याकुलता ली, मोर का अभिमान लिया, कमल की कोमलता ली, अग्नि की उष्णता ली, हिम की शीतलता ली, तोते की अनवरत टें टें ली, कोयल की कू कू ली, कौए की मक्कारी ली और चालाकी ली और सारस की वफादारी ली।

इन सब मसालों को खरल में डाल कूट पीसकर एकदिल किया और उससे नारी की रचना कर ब्रह्मा ने उसे पुरुष को सौंप दिया। एक सप्ताह के पश्चात् पुरुष ब्रह्मा के पास आया और बोला—भगवन्! आपने जो मुझे एक विचित्र जन्तु प्रदान किया है, उसने तो मेरी जिन्दगी आफत में डाल दी है। वह दिन भर लगातार बातें ही करती रहती है। मुझे इतना परेशान करती है कि अब सहन करना भी कठिन हो गया है। वह मुझे कभी अकेला तो छोड़ती ही नहीं, उसके उचित-अनुचित व्यवहार पर मुझे हर वक्त ध्यान देना पड़ता है। वह मेरा सारा समय ले लेती है। वह बिना बात रोती है, बिना बात हंसती है और हर वक्त बेकार रहती है। इसलिए मैं उसके साथ अब नहीं रहना चाहता। आपने ही उसे दिया है और आप ही कृपा करके उसे वापस ले लीजिये। मैं अकेला ही भला? ब्रह्मा ने कहा—

"बहुत अच्छा" और नारी को पुरुष से वापस ले लिया। एक सप्ताह गुजर जाने पर पुरुष फिर ब्रह्माजी के पास पहुंचा और कहने लगा—भगवन्! जब से मैंने उस विचित्र जन्तु को लौटाया है तब से यह एकाकी जीवन मेरे लिए नीरस बन गया है। रह-रह कर याद आती है कि वह मेरे लिए कैसी प्रसन्न होकर नाचती थी। कैसी मस्त होकर गाती थी। कनखियों से कैसे प्रेमभरी

दृष्टि से देखती थी। वह मेरे साथ खेलती थी। मुझसे लिपट जाती थी। उस की मुस्कुराहट में सुरीला राग भरा था। उसके दर्शन में सौन्दर्य था। स्पर्श में कोमलता थी। इसलिये भगवन् ! कृपाकर उसे फिर मुझे लौटा दीजिये।

ब्रह्मा ने कहा—"बहुत अच्छा" और नारी को फिर पुरुष के हवाले कर दिया। केवल तीन ही दिन व्यतीत हुए थे कि मनुष्य फिर ब्रह्मा के पास आया और बोला—भगवन् ! मेरी समझ में कुछ नहीं आता, कि मुझे क्या हो जाता है। पुनः मैं इसी परिणाम पर पहुंचा हूं कि स्त्री मेरे लिए सुख के बजाए दुःख की ही वस्तु है। अतः इसे आप फिर वापस ले लीजिये। इस पर ब्रह्माजी ने बिगड़ कर कहा—निकलो, यहां से भाग जाओ ! जैसे भी तुम से बने, इसे समझा लो और अपने पास रखो। मैं अब ज्यादा तुम्हारी बातें नहीं सुनना चाहता। तब पुरुष बोला—किन्तु मैं तो स्त्री के साथ नहीं रह सकता। ब्रह्मा ने उत्तर दिया—लेकिन तुम इसके बिना रह भी तो नहीं सकते !

श्री वेन के इस रोचक गद्य काव्य के लिखने का भी निष्कर्ष यही है कि पुरुष और प्रकृति का परस्पर अटूट सम्बन्ध है। अतः यदि पुरुष नारीरूपी प्रकृति को छोड़ना भी चाहे तो भी नहीं छोड़ सकता। डा० मेरीस्टोप्स न अपनी "मैरिड लाईफ" नामक पुस्तक में लिखा है—

नवयुवक और नययुवती अधिक भावुक, अधिक कल्पनाशील और अधिक आदर्शवादी होते हैं। उनकी आत्मायें किसी ऐसी प्यारी आत्मा के लिए तड़पती रहती हैं कि जिसके साथ उनका समस्त जीवन घुल-मिल जाए। इस अभिलाषा का अंश प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर होता है। नीरस से नीरस व्यक्ति भी इस अभिलाषा से वञ्चित नहीं होता। दाम्पत्य जीवन की अनेक कहानियों से पता लगता है कि सच्चे जीवन संगी के अभाव में जीवन में सफल से सफल व्यक्ति भी सूनापन अनुभव करता है। मानो उनकी आत्मा के किसी ने पांव काट दिये हैं। इसलिए तो वेद ने कहा है—जैसा कि हम पहिले लिख आए हैं—

इहैव स्तं मा वि यौष्ट विश्वमायु व्यश्नुतम्।
क्रीडन्तौ पुत्रैर्नप्तृभिर्मोदमानौ स्वे दमे ॥

"हे पति पत्नी ! तुम दोनों यहीं एक साथ मिलकर रहो। एक दूसरे से

अलग मत होवो। पुत्रों और नातियों के साथ खेलते हुए अपने घर में आनन्द मनाते हुए अपनी सम्पूर्ण आयु मिलकर सुखों का भोग करते हुए गुजार दो।"

दाम्पत्य के अनिवार्य सम्बन्ध पर एक और पाश्चात्य विद्वान के विचार सुनिये—

"प्रत्येक पुरुष और स्त्री के मन में यह स्वाभाविक इच्छा रहती है कि हमें ऐसा जोड़ीदार मिले जिसके साथ हमारा खुला लेन-देन हो। जिससे किसी प्रकार का छुपाव और पर्दा न हो। जिसका शरीर अपने शरीर के समान प्यारा लगे। जिसके साथ मेरे तेरे का कोई प्रश्न न उठे। हमारे विचार जिसके मन में स्वयं ही अनायास बहकर चले जाएं। मानो जो एक के दिल में समाए, दूसरे के दिल में भी वही समा जाए। हमारी खुशियां और रंज, हमारे आनन्द और चिन्तायें, लाभ और हानि सब एक हों।

जिसके होते हुए संसार के अन्य सब आनन्द तुच्छ और नगण्य प्रतीत हों। जिसके होते हुए धन और सम्पत्ति आदि किसी वस्तु की आवश्यकता प्रतीत न हो। जो यदि कुछ समय के लिए भी हमसे अलग हो, तो जब तक हम उसे फिर देख न लें, चैन न आए। तात्पर्य यह है कि एक अत्यन्त अन्तरीय मित्र के प्राप्त करने की सब के मन में एक बहुत उत्कट अभिलाषा और चाहना होती है जो कि प्रत्येक पुरुष और स्त्री के मन में बलपूर्वक और अत्यन्त वेग से उठती है। इस प्रबल इच्छा की पूर्ति के लिये विवाह ही एक ऐसा दैवी सम्बन्ध है, जो बहुत हद तक इस प्रबल इच्छा को पूर्ण कर सकता है।

इस मार्ग पर चलते हुए कई लोग तो अपनी इच्छा को पूर्ण होते हुए देख लेते हैं। किन्तु कई ऐसे भी हैं, जो कहते हैं कि विवाह करके हमें उतना भी आनन्द नहीं आता जितना कि रविवार की छुट्टी मनाने में। इसका कारण विवाह नहीं, प्रत्युत् यह है कि उन्होंने अपने दाम्पत्य जीवन में किसी ऐसे नियम को तोड़ा है, कि जिस नियम के आधार पर पति-पत्नी पारस्परिक सम्बन्ध और उनकी मित्रता आश्रित है। जिस प्रकार हारमोनियम या सितार सीख लेने के पश्चात् ही उनमें से मिठी और सुरीली तान निकाली जा सकती है। उसी प्रकार गार्हस्थ्य जीवन के सब नियम सीखे समझे बिना विवाह का सर्वोत्कृष्ट आनन्द नहीं उठाया जा सकता।

कई लोग यह भी समझते हैं कि वर्तमान विवाहित स्त्री से सम्बन्ध तोड़कर किसी और स्त्री से सम्बन्ध या मैत्री करके जीवन का आनन्द उठाया जा सकता है। किन्तु ऐसे मनुष्य इस बात को भूल जाते हैं कि जिस पुरुष को एक स्त्री से सुख प्राप्त करने का ढंग नहीं आया, वह दूसरी से भी कैसे सुख प्राप्त करने की आशा रख सकता है।"

उपर्युक्त पाश्चात्य विद्वान् के ये उद्धरण महत्वपूर्ण हैं। इनसे पता लगता है कि जीवन को सुखमय बनाने के लिये विवाह जितना अत्यावश्यक है उतना ही उन गुणों को भी अपने जीवन में धारण करना आवश्यक है, जिनके धारण करने से ही गार्हस्थ्य जीवन सुखमय बन सकता है। गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करने से पूर्व युवक और युवती को अपने अन्दर किन गुणों को धारण करना चाहिये, इसे हम अथर्ववेद १२/५/७ का मन्त्र निम्न लिखित सुन्दर वचन द्वारा पाठकों के सम्मुख रखते हैं :—

ओजश्च, तेजश्च, सहश्च बलञ्च वाक् चेन्द्रियं च श्रीश्च धर्मश्च।

अर्थात् "हे मनुष्यो ! तुम गृहस्थाश्रम को सुखमय बनाने के लिए अपने अन्दर ओज, तेज, सहनशीलता, बल, सुन्दर तथा मधुर भाषण, संयमी तथा बलवती इन्द्रियां, धन, ऐश्वर्य और धर्म को धारण करो।" वास्तव में यदि हमारे युवक और युवतियां गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने से पूर्व अपने अन्दर वेद में दर्शाए इन गुणों को धारण कर लें, तो उनका गार्हस्थ्य जीवन स्वर्गधाम बन जाए, और इस मनुष्य जीवनरूपी सुन्दर वृक्ष के कामरूपी फल का भली प्रकार से आस्वादन कर, अपने जीवन को सुखमय बना लें।

वृष्य और वाजीकरण

वृष्य और वाजीकरण क्या है ?

यूं तो मानव-देह में अनेक महान् शक्तियां निहित हैं, किन्तु दाम्पत्य जीवन के लिये विवाह से पूर्व वर-वधू में विशेषकर वर में दो शारीरिक शक्तियों का होना अत्यावश्यक है, जिन्हें आयुर्वेद में वृष्य और वाजीकरण नाम से कहा गया है। ये दोनों शारीरिक बल या शक्तियां 'काम' का वास्तविक लाभ उठाने के लिये परम आवश्यक हैं। बिना इन दोनों शक्तियों के मनुष्य पौरुषहीन

होकर गार्हस्थ्य सुख भोगने तथा उत्तम बलिष्ठ सन्तान उत्पन्न करने सर्वथा अयोग्य ही रहता है। इसीलिये वेद में कहा है—

वृषा वाजी रेतोधा रेतो दधातु। यजु० २३/२०

अर्थात् "गर्भरूप में अपनी पत्नी के अन्दर वीर्य को धारण करने वाला पुरुष वृष और वाजी के समान वीर्य को धारण करें।" तात्पर्य यह है कि काम द्वारा वास्तविक सुख का उपभोग करने के लिये और तेजस्वी तथा बलवान् सन्तान प्राप्त करने के लिए मनुष्य को वृष्य और वाजी दो शक्तियों को अवश्य धारण कर लेना चाहिये। अतः विवाह से एक-दो मास पूर्व ही पुरुष को ऐसे पदार्थों का सेवन प्रारम्भ कर देना चाहिये, जो वृष्य और वाजी-करण हों। अब हम नवदम्पति के लाभार्थ कुछ ऐसे पदार्थों और योगों (नुस्खों) को लिख रहे हैं जो कि वृष्य और वाजीकरण हैं। वाजीकरण औषधियों के लाभों का वर्णन करते हुए आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य बाणभट्ट लिखते हैं—

"काम सुख भोगने के अभिलाषी को सदा वाजीकरण औषधियों के सेवन की अभिलाषा करनी चाहिये और बड़ी चाह व शौक से उनका सेवन करना चाहिये क्योंकि वाजीकरण औषधियां मन में प्रसन्नता, शरीर में बल और शक्ति का संचार करती हैं। गुणबान् और बलवान् सन्तान देती हैं। ये उत्तम पुत्ररत्न की प्राप्ति तथा तत्काल आनन्द देने वाली हैं, जिनके सेवन से मनुष्य वली अर्थात् घोड़े के समान बलवान और अप्रतिहत शक्ति वाला होकर युवती स्त्रियों के साथ रमण करता है और उनका प्यारा बनता है। वाजीकरण देह में बुद्धि, वल और पराक्रम प्रदान करने वाला है। वाजीकरण निर्बल पुरुषों के दुःखों को दूर करने वाला, उनके प्रेम को निभाने वाला और उनके शरीर की रक्षा करने वाला है।"

वाजीकरण का वर्णन करते हुए वैद्य हरिदासजी अपने 'चिकित्सा चन्द्रोदय' में उसकी महत्ता का निम्न शब्दों में वर्णन करते हैं—

जिस वाजीकरण के आशय तुष्टि, पुष्टि और सन्तान है, जो वाजीकरण यश, मान, धन, धर्म और कुल को बढ़ाने वाला पुत्र दे सकता है। जो युवती स्त्रियों को सन्तुष्ट कर उन्हें पुरुष की दासी बना सकता है, ऐसे वाजीकरण

को कौन सेवन करना न चाहेगा। एक समय था, जब हम भारतवासी सदा, सर्वदा विशेषकर शीतकाल में वाजीकरण औषधियों को अवश्य सेवन किया करते थे। इसी से वे महा बलवान् और पराक्रमी हुआ करते थे। उनकी सन्तान भी रूपवती, बलवती और बुद्धिमती होती थी। उनकी स्त्रियां सच्ची पतिव्रता और भारत का मस्तक ऊंचा करने वाली होती थीं। उनको आजकल की तरह आधि-व्याधियों का शिकार नहीं होना पड़ता था। और इसी के कारण क्षण-क्षण में वैद्यों और डाक्टरों का मुंह नहीं देखना पड़ता था।

वे पूर्णायु भोगकर और संसार में अपना यश और कीर्ति छोड़ कर, ठीक समय मृत्यु आने पर सुख से अपना शरीर छोड़ते थे। अकाल मृत्यु उनके दर्शन मात्र से दूर भागती थी। जब से भारतवासियों ने आयुर्वेद का पढ़ना छोड़ा और आयुर्वेद विद्या आयु को बढ़ाने वाली न होकर, केवल धन्धा कमाने वाले वैद्यों की विद्या बन गई और लोगों ने बिना कामशास्त्र पढ़े ही गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करना शुरू कर दिया, तब से अधिकांश लोग वाजीकरण किस चिड़िया का नाम है, यह भी नहीं जानते हैं। यदि कोई जानते भी हैं तो केवल वैद्य विद्या से रोटी कमा खाने वाले कुछ वैद्यगण।

/ वाजीकरण औषधियों का व्यवहार घट जाने या बिल्कुल नष्ट हो जाने के कारण ही यहां के निवासी अल्पवीर्य, अल्पायु, अल्पपुरुषार्थी, अल्पधनी और अल्पबुद्धि हो गये। उन पर दूसरे देश वालों ने आकर अपना सिक्का जमाया। उन्हें गुलाम और दास बनाया। यूनानी यात्री मैगास्थनीज के कथनानुसार जिस भारत में ढूंढ़ने पर भी व्यभिचारिणी या पर-पुरुष परायण स्त्रियां नहीं मिलती थीं, आज उसी भारत में अपतिव्रता नारियों की भरमार हो रही है। जिस प्रकार दो-अढ़ाई हजार वर्ष पूर्व अपतिव्रता नारी देखने को न मिलती थी, उसी प्रकार अब पतिव्रता किसी भाग्यशाली के घर में ही शायद हो तो हो। यह सब वाजीकरण औषधियों के सेवन न करने का ही दुष्परिणाम है।"

वाजीकरण शक्ति बढ़ाने के कुछ अनुभूत योग

उपर्युक्त दोनों उद्धरणों से वाजीकरण का महत्व पाठकों के हृदय में भली प्रकार हृदयंगम हो गया होगा। अब हम पाठकों के लाभार्थ कुछ सरल, सस्ते और

अत्यन्त पुष्टिप्रद वाजीकरण योग (नुस्खे) लिख रहे हैं। आशा है पाठक इनके प्रयोग से पूरा-पूरा लाभ उठायेंगे।

१—अत्यन्त वाजीकरण खीर

उर्द की धुली दाल एक छटांक के करीब जल में भिगो रखें। जब दाल भीगकर फूल जाए, तब सिलबट्टा पर पीसकर उसे असली घृत में सेकें। जब कुछ लाल पड़ जाए, अर्थात् भली प्रकार सिक जाए तब उसमें दूध डाल दें और धीमी-धीमी आंच में पकने दें। खीर को कड़छी से हिलाते रहें अन्यथा नीचे लग जायेगी। फिर उचित मात्रा में शक्कर डाल दें। जब खीर गाढ़ी पड़ जाए तब उतारकर कुछ ठण्डी होने पर खा लें। चाहें तो उसमें किशमश, चिरोंजी आदि मेवे भी डाल सकते हैं। यदि बनते समय उसमें थोड़ी पिसी सोंठ डाल दी जाए तो और भी अच्छा है। यह खीर अत्यन्त बलदायक तथा परम वाजीकरण है। यदि विवाह से कुछ समय पहले से ही इसका सेवन करना प्रारम्भ कर दिया जाए तो और भी अच्छा है।

२—वाजीकरण हलवा

ढाक की छाल का रस, गेहूं का मैदा, बूरा और देशी घृत, इन चारों चीजों को ले लें। मैदा को घृत में सेकें। सिक जाने पर उसमें ढाक की छाल का रस तथा बूरा डाल दें। चाहें तो किशमिश आदि भी डाल सकते हैं। हलवा तैयार हो जाने पर खा लें। यह हलवा अत्यन्त वाजीकरण, पुष्टिप्रद तथा आनन्ददायक है।

३—अत्यन्त वाजीकरण गोलियां

कस्तूरी १ माशा, स्वर्ण भस्म १ माशा, जायफल १ माशा, जावित्री ४ माशा, केशर ४ माशा, अस्वर १ माशा । इन सब चीजों को मिलाकर आधा-आधा-पाव वराण्डी और अदरक के रस में खरल करके चने के बराबर गोलियां बनाएं। प्रातः-सायं दूध के साथ एक-एक गोली ४० दिन तक सेवन करें। यदि शीघ्र पतन की शिकायत हो तो मोती और चांदी की भस्म ३-३ माशे और डाल दें।

४—वाजीकरण का एक सरल प्रयोग

सितोपलादि चूर्ण १ तोला, भैंस का खालिस घी १ तोला, इन दोनों को कांच या मिट्टी के पात्र में डालकर, उसमें गाय या भैंस का धारोष्ण दूध दोह कर पी लें। इस प्रकार दोनों समय लगातार दो मास तक पीने से शरीर में अपार शक्ति का संचार होता है।

५—बाजीकरण का एक गरीबी नुस्खा

सतगिलोय असली ६ माशे, वड़ का दूध ६ माशे, मिश्री १ तोला, मिश्री को बारीक पीसकर तीनों चीजों को मिला लो और दोनों समय खाओ। इस औषधि से वीर्य के समस्त रोग तथा दोष दूर होकर, वह शुद्ध हो जाता है और गाढ़ा तथा पुष्ट होता है और बाजीकरण का काम देता है।

६—अत्यन्त पुष्टिकारक तथा समस्त रोगनाशक अपूर्व नुस्खा

त्रिफला, मुलहटी, महुए के फूल, कमलगट्टे की गिरी, जायफल और दालचीनी इन सबको एक-एक छटांक लेकर पीस-कूट कर छान लो और तीन छटांक मिश्री कूट कर मिला दो। इसमें से प्रतिदिन १ तोला औषध लेकर एक तोला घृत, ६ माशे शहद में मिलाकर खाओ। इससे शरीर के समस्त रोग तो नष्ट होते ही हैं। किन्तु वल बढ़ाने और शरीर को पुष्ट करने के लिए इसके समान और नुस्खा है ही नहीं। अतः वाजीकरण शक्ति प्राप्त करने के अभिलाषी इस नुस्खे का अवश्य सेवन करें।

अपनी सामर्थ्य तथा प्रकृत्यानुसार उपर्युक्त योगों में किसी भी योग का सेवन करते समय वाजीकरण शक्ति के अभिलाषी को अपना आहार, विहार भी तदनुकूल ही बनाना ही चाहिए। ऐसा करने से शीघ्र ही अभीष्ट फल की प्राप्ति होती है। आहार से तात्पर्य है—मनुष्य सदा ऐसे ही पदार्थों का सेवन करे, जो वाजीकरण शक्ति के बढ़ाने वाले तथा उसे सुरक्षित रखने वाले हों। हम पाठकों के लाभार्थ नीचे उन पदार्थों का भी उल्लेख कर रहे हैं, जो कि वाजीकरण शक्ति के बढ़ाने वाले हैं।

गेहूं, जौं, अरहर, आलू, गोभी, अर्वी, भिण्डी, केला, लौकी, जिमीकन्द, चौलाई, दही, दूध मक्खन, घृत, मावा (खोया) मिश्री, गुड़, चीनी, फलों में

फालसे, मीठे आम, आमरस, खरबूजे, सन्तरे, शहतूत, सेव, सीताफल, सिंघाड़े, पेड़ का पका बेल, अनार, मीठा नींबू, पका केला, नारियल आदि उपर्युक्त सब पदार्थ बल, वीर्यबर्धक, हृदय और मस्तिष्क को शक्ति प्रदान करने वाले तथा वाजीकरण हैं।

नीचे हम प्रिय पाठकों के लाभार्थ कुछ वाजीकरण भोजन भी लिख देते हैं।

१—भात

साठी के या बढ़िया पुराने चावलों को पका, तय्यार कर, उनमें गाय या भैंस का घृत डालकर धुली हुई उर्द की दाल के साथ खायें। चावलों में से मांड कभी नहीं निकालना चाहिए।

२—मूंग की दाल का हलवा

मूंग को भिगो रखो। जब भीग जाए तो सिलबट्टे पर या चक्की में पीस लो, फिर उसमें कम से कम बराबर का घृत डालकर खूब सेको। जब दाल लाल पड़ जाए, अर्थात् खूब सिक जाए, तब उसमें दुगनी शक्कर तथा भुना हुआ मावा (खोया) डालकर खूब हिलाओ। जब हलवा तय्यार हो जाये, कुछ ठण्डा होने पर खाओ। बीच में बादाम, किशमिश आदि मेवे भी डाल सकते हो।

३—दलिया

जौं या गेहूं के दलिए को गौ के घृत में डालकर मन्दी-मन्दी आंच पर खूब भूनो। जब सिक जाए, उसमें गाय का गर्म किया हुआ, दूध डाल दो। बादाम, किशमिश, नारियल आदि मेवे भी डाल दो। थोड़ा केशर और बारीक सोंठ भी डाल दो। जब दलिया खूब गल कर दूध के साथ एकमय हो जाए, उसमें उचित मात्रा में शक्कर डालकर थोड़ी देर आंच पर रहने दो, फिर उतारकर कुछ ठण्डा हो जाने पर खाओ।

४—खीर

खालिस दूध ४ सेर, चावल बढ़िया १ पाव, शक्कर ३ पाव, इलायची के दाने ६ माशे, किशमिश २ तोले, कतरी हुई महीन गरी ३ तोले, कतरा हुआ पिस्ता १½ तोला, बादाम की साफ मींगी २ तोले, अर्क केवड़ा ६ माशे, चांदी

के वर्क ६ माशे, दूध को गर्म करके उसमें चावलों को छोड़ दो और धीमी आंच में कड़छी से हिलाते रहो। जब चावल गल जाए तब पिस्ते, बादांम, किशमिश, गिरी और इलायची को उसमें डाल दो। पिस्ते और बादाम को थोड़े गर्म जल में डाल, छिलका उतार बारीक कतर कर पहिले तैयार रखो। जब खीर खूब घुट जाए, तो उतार कर चीनी और अर्क केवड़ा डाल दो और फिर चांदी की अथवा कलईदार तश्तरियों में डाल कर ऊपर से चाँदी के वर्क चिपका दो और खाओ।

वाजीकरण औषधियां या भोजन सेवन करते समय पथ्यापथ्य का भी ध्यान रखना चाहिये जो कि निम्न प्रकार है—

वाजीकरण सेवन में पथ्य

(१) तेल की मालिश, (२) पौष्टिक तथा बलप्रद पदार्थों का सेवन, (३) उवटन लगाना, (४) स्नान करना, (५) सुगन्धित फूलों की माला पहिनना, (६) गाना बजाना, (७) सुन्दर पलंग पर सोना, (८) सुन्दर चिड़ियाओं आदि का चहचहाना, (९) चांदनी रात, (१०) गहनों की झंकार, (११) अपनी सुन्दर तथा प्रिय पत्नी के पैर दबाना। ये सब वाजीकरण के अभिलाषी के लिए पथ्य हैं।

वाजीकरण सेवन में अपथ्य

अधिक लाल मिर्च, खटाई तथा तेल के पके और चटपटे पदार्थ खाना। अधिक व्रत-उपास रखना अर्थात् भूखे रहना, बहुत अधिक परिश्रम करना, बहुत बैठना, अधिक स्त्री प्रसंग करना, स्त्री से सर्वथा अलग रहना, स्त्री का झगड़ालू तथा गुस्से के स्वभाव वाला होना। निर्धनता, कुरूपता आदि के कारण अपनी स्त्री में रुचि तथा प्रीति का न होना, भय तथा चिन्ता करना, रोगी रहना, दिन में सोना, शोक तथा रंज करना, स्त्री का आचरणहीन होना तथा वृद्धावस्था—ये सब वाजीकरण प्रिय पुरुष के लिये अपथ्य हैं। यदि कोई कितने भी वाजीकरण औषधि या पदार्थ खाए, किन्तु उपर्युक्त अपथ्यों में से किसी एक का भी अति सेवन करें तो उसे कुछ भी लाभ न होगा, यदि होगा भी तो बहुत थोड़ा। अतः उपर्युक्त अपथ्यों से सदा दूर रहना चाहिये।

बाजीकरण औषधियों तथा पकवानों के सेवन में सावधानी

वाजीकरण औषधि तथा पकवान उसी मनुष्य को सेवन करना चाहिये, जिसे स्वप्नदोष या प्रमेह का रोग नहीं है। क्योंकि वाजीकरण औषधियाँ जहां शरीर को हृष्ट-पुष्ट तथा बलवान् बनाती हैं, वहां शरीर में वीर्य की वृद्धि करती हैं। अतः यदि स्वप्नदोष का रोगी या प्रमेह का बीमार उन्हें खायेगा तो इससे वीर्य की वृद्धि होने से तथा उसके दूषित वीर्य में मिल जाने से ये दोनों रोग और अधिक बढ़ेंगे और बजाए लाभ के हानि अधिक होगी। अतः उपर्युक्त दोनों रोगों को अपने आहार, व्यवहार, औषध सेवन तथा योग के आसन, प्राणायाम आदि के द्वारा दूर कर पुनः वाजीकरण औषधियों का सेवन करना चाहिये। नीचे हम प्रिय पाठकों के लाभार्थ कुछ सरल तथा रामबाण नुस्खे स्वप्नदोष तथा प्रमेह को दूर करने के लिये लिख रहे हैं।

स्वप्न-दोष

१—स्वप्न-दोष का नाशक योग

गोखरू, तालमखाने, शतावर, कौंच के छिले हुए बीज, खिरेंटी के बीज, प्रत्येक एक-एक छटांक लेकर अलग-अलग कूट-पीसकर छान लो। फिर सबको मिलाकर शीशी में डालकर रख दो। इसमें से सायं-प्रातः तीन-तीन माशे खा कर ऊपर से धारोष्ण दूध पीओ। इस नुस्खे को २१ दिन तक सेवन करने से शुक्रमेह, शीघ्रपतन, स्वप्न दोष तथा धातुक्षीणता नष्ट होकर खूब बल, वीर्य की वृद्धि होती है और तीन-चार मास लगातार सेवन करने से समस्त धातु-रोग समूल नष्ट हो जाते हैं।

२—स्वप्न-दोष पर एक गरीबी नुस्खा

त्रिफला तीन भाग, बच का एक भाग—इन दोनों को बारीक कूट तथा छानकर बराबर का पुराना गुड़ मिला लो और चार-चार रत्ती की गोलियां बना लो। एक-एक गोली दोनों समय शीतल जल से लो।

३—सब प्रकार के वीर्य दोष पर चूर्ण

वाराही कंद का चूर्ण तथा मिश्री दोनों को समभाग लेकर, पीसकर रख लो और ६-६ माशा सायं-प्रातः लेकर ऊपर पावभर गौ का धारोष्ण दूध पी

लो। इससे सब प्रकार के वीर्य दोष दूर होकर वीर्य शुद्ध और पुष्ट होता है।

४—स्वप्न-दोष पर एक शतप्रतिशत लाभदायक चूर्ण

शुद्ध भीमसेनी कपूर १ माशा, पिसी छनी हल्दी १ तोला, पिसी छनी शीतल चीनी ६ माशे, अफीम २ रत्ती और पिसी हुई मिश्री २ तोले। सबको मिलाकर छान लो और साफ बोतल में रख लो। रात्रि को उसमें से २ माशा खाकर ऊपर से थोड़ा सा जल पी लो। इस औषधि को एक मास लगातार खाने से स्वप्न-दोष बिल्कुल चला जाता है।

५—स्वप्न-दोष से बहुत शीघ्र आराम कराने वाला सरल नुस्खा

कागजी बादाम की गुल्ली १ अदद, मिश्री ३ माशे, उत्तम लूनीघृत ३ माशे और गिलोय का सत ३ माशे—इन सबको ६ माशे शहद में मिलाकर सवेरे शाम चाटने से बहुत शीघ्र ही स्वप्न-दोष दूर हो जाता है। बादाम की गुल्ली तथा मिश्री को पीस लें।

६—एक और सरल तथा निश्चित लाभप्रद नुस्खा

सफेद मूसली, कौंच के बीजों की गिरी, शतावर, सूखे आंवले तथा शक्कर इन सबको दो-दो तोले लेकर कूट-पीसकर छान लो तथा उसमें अढ़ाई तोले गिलोय का सत मिला दो। इसमें से उसे लेकर ६ माशे तक खाकर ऊपर से गाय का गर्म दूध पी लो। स्वप्न-दोष अवश्य दूर होगा।

हमारी यह हार्दिक अभिलाषा है कि हमारे पाठक गार्हस्थ्य-जीवन के सच्चे सुख को प्राप्त करें। उनके शरीर स्वस्थ, बलवान् तथा वीर्यवान् हों। उनके अन्दर बल, पौरुष और उत्साह हो। उनकी सन्तान हृष्ट, पुष्ट, बलवान् तथा बुद्धिमान हो। किन्तु यह तभी सम्भव है, जब कि आप स्वप्न-दोष आदि वीर्य रोगों से मुक्त हों। अतः हम यहां इस शरीर रूपी सुन्दर नगरी के परम शत्रु स्वप्न-दोष तथा प्रमेह के कारण, पूर्वरूप तथा उनके लक्षणों को थोड़ा विस्तार से दे रहे हैं, जिससे प्रिय पाठक इनके यथार्थ स्वरूप को जानकर इनसे बचने का प्रयत्न करें।

स्वप्न-दोष के कारण

१—हस्तमैथुन, गुदामैथुन तथा अति मैथुन करना, २—नाटक, थियेटर,

सिनेमा तथा वेश्यादिका नाच देखना, ३—सिनेमादि में देखी ऐक्ट्राओं की शृंगारिक भावभंगी को बार-बार याद करना, ४—हर समय उनका ही ध्यान रखना तथा उनसे मिलने के मनसूबे बान्धना, ५—मन में क्षोभ तथा कामोत्तेजक गन्दे उपन्यास आदि ग्रन्थों को पढ़ना, ६—यार दोस्तों में बैठकर स्त्रियों के सौन्दर्य आदि की चर्चा करना, ७—अपनी स्त्री को भी पीहर आदि चले जाने पर बार-बार याद करना, ८—पहले अतिमैथुन करके फिर एकदम रुक जाना, ९—सोजाक और उपदंश का शरीर में बने रहना, १०—विषयी और कामी पुरुषों की संगत करना, ११—जठराग्नि का मन्द होना अर्थात् भूख खुलकर न लगना, १२—हमेशा बद्धकोष्ठ अर्थात् कब्जी का बना रहना, १३—मलमूत्र के वेग को रोकना, १४—अधिक मानसिक परिश्रम करना, १५—चाय, कहवे आदि का अतिमात्रा में सेवन करना, १६—रात्रि को गहरी नींद का न लेना, १७—रात्रि को अधिक खाना और खाते ही सो जाना, १८—रात्रि को अधिक गर्म दूध पीना, १९—बहुत खट्टी, मीठी, गर्म और चरपरी चीजें खाना, २०—रात्रि को पेशाब करके न सोना तथा रात्रि को पेशाब आने पर उसे रोक लेना, २१—प्रातः सूर्योदय तक सोते रहना, २२—गरिष्ट और भारी पदार्थ खाना, २३—भंग, चरस, गांजा और तम्बाकू आदि नशीले तथा विषैले पदार्थ खाना, २४—लंगोट का कसकर बांधना, २५—थोड़ा सा भी कभी स्वप्न दोष हो जाने पर रात-दिन उसी की चिन्ता में लगे रहना, २६—चित्त को प्रसन्न न रखकर हमेशा उदास रहना इत्यादि।

जो सज्जन स्वप्न दोष से बचना चाहते हैं। उन्हें अपने अन्दर से उपर्युक्त कारणों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये।

स्वप्न-दोष के पूर्वरूप तथा उसके लक्षण

अब हम स्वप्न-दोष के पूर्वरूपों अर्थात् लक्षणों का कुछ वर्णन करेंगे, जिससे पाठक इन लक्षणों में से किसी एक के उत्पन्न होते ही सावधान हो जाएं तथा उसे दूर करने का प्रयत्न करें।

१—हाथ पैर के तलवों में दर्द होना, २—थोड़े से परिश्रम या ऊंचाई पर चढ़ते ही हांपने लगना, ३—अधिक प्यास का लगना, ४—तालु, गला,

जीभ और दांत पर मैल का अधिक जमना, ५—हर समय नींद जैसी हालत बने रहना, किन्तु गहरी निद्रा का न आना, ६—"क्षणे रूष्टः, क्षणे तुष्टः" स्वभाव का होना, ७—शरीर में विशेषकर बगलों में दुर्गन्ध का आना; ८—मन में उत्साह तथा स्फूर्ति का न होना, ९—चित्त का हमेशा रहना; १०—शरीर में थकान सी बने रहना, ११—मुख में मीठापन सा बने रहना, १२—हाथ पावों का सो जाना, तथा स्पर्श शक्ति का अभाव, १३—मुख, तालु तथा कण्ठ में खुश्की का बने रहना, १४—खड़े होने पर बैठने की तथा बैठने पर सोने की इच्छा होना, १५—पेशाब का अधिक आना, १६—पेशाब पर मच्छरों, मक्खियों तथा चींटियों का अधिक बैठना। इत्यादि।

शरीर में उपर्युक्त लक्षण होते ही समझ लेना चाहिये कि अब इस रोग का आगमन होने वाला है। उसी समय इसके प्रतिकार का प्रयत्न प्रारम्भ कर देना चाहिये।

स्वप्न-दोष रोग उत्पन्न होने के पश्चात् के लक्षण

१—स्वप्नावस्था में किसी सुन्दर स्त्री को देखने, छूने और आलिंगन करने अथवा अन्य किसी प्रकार के गन्दे स्वप्न के होने पर, तथा जागृत अवस्था में भी स्त्री के देखने, छूने, आलिंगन करने या सहवास से पूर्व ही वीर्यपात हो जाना, २—दिमाग का खाली सा बने रहना, सिर में दर्द रहना, आंखों के सामने धुन्धलापन रहना, सिर में चक्कर आना तथा याददाश्त का कमजोर हो जाना, ३—कमर में दर्द रहना, सीधा बैठने में थकान का अनुभव करना, ४—किसी एक बात में मन न लगकर चित्त का चंचल बने रहना, ५—शरीर में आलस्य का बने रहना, किसी भी काम के करने में मन का न लगना; ६—आंखों के चारों ओर काला या नीलापन आ जाना, रोशनी का कम हो जाना, आंखों के चारों ओर खड़े होकर उनका भीतर घुस जाना, ७—हाथों और पैरों के तलवों का जलना तथा उनमें से आग सी निकलना, ८—मन में सदा उदासी का बने रहना, कभी भी चित्त प्रसन्न न रहना, ९—दिल का धड़कना, या धक-धक सा होना, १०—शरीर का अति कमजोर तथा कान्ति हीन हो जाना, ११—चेहरे पर रौनक कम होना, १२—भोजन का कभी हजम

हो जाना, कभी न होना, १३—कब्जी (बद्धकोष्ठ) का बने रहना, १४—निद्रा का कम आना या बिल्कुल न आना, १५—हाथ पैरों के तलवों में पसीना आना, १६—हाथ, पैरों का सो जाना, १७—पीठ में थोड़ा बहुत दर्द का बने रहना, १८—भूख बन्द हो जाना, १९—जवानी में ही बालों का सफेद हो जाना, २०—वीर्य का गाढ़ापान दूर होकर पानी के समान पतला हो जाना, २१—मुख और शरीर से दुर्गन्ध का आना, २२—पेशाब में कभी-कभी जलन का होना, २३—गले की आवाज का बिगड़ जाना, कभी-कभी खांसी होना तथा गले में कफ का बने रहना, २४—अण्डकोषों (फोतों) का ढीला, लम्बा तथा लिबलिवा हो जाना, २५—जननेन्द्रिय का एक ओर झुक जाना तथा बच्चे के समान छोटा हो जाना, २६—मुख पर फुन्सियां और मुहासे हो जाना आदि ।

इन सब या इनमें से कुछ एक लक्षणों के उत्पन्न होते ही समझ लेना चाहिये कि यह शत्रु अब शरीर में प्रविष्ट हो चुका है। अतः अब इसके निकालने का भरसक प्रयत्न करना चाहिये। यदि स्वप्न-दोष या प्रमेह आदि शत्रुओं को अपनी शरीररूपी सुन्दर नगरी से निकालने का प्रयत्न नहीं किया जाए तो ये शत्रु आगे चलकर नपुन्सकतारूपी भयंकर शत्रु को जन्म देकर शरीर को गार्हस्थ्य जीवन के सर्वथा अयोग्य बना देते हैं जिससे यह गार्हस्थ्य जीवन दम्पत्ति के लिये अत्यन्त दुःखमय बन जाता है और गृहस्थी फिर पछताता और हाथ मसलता रह जाता है।

प्रमेह

प्रमेह के लक्षण तथा कारण

प्रसंगवश यहां हम थोड़ा प्रमेह रोग का भी वर्णन कर देना उचित समझते हैं जिससे प्रिय पाठक इस शत्रु से भी बचने का प्रयत्न कर सकें। स्वप्न-दोष तथा प्रमेह दोनों ही वीर्य सम्बन्धी रोग हैं, जिनके कारण वीर्य अकारण ही नष्ट होता रहता है। इन दोनों में इतना ही अन्तर है कि स्वप्नदोष में तो वीर्य स्वप्नावस्था में ही खारिज होता है, किन्तु प्रमेह रोग का वीर्य सदा ही पेशाब के साथ या उसके आगे-पीछे खारिज होता रहता है और आगे जाकर

इन दोनों रोगों के कारण वीर्य अत्यन्त पतला तथा दूषित बनकर स्त्री को देखते या उसके स्मरण मात्र से ही वीर्य शरीर से निकल जाता है, तथा वह गार्हस्थ्य जीवन के वास्तविक उद्देश्य को पूर्ण नहीं कर पाता। प्रमेह के कारण और लक्षण वही हैं, जो कि स्वप्नदोष के हैं।

जो नासमझ लोग आयुर्वेद या कामशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ हैं, वे वीर्यरूपी अमूल्य रत्न का मूल्य न समझने के कारण अत्यन्त स्त्री प्रसंग, हस्त मैथुन, गुदामैथुन तथा अन्य अप्राकृतिक मैथुनों में फंसकर इस अमूल्य वीर्य रत्न को नष्ट कर देते हैं। ऐसे नासमझ लोगों को ही प्रमेह हो जाया करता है क्यों कि अत्यन्त मैथुन या हस्तमैथुन आदि कुटेवों द्वारा वीर्य का अतिह्रास होने से जहां वीर्य पतला तथा दोषयुक्त हो जाता है, वहां वीर्य को रोकने वाली नस ढीली पड़ जाती है। ऐसी अवस्था में वीर्य को न रोक सकने के कारण स्त्री के देखते या स्पर्श मात्र से ही वीर्य निकल जाता है।

प्रमेह नाशक कुछ अनुभूत योग

अब हम पाठकों के लाभार्थ प्रमेह नाशक कुछ अनुभूत गरीबी योग (नुस्खे) नीचे दे रहे हैं। आशा है प्रमेह रोगाक्रान्त पुरुष इनसे अवश्य लाभ उठायेंगे।

१—हरड़, बहेड़ा, आमला, नागरमोथा, बड़ की छाल, पीपल की छाल, लोध, गूलर की छाल, पिलखन की छाल, प्रत्येक ३ माशे, रसौंत अलसी २ माशे—इन सबको जौं के साथ कूट करके रात को आधा सेर पानी में भिगो दें। प्रातः औटाएं, जब ३ छटांक पानी शेष रह जाए तब उस में ताजी गिलोय का रस ६ माशे मिलाकर पीवें। ऊपर से आंवले का मुरब्बा खावें, दूध, दही, मिर्च, घी और सब प्रकार के मीठे से परहेज रखें। यह प्रयोग प्रमेह रोग के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

२—**प्रमेहामृत**—मोती की सीप की भस्म ४ तोले, सफेद तिल्ली की मूसली १० तोले, तजसूरती १० तोले इन सबको कूट, पीस, छानकर शीशी में भर कर रख लो और ४० दिन तक शहद में मिलाकर सेवन करो। इससे बीसियों प्रकार के प्रमेह नष्ट हो जाते हैं।

३—बबूल के नर्म पत्ते और नर्म कलियों को छाया में सुखा कर पीस लो

फिर इसमें बराबर मिश्री पीस कर डाल दो। सवेरे-शाम तीन-तीन माशे चूर्ण खाकर ऊपर ताजा जल पीओ। इससे सब प्रकार के प्रमेह और स्वप्नदोष निश्चित दूर होते हैं।

४—कच्ची हल्दी का रस १ तोला, शहद १ तोला दोनों मिला कर पीने से वीर्य पुष्ट होता है, तथा प्रमेह रोग दूर होता है। (४-अ) इसी प्रकार सूखी हल्दी के चूर्ण को घी में भूनकर और उसमें समभाग मिश्री मिला कर दूध के साथ सेवन करने से भी प्रमेह रोग दूर होता है।

५—आमले का स्वरस १ तोला, शहद १ तोला दोनों मिला कर पीने से प्रमेह रोग दूर हो जाता है।

६—सूखे आमले के चूर्ण को शेष आमले के रस में जितनी भी अधिक भावना दे सकें, देकर सुखा लें और बारीक पीस कर शीशी में भर कर रख दें और आधा तोला सांय-प्रातः दूध के सायं लें। प्रमेह निश्चित दूर होगा। यदि १०० भावना दी जायें तो फिर तो कहना ही क्या है। निश्चत ही सब प्रकार के वीर्य विकार दूर होंगे।

७—कौंच के १ पाव बीजों को गौ के दूध में १२ घन्टे तक भिगो रखें, फिर छिलके उताकर, महीन पीस कर, पिट्ठी बनालें। फिर उसे घी में तल कर एक-एक तोला के बड़े वनालें, तथा शुद्ध शहद में डाल दें। उनमें से एक या दो बड़े सुबह खाकर ऊपर से दूध पी लें। यह धातु पुष्टि की अत्युत्तम औषध है।

काम-शास्त्र की आवश्यक जानकारी

इस प्रकार अपने शरीर को ऊपर दर्शाए उपयों द्वारा नीरोग, स्वस्थ; बलवान् तथा तेजस्वी बनाने के पश्चात् गृहस्थ जीवन का सच्चा सुख प्राप्त कर लेना भी परम आवश्यक है। अर्थात् उसकी कतिपय अत्यन्त आवश्यक तथा महत्त्वपूर्ण बातों को भली प्रकार से जान तथा समझ लेना चाहिए। अब हम नवदम्पत्ति के लिए काम-शास्त्र की उन अत्यावश्यक बातों को वेद तथा महर्षि वात्स्यायन के काम-सूत्र के आधार पर पाठकों के सम्मुख रखते हैं।

पूर्व तय्यारी

काम-रति में प्रवृत्त होने, अर्थात् स्त्री-प्रसंग करने की अवस्था से पूर्व जो व्यवहार करना आवश्यक है, उसे पूर्व तय्यारी कहते हैं। वह पूर्व तय्यारी क्या है, इसके ऋग्वेद निम्न शब्दों में वर्णन करता है।

> शं पूषन शिवतामेरयस्व यस्यां बीजं मनुष्या वपन्ति ।
> या न उरु उशती विश्रयाते यस्यामुशंतः प्रहराम शेफम् ।।
>
> ऋ० १०, ८५, ३७

स्पष्ट 'काम' सम्बन्धी बातों को अश्लील समझने की मनोवृत्ति वाले कहीं ऋग्वेद के इस महत्वपूर्ण काम प्रसंग को कुत्सित न समझलें, इसलिए हम इस मन्त्र का शब्दार्थ न देकर केवल भावार्थ ही दे रहे हैं। भावार्थः—

हे पुष्टिप्रद ! अर्थात् बलवान् पुरुष ! तू अत्यन्त कल्याण-प्रदा अपनी स्त्री को काम-क्रिया की ओर प्रेरित कर। जिसमें कि मनुष्य अपनी भावी सन्तान के लिए वीर्यरूपी बीज का वपन करते हैं। जो तेरे द्वारा 'काम' के लिए प्रेरित हुई और तेरी हृदय से कामना करती हुई स्वयं अपने शरीर को तेरे अर्पण कर दे और जिसमें हम भी उस कामातुर पत्नी को पूर्णकामना करते हुए सहवास द्वारा उसकी कामना को तृप्त करें।

सम्भवतः पाठक ऋग्वेद के इस स्पष्ट वर्णन को अश्लील समझेंगे। किन्तु वेद ने इस एक ही मन्त्र में कामशास्त्र के सम्पूर्ण रहस्य को गागर में सागर के समान भर दिया है। मन्त्र में कामशास्त्र की मुख्यतया चार बातों का बड़ा मार्मिक वर्णन किया है।

१—पहिली बात —पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी स्त्री से प्रसंग करने से पूर्व अपने को 'पूषा अर्थात् हृष्ट, पुष्ट और बलवान् बनाले। तब वह स्त्री-प्रसंग में प्रवृत हो। अत्यन्त निर्बल, अशक्त और रोग ग्रस्त होने की अवस्था में वह स्त्री-प्रसंग की इच्छा भी न करे। यदि वह ऐसी अवस्था में भी प्रसंग करता है, तो न तो उसे सम्भोगजन्य वास्तविक सुख ही मिल सकता है, और न ही उसके द्वारा उसे बलवान्, हृष्ट, पुष्ट और वीर सन्तान की ही प्राप्ति हो सकती है।

२—दूसरी मार्मिक बात वेद मन्त्र में यह कही गई है कि मनुष्य को केवल विषय भोग जन्य सुख की अभिलाषा से ही स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिए। प्रत्युत् उत्तम सन्तान उत्पन्न करना, यही उसके स्त्री-प्रसंग का मुख्य लक्ष्य होना चाहिए। उसे स्त्री-प्रसंग के समय यह भावना रखनी चाहिए कि मैं अपनी धर्मपत्नी रूपी भूमि में वीर धर्मात्मा सन्तान को प्राप्त करने के लिए वीर्य रूपी बीज का वपन कर रहा हूं।

३—मन्त्र में तीसरी जो 'काम' सम्बन्धी महत्वपूर्ण बात कही गई है, वह यह है कि, उसे स्त्री-प्रसंग से पूर्व अपनी स्त्री को उसके लिए आलिंगन, स्पर्शन, चुम्बन तथा प्रेमालाप आदि अनेक प्रकार की प्रेरणाओं द्वारा पूर्णतया तय्यार कर लेना चाहिए। यहां तक कि वह आपकी इन काम-कलाओं के प्रयोग से इतनी कामाकुल हो जाए कि वह स्वयं अपने आपको आप के अर्पण कर दे। आपको उस पर बलात्कार न करना पड़े। इसीलिए वेद ने कहा—"पूषन्! शिवतमाम् + ऐरयस्व" हे वीर्य सिंचन में समर्थ पुरुष! तू अपनी कल्याणप्रदा प्रमदा को काम के लिए प्रेरित कर। उसे इसके लिए इतना उत्सुक बना दे कि वह वास्तविक अर्थों में 'प्र+मदा' बनकर अर्थात् मद से व्याकुल होकर स्वयं ही अपने को आपके अर्पण कर दे, अर्थात् जब आपका बाह्य काम-कला प्रयोग आपकी प्रेयसी की यह अवस्था पैदा कर दे, तब आपको स्त्री-प्रसंग में प्रवृत्त होना चाहिए। इससे पूर्व कदापि नहीं।

स्त्री और पुरुष की काम-जागृति और समाप्ति में बहुत अन्तर है। पुरुष की काम-जागृति जहां शीघ्र हो जाती है, वहां स्त्री की रति तृप्ति बहुत विलम्ब से होती है। पुरुष की काम-जागृति जहां स्त्री के दर्शन मात्र से भी हो जाती है। वहां स्त्री की रति जागृति केवल पुरुष के दर्शन मात्र से ही नहीं होती, प्रत्युत् पुरुष के उपर्युक्त प्रयोगों के पश्चात् ही होती है।

अतः यदि पुरुष ने अपने प्रेमालिंगन आदि प्रयोगों से स्त्री की रति शक्ति को बिना जागृत किए ही स्त्री-प्रसंग किया तो जहां स्त्री अपने ऊपर पुरुष का बलात्कार समझेगी और उसको न केवल सम्भोग से, प्रत्युत् पति से भी घृणा हो जाएगी, वहां बिना रति शक्ति जागृति के सहवास करने पर उसकी तृप्ति

भी पूर्णतया न हो सकेगी। इस अतृप्ति का प्रभाव न केवल स्त्री पर प्रत्युत्-पुरुष पर भी बहुत बुरा पड़ता है। पुरुष-प्रसंग से अतृप्त स्त्री जहां पति से घृणा करती है—वहां उसे अनेक प्रकार के ताने देना भी प्रारम्भ कर देती है—तू हीजड़ा है, नपुंसक और नकारा है। इन तानों को सुनकर यदि पुरुष नपुंसक और नाकारा नहीं भी होता तो भी उसकी भावनायें वैसी ही बनती जाती हैं और एक दिन वह वास्तव में स्त्री के अयोग्य हो जाता है। इसका सन्तानोत्पत्ति पर भी बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है।

यदि स्त्री और पुरुष का समकाल में स्खलन नहीं होता, तो प्रथम तो सन्तान होती ही नहीं, यदि होती भी है तो कमजोर और रोगी। कभी-कभी अंग विकल तथा अंग विकृत भी उत्पन्न होता देखी गई है, अर्थात् या तो उसके शरीर का कोई अंग होता ही नहीं और यदि होता भी है तो विकृत रूप में। इसलिए वेद के शब्दों में स्त्री को रति-प्रसंग के लिए पूर्ण आतुर होने पर ही प्रसंग करना चाहिए, अन्यथा नहीं। यहां तक कि वह स्वयं अपने शरीर को पति के अर्पण कर दे। जैसा कि मन्त्र में कहा गया है—"सा न उरू उषती विश्रयाते" इसीलिए महर्षि वात्स्यायन ने अपने कामशास्त्र में आलिंगन, चुम्बन, नखछेदन, दशन, सम्वेशन, सीतकार आदि कई प्रकार के सम्प्रयोग लिखे हैं। यथा—

कीर्तनान्ते च रागेण परिष्वंगैः स चुम्बनैः।
तैस्तैश्च भावैः संयुक्तो यूनो रागो विवर्धते॥

अर्थात्—"प्रेमालाप से, नाना प्रकार के आलिंगनों और चुम्बनों से युवक और युवति दोनों कामाकुल होकर प्रसंग के लिए पूर्णतया उद्यत हो जाते हैं।'

मन्त्र में एक बात और मार्के की कही गई है। वह यह कि जहां स्त्री के पूर्णतया उद्यत हो जाने पर ही सम्भोग करना चाहिए, वहां पुरुष को भी इसके लिए पूर्णतया उद्यत होना चाहिए अर्थात् जब वह स्वयं भी पूर्णतया कामातुर हो जाए, तभी स्त्री-प्रसंग करे। इससे पूर्व नहीं। इसीलिए मन्त्र में कहा गया है—

यस्यामुशन्तः प्रहराम शेफम्

सम्भवतः पाठक पूछेंगे—यह कैसे हो सकता है कि स्त्री तो प्रसंग के लिए

उद्यत हो जाए, किन्तु पुरुष न हो, जिसका कि काम स्त्री की अपेक्षा बहुत जल्दी जागृत हो जाता है। हम महर्षि वात्स्यायन के मतानुसार इस विषय पर भी कुछ प्रकाश डाल देना उचित समझते हैं।

वात्स्यायन ऋषि ने अपने काम के वेग की दृष्टि से प्रत्येक स्त्री पुरुष के तीन भेद बताए हैं। 1—मन्द वेग, 2—मध्य वेग तथा ३—चण्डवेग। जिस स्त्री-पुरुषों में काम के वेग की न तो बहुत तीव्रता है और न ही बिल्कुल कमी, वे मध्यम वेग वाले कहलाते हैं, और जिनमें काम का वेग बहुत अधिक है, वे स्त्री-पुरुष चण्ड वेग वाले कहे जाते हैं। यदि समान वेग वाले स्त्री पुरुष में विवाह हो गया तो सर्वोत्तम है। किन्तु यदि दुर्भाग्य से विषम वेग वाले स्त्री पुरुष में विवाह सम्बन्ध हो जाता है, और स्त्री तो है चण्ड वेग वाली तथा पुरुष है मन्द वेग वाला। तब स्त्री की कामदीप्ति पुरुष की अपेक्षा जल्दी होगी, और पुरुष की देर से।

ऐसी अवस्था में यदि पुरुष अपनी पूर्ण काम दीप्ति के बिना स्त्री प्रसंग से करेगा, तो न तो उसे स्वयं तृप्ति होगी, और न ही अपनी स्त्री को तृप्त कर सकेगा। अतः पुरुष का कर्त्तव्य है, जहां प्रसंग से पूर्व अपनी स्त्री को उपर्युक्त उपायों द्वारा तय्यार करले, वहां स्वयं को भी पहले वेगयुक्त बना कर फिर रति कार्य में संलग्न हो, पुरुष के मन्द वेग होने की अवस्था में स्त्री का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि वह जल्दी न करे। प्रत्युत् अपने पति को अपने हाव, भाव, आलिंगन, चुम्बन आदि के द्वारा पूर्णतया तय्यार कर ले।

इसीलिए महर्षि वात्स्यायन ने स्त्री के लिए भी कामशास्त्र का ज्ञान बहुत जरूरी माना है। जैसा कि वे लिखते हैं—

तस्माद् वैश्वासिकाद् जनाद् रहसि प्रयोगान् शास्त्रमेकं देशं वा स्त्री ग्रहणीयात्। "इसीलिए कन्या भी विवाह से पूर्व किसी विश्वास पात्र स्त्री से काम के सम्पूर्ण अथवा कुछ एक प्रयोगों को एकान्त में सीखे।" आशा है प्रिय पाठक वेद के "यस्यामुशन्तः" इस वाक्य के महत्व तथा रहस्य को भली प्रकार समझ गये होंगे। रति आरम्भ से पूर्व कैसी तैयारी करनी चाहिए, इसका दिग्दर्शन हमने ऊपर कर दिया। वात्स्यायन ने इस पूर्व तैयारी को अपने काम शास्त्र में

एक स्थान पर कुछ विस्तारपूर्वक तथा स्पष्ट शब्दों में लिखा है। हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर वात्स्यायन के वचनों को ही उद्धृत कर रहे हैं। आशा है पाठक इनमें यदि कोई अनुपयोगी बात है, तो उसकी उपेक्षा कर उपयोगी बात को ग्रहण करेंगे। वे अपने कामशास्त्र के दशवें अध्याय के प्रारम्भ में ही लिखते हैं—ग्रन्थ विस्तारभय से हम मूल सूत्रों का अर्थ ही नीचे दे रहे हैं—

"विवाह के पश्चात् नागरिकजन अपने मित्रों तथा सेवक जनों सहित रतिगृह को (जो कि शयनागर से पृथ हो) फूलों आदि से सजा कर उसे हवन अथवा इत्र आदि की सुगन्ध से सुगंधित करें। वहां पर स्नान की हुई तथा वस्त्रालंकार आदि से सुभूषित अपनी स्त्री के समीप सान्त्वना देता हुआ दांई ओर जाकर बैठे। पहिले केशों को, फिर हाथों को, फिर वस्त्र को और अन्त में कटि के वस्त्र छुए, और पकड़े। प्रेम बढ़ाने के लिऐ अपना बांया हाथ पीठ पर रखे। अपने पुराने प्रेम सम्बन्धों का स्त्री को स्मरण करावे और हंसी प्रमोद करे। जो गुप्त बातें हों, और दूसरों के सम्मुख कहने और करने की न हों, उन्हें भिन्न प्रकार से व्यंगों के रूप में कहे। नाच या बिना नाच के गाना, बजाना हो, काम की सुन्दर कलाओं का वर्णन करे। जब देखे कि अब मेरी प्रियतमा मुझ पर पूर्णतया अनुरक्त हो गई है, तो पुष्प माला, चन्दन तथा ताम्बूल से यदि कोई घनिष्ठ मित्रादि बैठे हों तो उन्हें बिदा करदे। इस प्रकार एकान्त कमरे में पूर्वोक्त प्रकार से पुनः आलिंगन आदि करे और उसे अपनी ओर आकर्षित करे, इत्यादि।"

उपर्युक्त पूर्व तय्यारी विशेषकर विवाह के प्रारम्भ में प्रथम सम्मिलन के अवसर पर तो अत्यावश्यक है। क्योंकि नव-वधू जहाँ कोमलांगी है, वहां लज्जाशील भी होती है। ऐसी अवस्था में उसके प्रेमालाप, आलिंगन आदि से अपनी ओर आकर्षित न कर एक दम उसके ऊपर घोर अत्याचार करना है। इससे उस कोमलांगी नव-वधू के मन में न केवल पति के प्रति प्रत्युत् पतिप्रसंग के प्रति भी घृणा उत्पन्न हो जाती है, जो कि आगे चल कर परस्पर के कलह का कारण बनती है, जिससे दाम्पत्य जीवन बजाए सुख के दुःख का कारण बन जाता है।

नवयुवक और युवती को परस्पर के प्रेमोपचार तथा काम-कला की शिक्षा न मिलने से युवक एकदम काम में अन्धा होकर पशु के समान विवाह के प्रथम मिलन में ही अपनी कोमलांङ्गी पत्नी पर घृणास्पद अत्याचार प्रारम्भ कर देता है, जिसका परिणाम यह होता है कि वह पति पत्नि के मिलन की प्रथम सुहाग रात्रि भी परस्पर के प्रेम और गाढ़ अनुराग का कारण न बन, उल्टा परस्पर की घृणा और ग्लानि का कारण वन जाती है, जो पारिवारिक जीवन को नरक के समान दुःखदाई बना देती है। इसके विपरीत—

एवं चित्तानुगो बालानुपानयेत प्रसाधयेत् ।
तथास्य सानुरक्ता च सुविस्रब्धा प्रजायते ।।

आत्मनः प्रीति जननं योषितां मानवर्धनम् ।
कन्या बिसृम्भणं वेत्ति यः सः तासां प्रियो भवेत् ।।

—वा० कामसूत्र

"इस प्रकार नव विवाहिता के चित्त की वृत्तियों को जानकर जो पुरुष उसे युक्तिपूर्वक अपने प्रेमपाश में बांध लेता है, वह नव विवाहिता वधू प्रारम्भ में ही उसके अनुकूल बनकर उसकी दासी वन जाती है। (१) अपने प्रति स्त्रियों के हृदय में प्रीति उत्पन्न करना, (२) अपने सद्व्यवहार से स्त्रियों का मान बढ़ाना, तथा नवविवाहिताओं के हृदय में अपना विश्वास उत्पन्न करना, जो पुरुष इन तीन बातों को जानता है, वही स्त्रियों का प्रेमपात्र बन सकता है।"

स्त्री प्रसंग कब करना चाहिये इस विषय में ऋषि दयानन्द अपनी "संस्कार विधि" नामक पुस्तक में लिखते हैं—

"जब दोनों का शरीर आरोग्य, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, तब गर्भाधान अर्थात् स्त्री प्रसंग करना चाहिये।" —संस्कार विधि।

वात्स्यायन ऋषि तो यहाँ तक लिखते हैं कि नव विवाहित युवक प्रथम तीन रात्रियों में तो पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ केवल अपनी प्रेयसी के साथ प्रेमालाप ही करे। सम्भोग में भूलकर भी प्रवृत्त न हो। जब वह प्रेमालाप तथा आलिंगन आदि के द्वारा अपनी प्रेयसी का अपने को प्रेमपात्र बना ले, आर उसके मन को अपनी ओर पूर्णतया आकर्षित करले, तब उसके सम्मुख

अपने मनोभिलाषित प्रस्ताव को रखे। जैसा कि वे अपने कामसूत्र में लिखते हैं --

उपक्रमेत विस्रम्भयेच्च न तु ब्रह्मचर्यमति वर्तेत ।

वा० का० 2।2॥

अर्थात्—'युवक प्रथम तीन रात्रियों में अपनी पत्नी के पास जाए, उसके साथ प्रेमालाप आदि भी करे। किन्तु ब्रह्मचर्य का भंग न करे।" पति अपने पत्नी के साथ प्रथम तीन रात्रियों में ऐसा व्यवहार क्यों करें ? इसका कारण हुए वे कहते हैं--

कुसुम सहधर्मणो हि योषितः सुकुमारोपक्रमाः ।
तास्त्वनधिगत विश्वासैः ।।
प्रसभमुपक्रम्यमाणाः संप्रयोग द्वेषिणो भवन्ति ।
तस्मात् साम्नैवोपचेरत् ।।

चूंकि स्त्रियां फूलों के समान कोमल होती हैं, इसलिये बहुत सुकुमारता से उनके साथ रति क्रिया का प्रारम्भ करना चाहिये। अर्थात् जब तक उसकी लज्जा दूर न हो जाए, और पति के प्रति पूर्ण अनुराग न हो जाए, तब तक पति को उन पर बलात्कार नहीं करना चाहिये। यदि प्रेमालापों आदि के द्वारा पत्नी को अपने ऊपर आकर्षित किए बिना उसके ऊपर बलात्कार किया गया, तो वह सम्भोग की द्वेषी बन जायेगी, और उससे घृणा करने लगेगी। इसलिये प्रेम से ही उसे अनुकूल बनाएं, न कि बलात्कार से।"

पति पत्नी को किस प्रकार वश में करे, इसका सुन्दर वर्णन भी आप अथर्ववेद में पढ़ें—

यथेदं भूम्या अधितृणं वातो मथायति ।
एवा मथ्नामिते मनो यथा मां कामिन्यसो यथा मन्नापगा असः ।

अ० 2।30।१

एकान्त में पति पत्नी से कहता है—"हे प्रिय पत्नी ! जिस प्रकार पृथ्वी पर पड़े हुए घास के तिनके को धीमी-धीमी चलती हुई मन्द सुगन्ध पवन उसे इधर से उधर हिलाती रहती है। अर्थात् उसका मंथन कर डालती है। यहां

तक कि वह तिनका अन्त में उस मन्द सुगन्ध पवन से प्रेम करता हुआ उसके साथ उड़ने के लिये तय्यार हो जाता है, उसी प्रकार मैं भी तुझे आलिंगन आदि के द्वारा बार-बार हिलाता हूं। प्रेमालाप आदि के द्वारा तेरे मन का मन्थन करता हूं। उसे अपने वश में करता हूँ। जिससे तू मेरी कामना करने वाली तो बन जाए, किन्तु मुझसे घृणा करती हुई, या भयभीत होकर दूर न हो जाए।"

महर्षि चरक ने अपने चरक ग्रंथ में काम जागृति के कुछ प्राकृतिक साधन भी लिखे हैं। प्रिय पाठकों के परिचयार्थ हम उनका भी यहां चयन कर देना उचित समझते हैं। पाठक अपनी सुविधा और सामर्थ्यानुसार इनसे भी यथाशक्ति सहायता ले सकते हैं—

सुखा सहायाः पर पुष्टघुष्टाः फुल्ला बनान्ता विशदान्नपानाः,
गन्धर्व शब्दाश्च सुगन्धयोगाः सत्यं विशालं निरूपद्रवं च।
सिद्धार्थता चाभिनवाश्च कामः, स्त्री चायुधं सर्वमिहात्मजस्य,
वयो नवं वातमदश्च कालो हर्षस्य योनिः परमा नराणाम्॥

चरक चि० २, ३, २६, ३०॥

स्त्री प्रसंग के पश्चात्

यहां तक हमने उत्तम सन्तान और कामजन्य वास्तविक सुख को प्राप्त करने के लिए सम्भोग से पूर्व दम्पत्ति को किन-किन काम-कलाओं को प्रयोग में लाना चाहिये, इसका विवेचन किया। अब सम्भोग के पश्चात् पति पत्नी को किन उपायों को काम में लाना चाहिये कि जिससे उनकी सम्भोगजन्य निर्बलता तथा सुस्ती दूर होकर पुनः शरीर में बल, वीर्य, शक्ति तथा स्फूर्ति का संचार हो जाए। इसका कुछ विवेचन प्रिय पाठकों के सम्मुख रखेंगे। महर्षि वात्स्यायन ने इसका भी अपने कामसूत्र में सुन्दर विवेचन किया है जो कि निम्न प्रकार है। यहां भी हम मूल सूत्रों का अर्थ ही लिख रहे हैं —

अर्थ—"रति क्रिया के समाप्त होने पर अपरिचित स्त्री-पुरुष के समान दोनों एक दूसरे से लज्जा करते हुए, पृथक्-पृथक् स्थानों में जाकर लघुशंका आदि से निवृत्त होकर गुह्यांगों को साफ कपड़े से पोंछ कर (जल या मैले

कपड़े से नहीं, क्योंकि जल या मैले कपड़े से गुप्तांगों को पौंछना बहुत हानिकर है) और वहां से लौटकर परस्पर लज्जा न करते हुए, किसी दूसरे सुन्दर स्थान पर बैठकर मुख की दुर्गन्धि और अशुद्धि को दूर करने के लिये पान, इलायची आदि सुगन्धि युक्त किसी भी पदार्थ का सेवन करें। यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो स्त्री के माथे पर चन्दन भी लगावें और साथ ही स्त्री का बाएं हाथ से आलिंगन करके उसे सान्त्वना दे। दूध, मिठाई या सूखे फल ऋतु तथा अपनी परिस्थिति के अनुसार दोनों खावें। जौं की लापसी अथवा आम आदि पुष्टिप्रद पदार्थों को भी सेवन कर सकते हैं। यह फल बहुत मीठा है। बहुत नरम है, बहुत सुन्दर है, इत्यादि प्रेमालाप करते हुए उपर्युक्त फलादि वस्तुओं को स्त्री को खाने को दें।

यदि शीतकाल न हो तो ऊपर अटारी पर चन्द्रमा की चान्दनी का आनन्द लेने के लिये आसन बिछा कर बैठें। (सुश्रुत में लिखा है कि जो स्त्री-पुरुष रात्रि के समय चन्द्रमा की चान्दनी का आनन्द नहीं लेते, वे भाग्यहीन हैं।) चान्दनी में बैठकर शीतमन्द समीर का आनन्द लेते हुए परस्पर प्रेमालाप करें। स्त्री पति की गोद में लेटकर चन्द्रमा की ओर देखे, और पति भी अपनी प्रेयसी को गगन मण्डल के भिन्न-भिन्न प्रकार: के तारों को दिखलाकर बताता जाए कि देखो! यह अरून्धती है, यह ध्रुव है, यह सप्तऋषी हैं, यह आकाश गंगा है। तत्पश्चात् मन और शरीर के शान्त और स्वस्थ हो जाने पर पृथक्-पृथक् बिस्तरे पर शयनागार में जाकर सो जावें।"

वात्स्यायन ऋषि का उपर्युक्त सम्भोगानन्तर व्यवहार के लिखने का उद्देश्य यही है, कि सहवास से यदि पति-पत्नी में आलस्य, शिथिलता या कमजोरी प्रतीत हो तो वे उपर्युक्त व्यवहारों से उसे दूर करके प्रसन्नचित्त होकर शयन करें। प्रिय पाठक इससे यह न समझ लें कि सहवास के पश्चात् पति-पत्नी में आलस्य या कमजोरी अवश्य आ ही जाती है। हमारे विचार में तो जो बलवान् तथा स्वस्थ दम्पति हैं, उनको सुस्ती या कमजोरी आनी ही नहीं चाहिए किन्तु यदि दम्पतियों में से दोनों या एक को निर्बलता या सुस्ती प्रतीत हो तो उसे उपर्युक्त उपायों द्वारा दूर कर लें।

सहवास के पश्चात् ही निर्बलता या सुस्ती को दूर करने का सबसे उत्तम पदार्थ गर्म दूध है। रात्रि को सोते समय दूध को भली प्रकार औटाकर और उसमें शक्कर डालकर रख देना चाहिए और सहवास के पश्चात् पति-पत्नी को उसे पी लेना चाहिए। चाहें तो दूध में गर्म होते समय तीन-चार अच्छे मोटे छुआरे डाल दें और दूध में औटे हुए छुआरों को खाकर ऊपर दूध पी लें। दूध में थोड़ा केसर, ईलायची तथा सोंठ भी डाल सकते हैं। सहवास के पश्चात् मावे की अथवा शुद्ध देसी घी की बनी हुई मिठाई खाना भी लाभप्रद है। कई कामकला विशारदों का यह भी मत है कि सहवास के पश्चात् नौ माशे या तोला भर गुड़ खा लेने से सम्भोगजन्य निर्बलता बिल्कुल चली जाती है। पाठक अपनी सुविधा तथा सामर्थ्य के अनुसार इनमें से किसी भी वस्तु का सेवन कर सकते हैं।

यूं तो काम-कलाओं का बहुत विस्तार है, जिनका सविस्तार वर्णन वात्स्यायन कामसूत्र में किया गया है। हमने ग्रन्थ विस्तार भय से उन सबका वर्णन न कर पति-पत्नी के लिए काम सम्बन्धी, जो अत्यन्त उपयोगी तथा अत्यावश्यक बातें हैं, उनका भली प्रकार से विवेचन कर दिया है। जो पाठक काम सम्बन्धी अन्य बातें जानना चाहें, वे तद्विषयक ग्रन्थों में देख सकते हैं। किन्तु इस सम्बन्ध में भी हम प्रिय पाठकों से प्रार्थना करेंगे कि वे कामशास्त्र की अन्य कलाओं को जानने के लिए वात्स्यायन काम सूत्र आदि प्रामाणिक पुस्तकों का ही अध्ययन करें। जनता के पैसे ठगकर उल्टा भ्रम में डालने वाले तथा युवक-युवतियों की कामवासना को भड़का कर, उनकी जिन्दगी बरबाद करने वाले, चटकीले-मटकीले कोकशास्त्रों को कदापि न पढ़ें।

चेतावनी

हमने पाठकों के लाभार्थ काम के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डाल दिया है। आशा है पाठक इस प्रकरण से लाभ उठाकर अपने गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय तथा सुसंतान सम्पन्न करेंगे। इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व हम प्रिय पाठकों को एक चेतावनी अवश्य देना चाहते हैं। वह यह कि कामकला से सम्यक् परिचित होने पर भी वे काम के पीछे अन्धे होकर न पड़ जाएं। अपनी

ख्वाशातों (तृष्णाओं) को नियन्त्रण में रखकर, संयमपूर्वक 'काम' का भोग करें। जैसे हलवा बल, शक्ति तथा स्वास्थ्य को बढ़ाने वाला है और खाने में भी स्वादिष्ट है, किन्तु यदि स्वाद के वश में होकर उसे अति मात्रा में सेवन किया जायेगा, तो वह शक्ति तथा स्वास्थ्यप्रद हलवा भी रोग, निर्बलता तथा जिह्वा स्वाद तक को भी नष्ट करने का कारण बनेगा। इसी प्रकार अत्यन्त सुख, बल, शक्ति तथा आरोग्य-प्रद काम भी अतिमात्रा में सेवन किया हुआ हमारे लिए आरोग्य, बल, शक्ति तथा सुख के सर्वनाश का ही कारण बन जायेगा।

कई लोग यह कहते हैं कि काम की भूख चूंकि स्वाभाविक है, इसलिये इस पर अंकुश या नियन्त्रण नहीं होना चाहिए। हमारे विचार में यह उनकी भारी भूल है। मनुष्य के अन्दर स्वादु और पुष्टिप्रद पदार्थों के सेवन की भूख भी तो स्वाभाविक है। तो क्या वह भोजन पर नियन्त्रण न करे। वास्तव में किसी भी विषय के भोग की इच्छा अतिमात्रा में सेवन करने से पूरी नहीं होती। प्रत्युत् वह दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। यहां तक कि साधारण इच्छा भी असाधारण रूप धारण कर लेती है और नाना प्रकार के शारीरिक तथा मानसिक रोगों तथा विकारों का कारण बनती है।

हम नित्यप्रति रति विषयक नाना प्रकार के भयंकर रोगों की चर्चा सुनते रहते हैं। इन भयंकर रोगों की उत्पत्ति का कारण भी मुख्यतया अनियन्त्रित तथा असंयित कामवासना की पूर्ति ही है। हम प्रवृत्त तो भोग में आनन्द के लिए होते हैं, किन्तु जब हम उसमें अति कर देते हैं और उसकी मर्यादाओं का उल्लंघन कर देते हैं तब वही भोग न केवल आनन्दरहित तथा नीरस बन जाता है, अपितु भारी दुःख और पारिवारिक क्लेश का भी कारण बनता है। इस विषय में आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द कितना सुन्दर लिखते हैं—

"यही सब सुधारों का सुधार, सब सौभाग्यों का सौभाग्य तथा सब उन्नतियों की उन्नति करने वाला कर्म है कि ब्रह्मचर्य रखकर ही, अर्थात् संयमपूर्वक ही गृहस्थाश्रम का भोग किया जाए।"

एक भारी भ्रम

इस प्रकरण को समाप्त करने से पूर्व कुछ लोगों के हृदय में उत्पन्न एक

और भारी भ्रम को दूर कर देना हम उचित समझते हैं। कई लोग जब भी जननेन्द्रिय में स्थूलता, उत्तेजना या कड़वापन आने लगता है तो वे समझते हैं कि जननेन्द्रिय में वीर्य के भरजाने पर ही ऐसा हुआ है। इसलिए जब भी ऐसी अवस्था उत्पन्न होती है, वे सम्भोग के लिए उद्यत हो जाते हैं और उससे अपना सर्वनाश कर लेते हैं। किन्तु वास्तव में जननेन्द्रिय में वीर्य के भर जाने के कारण वृद्धि या उत्तेजना नहीं होती, किन्तु रक्त की गति के आकार रुक जाने से ही उसमें कठोरता तथा स्थूलता उत्पन्न होती है। यदि ऐसा न हो तो छोटे बालकों की जिनके अन्दर कि अभी तक वीर्य का आना भी नहीं हुआ है, जननेन्द्रिय में स्थूलता तथा उत्तेजना नहीं आनी चाहिए। यह केवल हमारे ही विचार नहीं, प्रत्युत् काम-विज्ञान की मर्मज्ञ श्रीमती डा० 'स्टोप्स' ने भी अपनी "विवाहित प्रेम" नामक पुस्तक में ऐसे ही विचार प्रकट किए हैं। वे लिखती हैं—

बहुत से लोग यह समझते हैं कि जननेन्द्रिय में वीर्य एकत्रित हो जाने से स्थूलता आ जाती है और वीर्य के बहिर्गमन करने से ही उससे छुटकारा पाया जा सकता है। यह बात नितांत गलत है। जननेन्द्रिय का वृद्धिकरण वीर्य के एकत्रित होने से नहीं; अपितु इसका कारण वह प्रतिक्रिया होती है, जो रक्त-वाहिनी धमनियों के विरुद्ध होती है, जिससे धमनियों में रक्त भर जाता है। इसी से जननेन्द्रिय में कठोरता तथा स्थूलता आ जाती है। इस कठोरता के कारण ही मनुष्य सम्भोग करने में समर्थ होता है और सम्भोग से अधिक उत्तेजना उत्पन्न होने पर वीर्य मूत्र नली से बाहर आकर निकल जाता है तथा धमनियों की उत्तेजना समाप्त होने पर रक्त पुनः गति करने लगता है। अतः फिर वीर्य की हानि नहीं होती। परन्तु धमनियों का उत्तेजन मानसिक शान्ति और उच्च भावनाओं में भी शान्त होता है, केवल सम्भोगजन्य क्रिया से नहीं।"

कुछ लोगों को एक यह भी भ्रांति है कि प्रकृति शरीर में सम्भोग के लिए ही वीर्य उत्पन्न करती है। अतः उसे हमें सम्भोग द्वारा ही जल्दी खारिज करते रहना चाहिए। यहां तक कि कईयों को तो वीर्य खारिज न होने की अवस्था

में बहुत चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। आज से लगभग वत्तीस वर्ष पूर्व मैं एक योधाश्रम में योगाभ्यास सीखने के उद्देश्य से रहता था। उन्हीं दिनों एक कालिज के अविवाहित प्रोफेसर यौगिक क्रियाएं सीखने के लिए वहां आए। जब उनको प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाएं सीखते हुए लगभग वीस दिन बीत गए तो एक दिन मुझे कहने लगे—

"भद्रसेन जी ! मुझे तो एक चिन्ता पैदा हो गई है।" मैंने कहा "वह क्या ?" उन्होंने कहा "जब मैं योग के आसन, प्राणायाम आदि क्रियाएं नहीं करता था, तो मुझे हर चौथे-पांचवें दिन स्वप्नदोष हो जाता था, किन्तु जब से यहां आकर यौगिक क्रियाएं करना प्रारम्भ किया है, तब से आज २० रोज हो गए, एक वार भी स्वप्नदोष नहीं हुआ। अतः मुझे भय है कि कहीं मेरा वीर्य का मार्ग तो बन्द नहीं हो गया।"

मैं समझता हूं उस प्रोफेसर के समान अन्य कई ऐसे दुर्भाग्यशाली मनुष्य होंगे जिनमें उपर्युक्त धारणा कार्य कर रही होगी। किन्तु यह धारणा नितांत भ्रांति है। वीर्य जो हमारे शरीर की सांतवी तथा अन्तिम धातु है, प्रकृति उसे केवल सम्भोग के लिए ही उत्पन्न नहीं करती, प्रत्युत् शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा ओजस्वी और तेजस्वी बनाने के लिए भी करती है। यही कारण है कि जो लोग संयमी, सदाचारी तथा ऊर्ध्वरेता होते हैं। वे विषय-लोलुप व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक स्वस्थ, बलवान् तथा तेजस्वी होते हैं। अतः संयमपूर्वक गार्हस्थ्य जीवन का भोग करना स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग होने और काम द्वारा सच्चे सुख को प्राप्त करने का मुख्य साधन है। इस विषय में श्रीमती स्टोप्स ने जो अपने विचार लिखे हैं हम उन्हें भी पाठकों की जानकारी के लिए यहां उद्धृत कर देते हैं। वे लिखती हैं—

"वीर्य के रासायनिक तत्वों के विश्लेषण से यह ज्ञात हुआ है कि उसमें अन्य वस्तुओं के अतिरिक्त कैलशियम और फास्फोरस की मात्रा अत्यधिक होती है और ये दोनों पदार्थ हमारे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त मूल्यवान् हैं। अतः यह विचार करना बड़ी भारी भूल है कि वीर्य कोई ऐसी वस्तु है कि जिससे जल्दी-जल्दी छुटकारा मिलना चाहिए। इसके निकलने में जिस तात्विक शक्ति और

नाड़ी बल का प्रयोग होता है, उन सबका सृजनात्मक कार्यों में सदुपयोग हो सकता है। हमारे शरीर में होने वाली वीर्य सम्बन्धी रासायनिक परिवर्तन ऐसे आश्चर्यजनक होते हैं कि यदि ज्ञान मस्तिष्क की सहायता करे तो वह वीर्य बहुत चमत्कार दिखा सकता है।"

वेद में भी कहा है—इन्द्रस्य वा इन्द्रियेणाऽभिषिच्येत्। अपनी इन्द्रियों को इन्द्र अर्थात् परमात्मा की इन्द्रिय समझ कर उसका उपयोग करो, अर्थात् अपने वीर्य को व्यर्थ न खोकर, उसे ईश्वरीय कार्यों में प्रयुक्त करो।

एक और चेतावनी

अन्त में हम प्रिय पाठकों को एक और चेतावनी देना भी आवश्यक समझते हैं। कई ऐसी अवस्थाएं भी होती हैं जिनमें सहवास सर्वथा निषिद्ध माना गया है और यदि उन अवस्थाओं में स्त्री-प्रसंग किया जाता है तो वह महान् हानि का कारण बनता है। ऐसी अवस्थाओं में सबसे पहली अवस्था है—स्त्री का रजस्वला काल, अर्थात् जब स्त्री मासिक धर्म की अवस्था हो तो उस वक्त कदापि सम्भोग नहीं करना चाहिये। रजस्वला से समागम करने पर, जो भयङ्कर हानियां होती हैं। आयुर्वेद में उनका निम्न शब्दों में वर्णन किया गया है।

रजस्वलां गतवतो नरस्याऽसंयतात्मनः।
दृष्टयायुस्तेजसां हानिरधर्मश्च ततोभवेत्॥

"जो असंयमी पुरुष रजस्वला स्त्री से समागम करता है वह पाप का भागी तो बनता ही है, साथ ही उसकी नजर कमजोर हो जाती है। आयु कम हो जाती है। शरीर का तेज और बल क्षीण हो जाता है।" इसी सम्बन्ध में स्वामी दयानन्द जी महाराज 'संस्कार विधि' के गर्भाधान प्रकरण में निम्न शब्दों में चेतावनी देते हुए लिखते हैं —

"जिस दिन स्त्री रजस्वला हो, उस दिन से लेकर सहवास के लिये चार दिन निन्दित हैं। प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ रात्रि में पुरुष स्त्री का स्पर्श और सम्बन्ध कदापि न करे। अर्थात् उस रजस्वला के हाथ का छुआ हुआ पानी भी न पीवे। न वह स्त्री कुछ काम करे। किन्तु एकान्त में बैठी

रहे। इन चार रात्रियों में सम्भोग करना व्यर्थ और महारोग कारक हैं।"

रजस्वला स्त्री के कर्त्तव्य

उपर्युक्त उद्धरण में स्वामी दयानन्द जी ने एक यह भी महत्वपूर्ण संकेत किया है कि मासिक धर्म के दिनों स्त्री को किसी प्रकार का परिश्रम नहीं करना चाहिये। अधिक परिश्रम से रज का स्राव अधिक होने से स्त्री का शरीर क्षीण तथा रोगी हो जाता है। अतः इन दिनों स्त्री न तो अधिक परिश्रम करे, न खड़े रहकर कोई काम करे। अधिक ठंड, वर्षा और गर्मी से बचे। ठण्डे तथा बहुत गर्म जल से स्नान न करे। (यदि इन दिनों स्त्री बिल्कुल स्नान करे ही नहीं, तो और भी अच्छा है।) ब्रह्मचर्य का पालन करे। शरीर, मन, वाणी से किसी को कष्ट न दे। भूमि पर शयन करे। रोवे नहीं, नाखूनों को न काटे, तेल न लगाए। चन्दन आदि का लेप न करे। आंखों में सुरमा न लगाए। दिन में शयन न करे। बहुत जोर से न बोले और न ही ऊंचे शोरो-गुल वाले शब्दों को सुने। जमीन को नाखून आदि से न कुरेदे। हवा में अधिक न बैठे। इत्यादि।

आयुर्वेद में कुछ और भी ऐसी अवस्थाएं बताई हैं, कि जिन अवस्थाओं में स्त्री-प्रसंग कदापि नहीं करना चाहिये। यथा—

अत्याशितोऽधृतिः क्षुद्वान् सव्यांग पिपासितः ।
बालो वृद्धोऽन्यवेगार्तः वर्जयेद् रोगी च मैथुनम् ।।

अत्यन्त भोजन किया हुआ, धैर्यरहित, भूख से व्याकुल, किसी भी अंग में पीड़ा से युक्त, प्यास से व्याकुल, बाल वृद्ध, मल, मूत्रादि वेगों से युक्त, दुःखी चिन्तित तथा रोगी पुरुष मैथुन कदापि न करें।

ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि में गर्भाधान-विधि को बहुत स्पष्ट शब्दों में लिखा है। पाठकों की जानकारी के लिए हम इसे भी यहां उद्घृत कर रहे हैं। वे लिखते हैं—

रात्रि के नियत समय पर जब पति-पत्नी दोनों का शरीर स्वस्थ, अत्यन्त प्रसन्न और दोनों में परस्पर अत्यन्त प्रेम बढ़ा हो, उस समय गर्भाधान करना चाहिये।

१—गर्भाधान अर्थात् स्त्री-प्रसंग के कुछ अन्य उपयोगी नियम

१—स्त्री के ऋतुमती होने पर प्रथम तीन दिन में भूलकर भी सम्भोग न करें। इससे जहां पुरुष को अनेक भयंकर गर्मी (उपदंश) आदि रोग हो जाते हैं, वहां पुरुष की आयु भी कम हो जाती है। प्रथम तो गर्भ रहता ही नहीं और यदि रह भी जाए तो सन्तान उत्पन्न होते ही मर जाती है अथवा लूली, लंगड़ी, कमजोर तथा रोगी उत्पन्न होती है।

२—किस स्त्री से, किस ऋतु में प्रसंग हितकारी है ?

वाला स्त्री ग्रीष्म और शरद ऋतु में, तरुणी शीतकाल में और प्रौढ़ा स्त्री वर्षा और वसन्त में सम्भोग के लिये हितकारी हैं। जिनकी जिस-जिस अवस्था वाली स्त्रियां हों, उन्हें ऊपर लिखे अनुसार उसी-उसी ऋतु में स्त्री-प्रसंग करना चाहिये।

३—कितने दिनों के पश्चात् स्त्री-प्रसंग करें

स्त्री-प्रसंग जितनी भी देर के पश्चात् किया जाए, उतना अच्छा है। इससे शक्ति भी क्षीण नहीं होती। स्त्री-प्रसंग का अभीष्ट आनन्द भी मिलता है और सन्तान भी बलवान् तथा नीरोग पैदा होती है। सामान्यता १५ दिन का अन्तर तो अवश्य ही होना चाहिए। जो नवयुवक हैं और वाजीकरण औषधियों का भी सेवन करते हैं, वे तीसरे-चौथे दिन भी कर सकते हैं और सर्दियों में यदि वे प्रतिदिन भी करें तो विशेष हानि नहीं। प्रयत्न यही करना चाहिए कि पर्याप्त समय के पश्चात् स्त्री-सम्भोग किया जाए।

४—स्त्री-प्रसंग किस समय करें ?

स्त्री-प्रसंग का समय सबसे उत्तम रात्रि का है जब कि कम से कम डेढ़ पहर रात्रि व्यतीत हो गई हो। किन्तु यदि परिस्थितिवशात् अन्य समय में भी सहवास करना चाहें तो गर्मी में दिन के समय, वसन्त ऋतु में रात्रि में तथा दिन में भी और शरद ऋतु में सरोवर आदि के किनारे और उद्यान आदि रमणीक स्थानों में दिन में भी किया जा सकता है। किन्तु जहां तक हो सके दिन में स्त्री-प्रसंग से बचने का ही प्रयत्न करना चाहिये।

५—पुत्र या पुत्री चाहने वाले को किस रात्रि में गर्भाधान करना चाहिये ?

पुत्र जन्म के अभिलाषी को चौथी, छठी आदि सम संख्या की रात्रियों में और कन्या जन्म के अभिलाषियों को पांचवीं, सप्तमी आदि विषम संख्या की रात्रियों में गर्भाधान करना चाहिये। किन्तु स्मरण रहे कि अन्त की तेरहवीं, पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं रात्रि में सन्तान के अभिलाषी को स्त्री-प्रसंग नहीं करना चाहिये।

६—गर्भाधान का स्थान कैसा हो ?

स्त्री, पुरुष को ऐसे एकान्त स्थान पर ही गर्भाधान करना चाहिए कि जहां कोई दूसरा देख न सके। जहां किसी प्रकार का भय, आशंका तथा घबराहट न हो, जहां मन में उदासीनता, चिन्ता, भय, शोक आदि उत्पन्न करने वाली बातें सुनाई न दे सकें। जहां निर्भय, निशंक तथा सब प्रकार से प्रसन्न चित्त होकर स्त्री-प्रसंग किया जा सके। इसके लिए उपर्युक्त बातों के अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि सोने का कमरा साफ, सुथरा, सजा हुआ और हवादार हो। उसमें सुन्दर स्त्री-पुरुषों के चित्र लगे हों। फर्श पर कालीन आदि उत्तम वस्त्र बिछे हों। एक शीशे से जड़ा हुआ उत्तम पलंग रखा हो। उसके ऊपर नर्म गद्दा तथा गद्दे के ऊपर सफेद चादर बिछी हो। दोनों ओर तथा सिरहाने तकिये लगे हों। पास ही अलग स्थान पर सहवास के पश्चात् पीने के लिए सिगड़ी पर गाय का दूध धीमी-धीमी आंच पर औंट रहा हो। पानी की सुराही तथा गिलास आदि पात्र भी मेज पर रखे हों। उपर्युक्त सब वस्तुएं गर्भाधान अर्थात् स्त्री-प्रसंग के लिए आवश्यक तथा लाभकारी हैं।

७—कैसे गर्भाधान क्रिया करें ?

जिस दिन गर्भाधान करना हो, उस दिन पति-पत्नी दोनों साबुन आदि से खूब मलकर स्नान करें। यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो चन्दनादि का लेप तथा सुगन्धित तेल की मालिश करें। सुगन्धित फूलों की माला पहिनें। इत्र आदि सुगन्धित द्रव्यों को अपने कानों तथा वस्त्रों पर लगाएं। यदि पान खाने की आदत हो तो बढ़िया सुगन्धित मसालेदार पान वीड़ा चबाएं। उस दिन खट्टे, चटपटे और अति नमकीन पदार्थों का सेवन न करें। प्रत्युत् दूध, चावल, खीर,

हलुआ, मिष्ठान्न आदि वाजीकरण अर्थात् रज, वीर्य को पुष्ट करने वाले बलप्रद पदार्थों का सेवन करें। चित्त को सब चिन्ताओं से मुक्त कर प्रसन्न रखें। स्त्री उत्तम वस्त्र तथा सुन्दर आभूषणों को धारण करे। इस प्रकार तैयार होकर गर्भाधान अर्थात् स्त्री-प्रसंग करने से शारीरिक शक्ति का भी ह्रास नहीं होता तथा मैथुन का वास्तविक आनन्द मिलता है और गर्भ भी रह जाता है।

८—स्त्री-प्रसंग के दूसरे दिन

प्रातःकाल उठकर यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो चन्दनादि तथा शरद ऋतु हो तो तिल्ली आदि के तेल की मालिश कर फिर स्नान करें। स्नान सर्दियों में कवोष्ण तथा गर्मियों में ठण्डे जल से करना लाभप्रद है तथा उस दिन दूध, चावल, खीर, मिष्ठान आदि पुष्टिप्रद पदार्थों का सेवन करें और भोजन खाकर मध्याह्न में थोड़ा विश्राम करें।

गर्भावस्था में स्त्री के कर्त्तव्य

अब हम संक्षेप में यह भी बता देना आवश्यक समझते हैं कि स्त्री को गर्भावस्था में क्या करना चाहिए तथा अपना आहार, व्यवहार कैसा रखना चाहिए।

१—आहार

गर्भावस्था में स्त्री को सर्वप्रथम अपने आहार, व्यवहार पर विशेष ध्यान रखना चाहिए अर्थात् उसे ऐसा भोजन करना चाहिए, जो सुपच और सात्विक हो, जिसको खाकर उसका तथा गर्भस्थ बालक का शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक विकास होता रहे। उसे सड़े, गले, बासे, बहुत गरिष्ठ तथा मादक पदार्थों का सेवन कदापि नहीं करना चाहिए। गेहूं, चावल, हरे शाक, घी, दूध, फल, मेवा आदि पदार्थों का ही उसे विशेषकर सेवन करना चाहिए और वह भी परिमित मात्रा में अर्थात् जितनी भूख हो, उससे अधिक नहीं। गर्भवती का आहार कैसा हो, इस पर ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि में बहुत सुन्दर प्रकाश डाला है। वे लिखते हैं—

"पुनः स्त्री के भोजन-छादन का सुनियम करें। कोई मादक अर्थात् मद्यादि रेचक हरीतकी आदि, क्षार—अतिलवण आदि, अत्यम्ल—अधिक खटाई आदि, रूक्ष—चने आदि, तीक्ष्ण—अधिक लाल मिर्चं आदि, का गर्भवती स्त्री कभी

सेवन न करे। किन्तु घृत, दुग्ध, मिष्ठान्न, सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषध, चावल, मिष्ट, दही, गेहूं, उर्द, मूंग, अरहर आदि अन्न और पुष्टिकारक शाक, फल आदि खावे। शाक आदि में ऋतु-ऋतु के मसाले। गर्मी में ठण्डे सफेद इलायची आदि और सर्दी में केशर, कस्तूरी आदि डाल कर खाना चाहिये। युक्ताहार-विहार सदा किया करे। दही में सोंठ डालकर तथा ब्राह्मी औषधि का स्त्री विशेषकर सेवन किया करे, जिससे सन्तान अति बुद्धिमान, रोग रहित तथा शुभ गुण, कर्म, स्वभाव वाली होवे।"

इसी सम्बन्ध में 'सत्यार्थ प्रकाश' में वे लिखते हैं—

"गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजनाच्छादन आदि व्यवहार करना चाहिए। गर्भ के पश्चात् एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का संग न करे। बुद्धि, बल, रूप, आरोग्य, पराक्रम, शान्त्यादि गुणदायक द्रव्यों का ही सेवन स्त्री करती रहे, जब तक कि सन्तान का जन्म न हो।"

स० प्र० द्वि० समुल्लास

कई स्त्रियां गर्भावस्था में बहुत कुपथ्य कर लेती हैं। वे मिट्टी, कोयला आदि जैसे अत्यन्त हानिप्रद पदार्थों का सेवन करती हैं जिससे न केवल गर्भवती स्त्री तथा गर्भस्थ बालक को ही महती हानि पहुंचती हैं, प्रत्युत् ऐसे महान् हानिकर पदार्थों का सेवन करने वाली स्त्रियों का प्रसव भी अत्यन्त पीड़ाप्रद तथा कष्टदायक होता है।

२—गर्भवती स्त्री का दूसरा कर्त्तव्य यह है कि वह सदा प्रसन्न चित्त रहे। अपने विचारों को सदा ऊंचा तथा शुद्ध, पवित्र बनाए। उत्तमोत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय करे, सत्पुरुषों का संग करे। महापुरुषों के जीवन चरित्र पढ़ें। उनके चित्रों को अपने उठने-बैठने के कमरे में लगाये तथा प्रतिदिन उनके दर्शन किया करे। अपने पुत्र-पुत्री को वह जैसा बनाना चाहती है, उन गुणों से युक्त महापुरुषों के जीवन को विशेषकर पढ़े तथा प्रतिदिन उनके चित्रों के दर्शन किया करे। बुरी संगत से सदा बचती रहे।

गर्भवती स्त्री के करने तथा न करने योग्य कुछ विशेष बातें

१—अधिक परिश्रम न करे, २—भारी बोझ न उठाए, ३—जहां तक हो

सके मैथुन से बचे, ४—दस्तावर तथा वमनकारक औषधियों का सेवन न करे, ५—दिन में शयन तथा रात्रि में जागरण न करे, ६—शोक व चिन्ता न करे, ७—घोड़े आदि की सवारी न करे, ८—भयभीत न हो अर्थात् सदा निर्भय रहे, ९—बहुत जोर से न बोले, न खांसे, १०—ऊंचे, नीचे स्थान पर चढ़े, उतरे भी नहीं, ११—शरीर को टेढ़ा-मेढ़ा करके न बैठे, १२—जौंक आदि के द्वारा खून न निकलवाए, १३—मल, मूत्र तथा डकार आदि के वेगों को न रोके, १४—तेल आदि की अधिक मालिश न करवाये, १५—सदा प्रसन्न रहे, १६—उत्तम शृंगार करे, १७—स्वच्छ वस्त्र पहिने, १८—प्रतिदिन ईश्वर भक्ति, स्वाध्याय, अग्निहोत्र आदि पंच महायज्ञों का अनुष्ठान करे, १९—दिल दुखाने वाले किस्से, कहानियों तथा घटनाओं को न पढ़े, २०—इधर-उधर अधिक न फिरे, २१—सुनसान मकान में न रहे, २२—शमशान आदि स्थानों पर न जाये, २३—धोखेबाज पीर, फकीर, साधु आदि का संग न करे, २४—क्रोध कभी न करे, २५—न बहुत सोए, न बैठी रहे, २६—बिना बिछौने के सख्त जगह पर न बैठे, २७—बहुत उछल-कूद न करे, २८—अधिक उपवास, व्रत आदि न करे, २९—मद्य, मांस आदि नशीले तथा तामसिक पदार्थों का सेवन न करे, ३०—पति को पूज्य समझ उनके आदर-सम्मान तथा सेवा-सुश्रुषा में आलस्य न करे, इत्यादि।

सन्तान का पालन-पोषण तथा शिक्षण

जच्चा का आहार-व्यवहार

जब बालक या बालिका का जन्म हो, तब माता अपने आहार, व्यवहार को ऐसा बनाए जिससे कि उसका अपना तथा बालक का शरीर स्वस्थ, निरोग तथा बलवान् हो जाए। प्रसूतिका रोग से बचने के लिए माता को दशमूल का काढ़ा या दशमूलारिष्ट का अवश्य सेवन करना चाहिए। प्रसूति रोगों की यह रामबाण औषध है। प्रसव की निर्बलता को दूर करने के लिए शुण्ठ्यादि पाक अथवा अपने घर में ही किसी जानकार स्त्री से सोंठ के मोदक (लड्डू) तैयार करवाकर उनका सेवन करे। माता को इस बात का भी प्रयत्न करना चाहिये कि उसका दूध प्रचुर मात्रा में तथा निर्दोष उत्पन्न हो, जिससे बालक उस दूध

का पान कर दिन-प्रतिदिन स्वस्थ, बलवान् तथा हृष्ट-पुष्ट बनता जाए।

माता के दूध कम होने या सूख जाने के कारण

जिन कारणों से माता का दूध कम या दोषयुक्त हो जाता है, उन कारणों से जच्चा को सदा बचते रहना चाहिए। हम संक्षप में उन कारणों का नीचे उल्लेख कर रहे हैं कि जिनसे माता का दूध सूख या कम हो जाता है—

१—अपने बालक से स्नेह न करना, २—लड़ते-झगड़ते रहना, ३—क्रोधी स्वभाव का होना, ४—बासे, सड़े, गले तथा रूक्ष पदार्थों का सेवन करना, ५—शोकाकुल तथा चिन्तित रहना, ६—भूखा रहना, ७—अधिक उपवास तथा व्रतादि करना, ८—खटाई, लाल मिर्च आदि तेज पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन करना, ९—सामर्थ्य से अधिक परिश्रम करना, इत्यादि कारण माता के दूध को दोषयुक्त अथवा सुखा देते हैं।

माता के दूध को निर्दोष करने तथा बढ़ाने के उपाय

१—जो माता चाहती है कि उसका दूध कभी कम न हो तथा सदा निर्दोष बना रहे, उसे अपने बालक को खूब प्यार करना चाहिए, २—वह कभी भी क्रोध, शोक या चिन्ता न करे, ३—सदा प्रसन्न रहे, ४—लंघन, व्रत, उपवास आदि न करे, ५—अपने स्वभाव को सदा शांत और ठण्डा रखे, ६—जौं, गेहूं, साठी के चावल, उर्द, तिलकुट, लहसुन, बिदारीकन्द, मुलहठी, शतावर, सोंठ, लौकी, घिया, तुरई आदि हल्के तथा पौष्टिक पदार्थों का सेवन करे। हम दूध बढ़ाने के दो अचूक योग (नुस्खे) भी नीचे दे रहे हैं। दूध बढ़ाने तथा अपने बालक को हृष्ट-पुष्ट देखने की अभिलाषी माता इनका अवश्य प्रयोग करे —

१—बिदारीकन्द के चूर्ण को दूध के साथ मिस्री मिलाकर पीने से स्तनों में अवश्य दूध बढ़ जाता है।

२—कमल गट्टे की बीच की गिरी निकालकर और पीसकर दूध अथवा दही के साथ सेवन करने से स्त्री के स्तनों में दूध बहुत बढ़ जाता है और उसके स्तन वृद्धावस्था तक कठोर बने रहते हैं।

बालक के माता-पिता को जहां यह प्रयत्न करना चाहिए कि बालक को पुष्कल दूध मिले क्योंकि दूध ही उसकी खुराक और जीवन है, वहां यह भी

प्रयत्न करना चाहिए कि दूध दोष रहित अर्थात् शुद्ध हो, विकृत तथा दोषयुक्त न हो। क्योंकि विकृत तथा दोषपूर्ण दूध बालक में अनेक प्रकार के दोषों तथा विकारों को उत्पन्न कर देता है। सुश्रुत में शुद्ध दूध की जो पहिचान लिखी है, पाठकों के लाभार्थ हम उसे यहां दे रहे हैं।

शुद्ध दूध की पहिचान

जो दूध जल में डालते ही जल में मिल जाए। फैले नहीं और न ही ऊपर तैरने लगे तथा न ही नीचे डूबे। जो निर्मल, पतला और शशांक के समान सफेद हो, उसे शुद्ध दूध समझना चाहिए।

अशुद्ध दूध की पहिचान

भाव प्रकाश में अशुद्ध दूध की पहिचान निम्न प्रकार लिखी है, जो दूध कसैला हो, जो जल में डालने से ऊपर तैरे, वह दूध वात दोषयुक्त समझना चाहिए। जो दूध स्वाद में खट्टा या चरपरा हो और जल में डालने से पीली धारी सा हो जावे उसे पित्त दोष से विकृत समझना चाहिए। जो दूध बहुत गाढ़ा हो और जल में डालने से डूब जावे उसे कफ दोष से दूषित समझना चाहिए। जिस दूध में उपर्युक्त दोनों प्रकार के लक्षण पाए जाएं, उसे दो दोषों से दूषित तथा जिस दूध में उपर्युक्त तीनों प्रकार के लक्षण पाए जाएं, उसे वात, पित्त, कफ तीनों दोषों से दूषित समझना चाहिए।

बालक को स्वस्थ, बलवान् तथा प्रसन्न रखने के कुछ नियम

१—बालक का सदा प्रसन्न चित्त रहना अधिकतर उसकी माता के ऊपर निर्भर है। यदि माता सदा प्रसन्न रहती है, कभी क्रोध नहीं करती, सदा प्रेम से बालक का लालन-पालन करती है, तो बालक अवश्य प्रसन्न रहेगा।

२—बालक को सदा स्वस्थ और निरोग रखने के लिए माता को अपने आहार पर सदा नियन्त्रण रखना चाहिए और सदा ऐसा ही भोजन करना चाहिए, जो उसके लिए और बालक के लिए आरोग्य तथा स्वास्थ्यप्रद हो।

३—बालकों की सर्वोत्तम खुराक दूध ही है। अतः यदि माता का दूध बालक के लिए पर्याप्त न हो तो बालक को बकरी या गाय का दूध थोड़ा पानी डालकर दिन में कई बार थोड़ा-थोड़ा करके पिलाना चाहिए। यदि

उबलते समय रत्ती भर सोंठ बारीक की हुई डाल दी जाए तो दूध सुपच तथा पौष्टिक हो जाता है।

४—जहां तक हो सके बालक को शीशी से दूध नहीं पिलाना चाहिए। यदि विवशत: पिलाना ही पड़े तो प्रतिदिन उसे गर्म जल से धो देना चाहिए।

५—माता को भोजन बनाते समय अथवा अन्य किसी परिश्रम आदि के कारण शरीर के गर्म या पसीना होने की अवस्था में दूध नहीं पिलाना चाहिए।

६—बालक के दांत निकल आने पर बालक को माता का दूध शनैः-शनैः छुड़ा देना चाहिए और बकरी या गाय का दूध पिलाना चाहिए।

७—जब तक कि बालक में स्वयं बैठने की शक्ति पैदा न हो जाए तब तक जबरदस्ती उसे बैठाना नहीं चाहिए अन्यथा बालक के कुबड़े आदि हो जाने का भय रहता है।

८—बालक को तेज हवा, आंधी, बबूला, बिजली या सूरज की तेज किरणों की चकाचौंध से बचाना चाहिए।

९—बालक को सुनसान स्थान, मकान की छत, तालाब, नदी तथा गढ्डे के पास तथा बरसते मेह में नहीं छोड़ना चाहिए।

१०—बालक के हाथ में पैसा, चवन्नी, अठन्नी, बेर, सुपारी आदि ऐसी चीजें नहीं देनी चाहियें कि जिसके खाने से वह गले में अटक जाय या पेट में चली जाए।

११—बालक को अधिक समय तक गोदी में नहीं रखना चाहिए, बल्कि पलंग या पालने पर नर्म बिछौने पर सुला देना चाहिए। जिससे वह स्वेच्छा-पूर्वक हाथ-पैर हिला सके। इससे बालक का व्यायाम हो जाता है और उसका खाया-पिया पच जाता है।

१२—बालक को कभी भूत-प्रेत या चूहे, बिल्ली आदि का नाम लेकर डराना नहीं चाहिए। इससे एक तो बालक डरपोक बन जाता है। भय के कारण उसके बीमार पड़ जाने भी सम्भावना है।

१३—प्रथम तो बालक को लंघन कराना ही नहीं चाहिए और यदि कराना भी पड़े तो और सब चीजें तो उससे छुड़ा सकते हैं किन्तु दूध कभी

नहीं छुड़ाना चाहिए क्योंकि दूध ही बालक का जीवन है ।

१४—बीमारी की हालत में केवल दूध पीते बालक को दवा नहीं देनी चाहिए प्रत्युत् वह औषध उसकी माता को खिला देनी चाहिए ।

बालकों की शिक्षा

छोटे बालकों को माता-पिता कैसी शिक्षा दें, इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने अपने सुप्रसिद्ध ग्रन्थ "सत्यार्थ प्रकाश" में बहुत सुन्दर लिखा है । अतः हम उनके ही सुन्दर शब्दों को नीचे उद्धृत कर देना उपयुक्त समझते हैं । वे लिखते हैं—

बालकों को माता-पिता सदा उत्तम शिक्षा देवें, जिससे सन्तान सभ्य बने तथा किसी भी अंग से कुचेष्टा न करने पाए । जब बालक बोलना प्रारम्भ करे तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे । जिस वर्ण का जो स्थान-प्रयत्न हो । जैसे—'प' इसको होंठ स्पष्ट और स्पष्ट प्रयत्न अर्थात् दोनों होठों को मिलाकर (तथा जीभ को होठों से स्पर्श करके) बोलना तथा ह्रस्व, दीर्घ, प्लुप्त अक्षरों को ठीक-ठीक बोल सकना और बोलते समय किस प्रकार वाणी में माधुर्य, गम्भीरता, सौन्दर्य तथा स्वर, अक्षर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न श्रवण होवे, ऐसा प्रयत्न करें । जब बालक कुछ-कुछ समझने लगे तब सुन्दर वाणी तथा बड़े, छोटे, माता, पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनके व्यवहार और उनके पास बैठने, उठने आदि की भी शिक्षा करें । जिससे उनका कहीं अयोग्य व्यवहार न होने पावे तथा सर्वत्र उनकी प्रतिष्ठा ही हुआ करे । जिस प्रकार से सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रूचि करे, वैसा प्रयत्न निरन्तर करते रहें । व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई-झगड़ा, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ से लोलुपता, ईर्ष्या, द्वेषादि न करें ।

उपस्थियेन्द्रिय के स्पर्श तथा मर्दन से वीर्य की क्षीणता, नपुंसकता होती है तथा हाथ में दुर्गन्ध होती है । इससे उसका स्पर्श न करें । सदा सत्य भाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नता आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो सके, करावें । जब बालक-बालिका पांच वर्ष के हों, तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें और

अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिनके द्वारा अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता, पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे-कैसे वर्तना आदि सुन्दर शिक्षा मिले, इस प्रकार के मन्त्र, श्लोक, सूत्र, गद्य, पद्य आदि सुभाषित वचनों को भी अर्थ सहित कठस्थ करावें।

जिस प्रकार सन्तान किसी छली धूर्त के वहकाने में न आवे और जो विद्या, धर्म विरुद्ध भ्रान्ति जाल में फंसाने वाले व्यवहार तथा वातें हैं, माता-पिता उनका भी उपदेश कर दें, जिससे बाल्यकाल से ही उनके हृदय में भूत, प्रेत आदि मिथ्या वातों का विश्वास न होने पाए। इसी प्रकार शाकिनी, डाकिनी, मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि मिथ्या भ्रमजाल में फंसाने वाली वातों से भी बालकों को सावधान कर दें, जिससे किसी के मिथ्या भ्रमजाल में फंसकर दुःख के भागी न बनें। बालकों को यह भी भलीप्रकार से बतला दें, कि वीर्य की रक्षा में आनन्द तथा उसके नाश में महादुःख की प्राप्ति होती है। जिनके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है उसके अन्दर आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़कर अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण की यह रीति है कि—विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि से ब्रह्मचारी लोग सदा पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त कर आनन्दित होवें।

जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता, वह नपुन्सक, महाकुलक्षणी और जिसको प्रमेह रोग होता है वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है। जो तुम लोग उत्तम शिक्षण और विद्या के ग्रहण, वीर्य की रक्षा करने में इस समय चूकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य समय प्राप्त न हो सकेगा। इस प्रकार की जीवन उपयोगी शिक्षाएं माता-पिता अपनी सन्तान को सदा दिया करें।

आगे फिर इसी प्रसंग में ऋषि दयानन्द लिखते हैं—

माता-पिता जैसे अन्य शिक्षा करें वैसे ही चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्य, मिथ्या भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष आदि दोषों के छोड़ने,

और सत्याचार के ग्रहण करने की भी शिक्षा करें। सब बालकों को सत्यभाषण तथा सत्यप्रतिज्ञायुक्त सदा होना चाहिए, किसी को अभिमान न करना चाहिए, छल, कपट तथा कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो फिर दूसरों का क्या कहना। बालकों को माता-पिता यह भी शिक्षा दें कि वे क्रोध आदि दोष और कटु वचन को छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोलें और बहुत बकवाद न करें। जितना बोलना चाहिए, उससे न अधिक बोलें, न न्यून। बड़ों को मान दें। उनके सामने जाकर उन्हें उच्चासन पर बैठावें। प्रथम नमस्ते करें। उनके सामने स्वयं उच्चासन पर न बैठें। इत्यादि।

४-मोक्ष

१—मनुष्य जीवनरूपी वृक्ष का अत्यन्त मधुर फल

मानव-जीवन के धर्म, अर्थ, कामरूपी मधुर फलों का आस्वादन हम प्रिय पाठक, पाठिकाओं को पूर्व स्तम्भों में करा चुके हैं। अव हम इस मनुष्य जीवन-रूपी कल्प वृक्ष के अमृतमय, अत्यन्त मधुरफल 'मोक्ष' का रसास्वादन कराना चाहते हैं। इस अमृतमय फल के रसास्वादन से जो परम शान्ति तथा असीम आनन्द इस आत्मा को प्राप्त होता है, वह अन्य किसी फल से नहीं। अन्य धर्म आदि फल तो केवल इस चतुर्थ फल के साधन मात्र हैं। हमारे इस मानव-जीवन का साध्य तो यह मोक्ष फल ही है। इसीलिए मोक्ष को मानव-जीवन का चरमलक्ष्य कहा गया है।

अत: उपनिषदों के कथनानुसार[1] यदि इस मानव-देह को प्राप्त कर हमने इस परम रसीले सुमधुर फल को प्राप्त करने का यत्न न किया, तो हमने अपना सर्वनाश कर लिया। अन्य सव फलों के प्राप्त कर लेने पर भी यदि हम इस अमृतमय सुमधुर फल से वंचित रहें तो मानो हमने अपने जीवन को व्यर्थ में केवल पत्थर की कंकरियां बटोरने में ही खो दिया। तात्पर्य यह है कि उस परम कल्याणकारी मोक्षरूपी शंकर को न पाकर, संसार के अस्थायी भोग रूपी कंकरों के बटोरने में ही लगे रहे, तो हम उस परम-शान्ति और परम-आनन्द प्राप्ति से पूर्णतया वंचित ही रह जायेंगे और फिर हमें यह सुनहरी मौका हाथ न लगेगा।

२—मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन—गृहस्थाश्रम

अन्य धर्म आदि फलों के समान इस मोक्षरूपी फल को प्राप्त करने का भी सबसे उत्तम साधन गृहस्थ आश्रम में धर्म, अर्थ, कामरूपी फलों को अवश्य

---

१. इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि

प्राप्त कर लेता है। उसी प्रकार इस गृहस्थ आश्रम में ही अपने परम-पुरुषार्थ के द्वारा मोक्षरूपी फल को भी अवश्य प्राप्त कर लेता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। योगीराज कृष्ण, महाराज जनक, राजा अश्वपति, महर्षि वशिष्ट तथा ऋषि याज्ञवलक्य आदि महानुभावों ने गृहस्थाश्रम में रहकर ही ब्रह्मज्ञान द्वारा अपने को मोक्ष पद प्राप्ति का परम अधिकारी बनाया था। मध्यकालीन कबीर, नानक, तुलसी, तुकाराम, नरसी महता, मीरा आदि सन्त महात्मा गृहस्थाश्रम सेवी ही तो थे। अतः हमारा यह गृहस्थाश्रम अपने को आदर्श गृहस्थाश्रम कहलाने का अधिकारी तभी होगा, जबकि हम इस अमृतमय चतुर्थ फल—"मोक्ष पद" प्राप्ति में भी सदा प्रयत्नशील होंगे।

साधन

अब हम मोक्ष पद प्राप्ति के साधनों को संक्षेप से प्रिय पाठकों के सम्मुख उपस्थित करते हैं। आशा है पाठक इन्हें अपने जीवन में चरितार्थ कर अन्य फलों की भांति इस परमरसीले फल का रसास्वादन अवश्य करेंगे। यूं तो इस पावन फल की प्राप्ति के लिए पर्याप्त साधन महापुरुषों ने दर्शाए हैं किन्तु मुख्यतया इसके चार साधन हैं। अन्य सब साधन भी इन्हीं चार साधनों के अन्दर ही समाविष्ट हो जाते हैं। वे साधन हैं—ईश्वर भक्ति, योगाभ्यास, विवेकादि साधन चतुष्टय तथा निष्काम कर्म। पूर्व इसके कि हम इन साधनों पर प्रकाश डालें, मोक्ष के स्वरूप पर कुछ लिख देना उचित समझते हैं।

यह जीव पशु, पक्षी, मनुष्य, कीट, पतंग आदि असंख्य योनियों में अपने कर्मानुसार जन्म-मरण के बन्धन में आता तथा नाना प्रकार के दुःखों, क्लेशों तथा विविध तापों से सन्तप्त होता है। इसे सदा से चले आए जन्म, मरणरूपी बन्धन से तथा नानाविध क्लेशों और दुःखों से छूटकर उस परमानन्द पद को प्राप्त कर लेना ही मोक्ष है। इसी आशय को मोक्ष के साधन तथा स्वरूप का वर्णन करते हुए महर्षि दयानन्द ने अपनी ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में लिखा है—

जब मिथ्याजाल तथा अविद्या नष्ट हो जाती है, तब जीव के सब दोष नष्ट हो जाते हैं। फिर अधर्म, अन्याय, विषयासक्ति की वासनाएं सब दूर हो

जाती हैं। उनके नष्ट हो जाने से फिर जन्म नहीं होता। जन्म न होने से सब दुःखों का अत्यन्ताभाव हो जाता है और दुःखों के अभाव से परमानन्द मोक्ष में सदा के लिए परमात्मा के साथ आनन्द ही आनन्द भोगना शेष रह जाता है। इसी का नाम मोक्ष है।

१—ईश्वर भक्ति

ईश्वरभक्ति मोक्षप्राप्ति का वहुत सरल तथा सुगम उपाय है। जव मनुष्य अनन्य चित्त होकर प्रभु की उपासना में तल्लीन हो जाता है तो वह करुणा-सिन्धु परमेश्वर अपने अनन्य भक्त को निजस्वरूप में स्थित कर जहां उसे परमानन्द प्रदान करते हैं, वहां अपने उपासक को जन्म-मरण के बन्धन से भी मुक्त कर देते हैं। जवकि भगवान् स्वय अजन्मा हैं तो भला उसकी शरण लेने वाला, उसकी अमृतमयी गोद में निवास करने वाला भक्त कैसे जन्म-मरण के जटिल-जाल में जकड़ा रह सकता है। उस सत्+चित्+आनन्द को पा लेने पर भला उसका परमभक्त कैसे संसार क दुःखदावानल में पड़ा रह सकता है तथा अविद्या आदि पंचक्लेशों को प्राप्त कर उस परम अशान्ति का भागी बन सकता है।

अतः सच्चे हृदय से अनन्यचित्त होकर उस परम दयालु प्रभु के पवित्र नाम का स्मरण करना, उसकी आज्ञा तथा इच्छानुसार अपनी जीवन-नौका को चलाने से यह आत्मा भवसागर से पार हो जाता है तथा जन्म-मरण के बन्धन से छूटकर उस परमगति, परम आनन्द को प्राप्त कर लेता है। महाराज कृष्ण ने गीता में यही तो उपदेश दिया है—

ओमित्येकाक्षरं व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यःप्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥

अर्थात्—"जो भक्त ओ३म् प्रभु के इस पवित्र नाम का स्मरण करता हुआ और परमात्मस्वरूप का चिन्तन करता हुआ, अपने शरीर का परित्याग करता है, वह उपासक परमगति अर्थात् मोक्षपद को प्राप्त कर लेता है।"

प्रभु का अनन्य भक्त मोक्षपद को तो प्राप्त कर ही लेता है पर उसका गार्हस्थ्य जीवन भी परम रसीला तथा सुखमय बन जाता है। उस सर्वान्तर्यामी

प्रभु की स्तुति, प्रार्थना और उपासना इस गार्हस्थ्य-जीवन को सुखमय बनाने का सर्वोत्कृष्ट साधन है। जिस परिवार में उस कल्याणकारी शंकर का निवास है, वहां दुःख और अशान्ति की भयंकर विभीषिका नहीं।

२—योगाभ्यास

योगाभ्यास अर्थात् अष्टांग योग के यम, नियमादि साधनों द्वारा अपने अन्तःकरण को निर्मल और एकाग्र बनाकर उसे आत्मस्वरूप में तल्लीन कर देना। जब साधक का चित्त एकाग्र होकर आत्मस्वरूप में लीन हो जाता है, तो उसे अपने आत्मा के दिव्य स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है तथा आत्म-साक्षात् हो जाने पर अविद्या की ग्रंथी खुल जाती है। अज्ञान का निविड़-अन्धकार नष्ट हो जाता है, जन्म-जन्मान्तरों के संचित कर्मों के बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। तब फिर उसे उन कर्मों के विपाक के फलस्वरूप दुबारा जन्म-मरण के बन्धन में नहीं आना पड़ता और वह आत्म-साक्षत्कार के द्वारा उस विष्णु के परमपद अर्थात् मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

योग के आठ अंग निम्न प्रकार हैं—१—यम, २—नियम, ३—आसन, ४—प्राणायाम, ५—प्रत्याहार, ६—धारणा, ७—ध्यान और ८—समाधि।

१—अहिंसा, २—सत्य, ३—अस्तेय, ४—ब्रह्मचर्य, ५—अपरिग्रह ये पांच यम तथा १—शौच, २—सन्तोष, ३—तप, ४—स्वाध्याय, ५—ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम हैं। इनके स्वरूप का ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में बड़ा सुन्दर वर्णन किया है। अतः हम अपनी ओर से कुछ न लिखकर उनके ही दर्शाए मार्मिक स्वरूप को नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

(अ—यम)

(अहिंसा) सब प्रकार से, सब काल में, सब प्राणियों के साथ वैरभाव को छोड़ कर प्रेम अर्थात् प्रीति से बरते। (सत्य) जैसा अपने मन में हो, वैसा बोले तथा करे। (अस्तेय) स्वामी की आज्ञा के बिना किसी भी पर-पदार्थ की मन से भी इच्छा न करे। (ब्रह्मचर्य) बाल्यावस्था से लेकर सर्वथा जितेन्द्रिय रहे, पर-स्त्री, वेश्यागमन आदि का सर्वथा परित्याग करदे। सदा ऋतुगामी होवे। उपस्थेन्द्रिय का सदा संयम करे। (अपरिग्रह) विषय-वासना और अभिमान

आदि दोषों से सदा दूर रहे। इन पांच नियमों का ठीक-ठीक अनुष्ठान करने से (साधक के हृदय में) उपासना का बीज बोया जाता है।

(आ—नियम)

(शौच) सदा पवित्रता रखे। पवित्रता दो प्रकार की है। एक भीतरी अर्थात् शरीर आदि की। भीतर की शुद्धि, धर्माचरण, सत्य भाषण, विद्याभ्यास, सत्संग आदि शुभ गुणों के आचरण से होती है और बाहर की पवित्रता जलादि से, शरीर, स्थान, मार्ग, वस्त्र, खान, पान आदि के शुद्ध रखने से होती है। (सन्तोष) सदा धर्मानुष्ठानपूर्वक अत्यन्त पुरुषार्थ करके सदा लाभ-हानि में प्रसन्न रहे, दुःख और संकट में भी शोकातुर न हो। किन्तु आलस्य, प्रमाद और निठल्ले रहने का नाम सन्तोष नहीं है। (तप) जैसे स्वर्णकार सोने को अग्नि में तपा कर निर्मल बना देता है वैसे ही आत्मा और मन को धर्माचरण और शुभ गुणों के आचरण रूपी तप से निर्मल बना दे। (स्वाध्याय) मोक्ष का प्रतिपादन करने वाले वेद शास्त्रों को पढ़े, पढ़ावे और भगवान् के पवित्र नाम ओंकार का जप, तथा उसके अर्थ के विचारपूर्वक ईश्वर के स्वरूप का निश्चय करे। (ईश्वर प्रणिधान) सर्वोत्तम भाव से अपने सम्पूर्ण सद्‌गुण, प्राण, मन और आत्मा को अत्यन्त प्रेम और श्रद्धा से प्रभु के अर्पण कर देवे।

(इ—आसन)

आसन दो प्रकार के हैं। एक तो स्वस्थ, बलवान् तथा नीरोग बनाने वाले। जैसे—शीर्षासन, सर्वाङ्गासन आदि। दूसरे जिन पर स्थिर और सुखपूर्वक बैठकर योग के प्राणायाम. धारणा, ध्यान आदि का अनुष्ठान किया जा सके।

सिद्धासन—भूमि पर बैठ कर दाएं पैर की एड़ी को सीवन के साथ सटा दो। बाएं पैर की एड़ी बिल्कुल दांए पैर की सीध में नाभि के पास जाकर रख दो। दाएं पैर की अंगुलियों को बांएं पैर के बीच में तथा बाएं पैर की अंगुलियों को दाएं पैर के मध्य में डाल दो। हाथों को सीधा करके, और तर्जनी अंगुली को अंगूठे के नीचे दबाकर घुटनों पर रख दो। छाती, पेट, गर्दन और सिर बिल्कुल सीधे अर्थात् समरेखा में रहें।

पद्मासन—सीधे बैठ जाओ। दायें पैर को बाएं तथा बाएं पैर को दांएं

पैर पर इस प्रकार रखो कि एड़ियां नाभि के दोनों ओर पेट से सटी रहें। सारे शरीर को सिद्धासन समान सीधा रखकर, हाथों को उल्टा करके घुटनों पर अथवा एक के ऊपर दूसरी हथेली रखकर दोनों एड़ियों के मध्य में रख दो।

(ई—प्राणायाम)

प्राणों को अपने वश में कर लेना अथवा प्राणों को लम्बा कर देना ही प्राणायाम का मुख्य उद्देश्य है और यही प्राणायाम का शब्दार्थ है। प्राणों को अपने वश में कर लेने से अथवा उन्हें खूब लम्बा बना लेने से जहां हमारा शरीर स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बन जाता है, वहां मन भी एकाग्र होकर साधक के वश में हो जाता है क्योंकि प्राण और मन का परस्पर घनिष्ट संबन्ध है। अतः प्राणों के वश में हो जाने पर मन सुगमता से वश में हो जाता है। इसीलिए प्राणायाम को योग का एक आवश्यक अंग माना गया है। प्राणायाम के तीन अंग हैं—पूरक अर्थात् प्राण को अन्दर लेना। रेचक अर्थात् प्राणों को बाहर निकालना तथा कुम्भक अर्थात् प्राणों को बाहर निकालना तथा कुम्भक अर्थात् प्राणों को अन्दर ही रोक लेना। हम यहाँ पाठकों के लाभार्थ कुछ लाभप्रद प्राणायामों के करने की विधि दे रहे हैं। आशा है पाठक लाभ उठायेंगे। जो सज्जन प्राणायाम के सम्बन्ध में पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहें तथा अनेक प्रकार के अत्यन्त लाभप्रद प्राणायामों को सीखना चाहें, वे मेरी पुस्तक "योग और स्वास्थ्य" अथवा "प्राणायाम" नामक पुस्तक में देख सकते हैं।

१—उज्जायी प्राणायाम—विधि—सिद्धासन पर बैठिये। फिर दोनों नासिका के छिद्रों से बलपूर्वक श्वास को बाहर निकाल दीजिए। फिर शनैः-शनैः नासिका के दोनों छिद्रों से जैसे रात्रि को सोते समय हम श्वास लेते वक्त कण्ठ से एक सूक्ष्म ध्वनि करते हैं वैसे ही कण्ठ से सूक्ष्म ध्वनि करते हुए श्वास को लम्बा करके अन्दर भरिये। श्वास अन्दर लेते हुए छाती को खूब फुलाईये जिससे फेफड़ों के सभी भागों में श्वास भली प्रकार से भर जाए। फिर लम्बा ही करके कण्ठ से सूक्ष्म ध्वनि करते हुए श्वास बाहर निकाल दीजिए। यह चलते, फिरते, सोते, बैठते सभी अवस्थाओं में कर सकते हैं। इसी प्राणायाम

का नाम पाश्चात्य विद्वानों ने दीपब्रीदिंग रखा है। सात संख्या से प्रारम्भ करके सप्ताह में 3 बढ़ाते हुए 21 प्राणायाम तक ले जाइये। आगे चलकर पूरक और रेचक का अच्छा अभ्यास हो जाने पर कुम्भक अर्थात् श्वास को अन्दर रोक भी सकते हैं। किन्तु यह ध्यान रहे कि श्वास को सरलतापूर्वक जितना रुक सके उतना ही रोकना चाहिए। जबरदस्ती बलपूर्वक नहीं। इस प्राणायाम से शरीर के सब दोष दूर होकर भूख लगती है, रक्त शुद्ध और निर्दोष बनता है, वीर्य विकारों की निवृत्ति होती है, चित्त एकाग्र होता है।

२—लोम-विलोम प्राणायाम—सिद्धासन से बैठकर दांई नासिका से श्वास को शनैः-शनैः अन्दर भरिये अर्थात् पूरक करिये। फिर यथाशक्ति अन्दर रोककर अर्थात् कुम्भक करके बांई नासिका से बाहर निकाल दीजिये। फिर बांई नासिका से श्वास लेकर और कुम्भक करके दांई नासिका से रेचक अर्थात् श्वास को बाहर निकाल दीजिये। फिर दाहिनी नासिका से श्वास लीजिये और अदल-बदल करते जाइए। प्रारम्भ में 3 प्राणायामों से शुरू कर सप्ताह में 2 बढ़ाते हुए 11 तक ले जाइये। यह प्राणायाम भी उज्जाई के समान बहुत लाभकारी है। कुम्भक के समय यदि प्राणों को आज्ञा चक्र में जो कि भृकुटि के मध्य में है, ले जाकर ठहराया जाए और मन को भी वहीं स्थिर करने का प्रयत्न किया जाये तो चित्त की एकाग्रता में बहुत सहायता मिलती है।

(उ—प्रत्याहार)

प्रत्याहार का अर्थ है—इन्द्रियों को विषय-भोगों से हटाकर अपने आधीन करना। उन्हें कुपथगामी न होने देना। क्योंकि जब हमारी इन्द्रियां हमारे आधीन न होकर कुपथगामिनी बन जाती है, तो मन को भी जबरदस्ती अपनी ओर आकर्षित कर उसे बहिर्मुखी तथा चंचल बना देती है। महाराज कृष्ण ने गीता में कहा है—**इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभं मनः।**

जब मन में कुमार्गगामी तथा चंचल बन जाता है तब न तो हम ईश्वर भक्ति ही कर सकते हैं और न ही आत्मचिन्तन। अतः मोक्षपद के अभिलाषी का कर्त्तव्य है कि वह संसार के विषयों को क्षणिक समझकर उनमें अपनी इन्द्रियों को न फंसायें अर्थात् उनमें आसक्त न होने दे। इसी का नाम प्रत्याहार है।

(ऊ—धारणा)

मन को किसी एक लक्ष्य में एकाग्र कर देने का नाम धारणा है। जब साधक प्रत्याहार द्वारा अपनी इन्द्रियों को अपने वश में कर लेता है, तो उसका मन चंचलता को छोड़, धारणा अर्थात् किसी भी एक लक्ष्य में एकाग्र होने का अधिकारी बन जाता है। उस समय उसे शनैः-शनैः अपने किसी भी ऐसे लक्ष्य पर जिस पर उसे अनन्य प्रेम और श्रद्धा हो, ठहराने अर्थात् एकाग्र करने का प्रयत्न करना चाहिए। इसीका नाम धारणा है।

(ए—ध्यान)

धारणा द्वारा लक्षित किये अपने ध्येय में दीर्घकाल तक चित्त के एकाग्र हो जाने का नाम 'ध्यान' है। जब साधक का चित्त धारणा द्वारा अपने ध्येय में एकाग्र होने लगता है, तो उसे मन में एक प्रकार का अलौकिक आनन्द तथा परमशांति का भान होता है। तब उसका मन सब ओर से हटकर दीर्घकाल तक अपने उसी ध्येय में ही एकाग्र हो जाता है। अतः दीर्घकाल पर्यन्त अपने ध्येय में ही मग्न रहने का नाम "ध्यान" है।

(ऐ—समाधि)

जब साधक ध्यान द्वारा अपने ध्येय में इतना मग्न हो जाये, कि उसे अपने शरीर की भी सुध न रहे, यहां तक कि वह अपने आपको भी भूल कर केवल अपने ध्रुव ध्येय में ही ध्यान मग्न हो जाए और बहुत काल पर्यन्त यह अवस्था बनी रहे, उसका नाम ही समाधि है। चूंकि समाधि द्वारा साधक अपने परम ध्येय को प्राप्त कर लेता है, और उसके निर्मल अन्तःकरण में आत्म स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है। इसलिए समाधि ही साधक का अन्तिम साध्य अर्थात् लक्ष्य, किंवा चरम उद्देश्य है। समाधि अवस्था को प्राप्त कर लेने पर हृदय की ग्रन्थियां खुल जाती हैं। सारे संशय कट जाते हैं। अविद्या का अंधकार दूर होकर ज्ञान का प्रकाश होता है। उस समय साधक सारे दुःख-द्वन्द्वों से छूट कर उस परमानन्द को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है। इसी का नाम परमपद प्राप्ति है तथा यही मानव-जीवन का चरम लक्ष्य है। अतः मोक्षपद के प्रेमी को महर्षि पतञ्जलि के दर्शाए इस अष्टांग योग का अवश्य लाभ प्राप्त करना चाहिऐ।

प्राणायाम आदि योग साधन से मनुष्य किस प्रकार उस परमानन्द को प्राप्त कर लेता है, इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के उपासना प्रकरण में लिखते हैं—

इस प्रकार बार-बार प्राणायाम का अभ्यास करने से प्राण उपासक के वश में हो जाते हैं। प्राणों के स्थिर होने से मन, और मन के स्थिर होने से आत्मा भी स्थिर हो जाती है। इन तीनों अर्थात् प्राण और आत्मा के स्थिर होने पर; आत्मा में जो आनन्द स्वरूप अन्तर्यामी व्यापक परमेश्वर है, उसमें उपासक को मग्न हो जाना चाहिए। जैसे मनुष्य जल में गोता मार कर ऊपर आता है, और फिर गोता मार जाता है, इसी प्रकार आत्मा को परमात्मा के स्वरूप में बार-बार मग्न कर देना चाहिए।

यहां तक हमने मोक्ष प्राप्ति के ईश्वर उपासना तथा योगाभ्यास इन दो साधनों पर प्रकाश डाला। अब तीसरे साधन के सम्बन्ध में संक्षेप से कुछ लिखते हैं। मोक्ष प्राप्ति का तीसरा साधन है—

३—विवेकादि साधन चतुष्टय

(विवेक, वैराग्य, षटक सम्पत्ति तथा मुमुक्षुत्व।)

(अ)—विवेक

विवेक—नित्य और अनित्य का, हानि और लाभ का, जड़ और चेतन का धर्म और अधर्म का, आचार और अनाचार का, सूक्ष्म तथा निर्मल बुद्धि द्वारा विवेचन करना तथा संसार के अनित्य और जड़ पदार्थों में अपनी आसक्ति को छोड़, नित्य और चेतन जो अपना आत्मस्वरूप है, उसकी प्राप्ति पूर्णतया यत्नवान् होना। इसी प्रकार धर्म-अधर्म, आचार-अनाचार के स्वरूप का विवेचन कर अधर्म और अनाचार का परित्याग, तथा धर्म और आचार को अपने जीवन में धारण करना, तथा अपने वास्तविक हानि-लाभ को सोचकर, निज कर्म में अपनी हानि हो, उसका परित्याग तथा जिसमें लाभ हो, उसका ग्रहण करना "विवेक" कहलाता है।

हमारे शरीर में पांच कोश अर्थात् आत्मा के रहने के स्थान। यथा— अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय। ये सब कोश जड़

प्रकृति से बने हैं। किन्तु आत्मा अज्ञानवश इन्हें ही अपना स्वरूप समझ लेता है और इनसे अलग नहीं होना चाहता। अतः मोक्ष के अभिलाषी का यह कर्त्तव्य है कि वह विवेक द्वारा अपने को इन कोषों से भिन्न समझने का प्रयत्न करे। पहिले अन्नमय कोष, जो सब से स्थूल है, उससे अपनी आत्मा को पृथक् कर उसे 'प्राणमय' कोष में स्थिर करे। प्राणमय कोष से भी आत्मा को पृथक् समझ उससे अपने आत्मा को अलग कर मनोमय कोष से भी अपने सम्बन्ध का परित्याग कर विज्ञानमय कोष में आत्मास्वरूप को स्थिर करे। विज्ञानमय कोष से भी अपने स्वरूप को पृथक् समझता हुआ, उसे उससे अपने आत्मा को हटाकर आनंदमय कोष में, जो कि सब कोषों से सूक्ष्म तथा आत्मा का वास्तविक निवास स्थान है तथा जहां आनन्द ही आनन्द है, दुःख का जहां लेश भी नहीं, अपनी आत्मा को एकाग्र करे। अन्त में उस आनन्दमय कोष के आनन्द को भी अपना ही आनन्द समझ उसमें आसक्त न हो। उससे भी विवेक द्वारा अपने को अलग कर केवल आत्मस्वरूप में ही लीन हो जाए। यही विवेक का मुख्य उद्देश्य है।

ब—वैराग्य

आत्मा के विवेक द्वारा जिन पदार्थों को आत्मस्वरूप की उपलब्धि में हानि कर तथा त्याज्य समझा है उनमें दोष दर्शन करते हुए, उनका सर्वथा परित्याग कर देना, उनमें आसक्त न होना ही वैराग्य है: अपने घरबार, स्त्री, पुत्र, बधु, बांधव आदि परिवार का सर्वथा परित्याग कर देने का नाम वैराग्य नहीं है। प्रत्युत् इनमें रहता हुआ भी इनमें जल-कमलवत् आसक्त न होना ही सच्चा वैराग्य है।

षट—सम्पत्ति

अर्थात् ६ प्रकार की ऐसी सम्पत्तियों को प्राप्त करना, जिनके द्वारा मोक्षरूपी परम-ऐश्वर्य की प्राप्ति हो। वह ६ सम्पत्तियां निम्न प्रकार हैं—

शम, दम, ऊपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान।

(शम)—मोक्षाभिलाषी मुमुक्षु जन का कर्त्तव्य है कि वह अपने आत्मा तथा अन्तःकरण को कुमार्ग से हटा, उन्हें सदा सन्मार्ग पर प्रवृत्त करे और

अपने मन को कुवासनाओं तथा कुत्सित कर्मों से परे रख, उसे सुविचारों तथा सत्कर्मों में ही लगाए। अर्थात् बुरे विचारों को शमन करने का नाम ही 'शम' है।

(दम)—विषयों की ओर वलात् मन को आकृष्ट करने वाली इन्द्रियों को भी अनिष्ट मार्ग से हटा अपने मन के आधीन करे। कभी उन्हें कुपथगामी न बनने दे। अर्थात् चंचल इन्द्रियों का दमन कर उन्हें सत्पथ चलाने का नाम ही "दम" है।

(उपरति)—अधर्मात्मा, आचारहीन तथा दुष्ट स्वभाव वाले मनुष्यों के संसर्ग से जहाँ तक दूर रहे। अर्थात् उपर्युक्त स्वभाव वाले मनुष्यों से सदा उपरामवृत्ति को धारण करने का नाम ही 'उपरति' है।

(तितिक्षा)—मोक्षमार्ग का अनुसरण करते हुए, बीच में कितने ही विघ्न-बाधाएं या प्रलोभन आयें, उनकी परवाह न करे। उनसे घबराए नहीं। प्रलोभनों में फंसे नहीं। सुख, दुःख हानि, लाभ, शीत, ऊष्ण, मान, अपमान, हर्ष, शोक इन सबको सहन करे। अर्थात् सहनशीलता का नाम ही "तितिक्षा" है।

(श्रद्धा)—वेदादि मोक्ष विधायक शास्त्रों पर, ऋषि, मुनि, सन्त, महात्मा आदि गुरुजनों तथा उनके उपदेशप्रद वचनों पर, उनके बताए साधना के मार्ग पर पूर्ण आस्था और अटल विश्वास रखकर निरन्तर चलता रहे तथा उनके सदुपदेशों के अनुसार अपने जीवन को भी बनाए। इसका नाम श्रद्धा है।

(समाधान)—मन को बाह्य विषयों से हटाकर, उसे आत्मस्वरूप में स्थिर कर देने का नाम समाधान है।

(द)—मुमुक्षुत्व

संसार-सागर से पार होने तथा जन्म, मृत्यु के बन्धन से छूटने और उस परमानन्द मोक्षपद को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा तथा उत्कट चाहना के उत्पन्न होने का नाम मुमुक्षुत्व है। जैसे क्षुधातुर को सिवाय भोजन के और नहीं सूझता, उसी प्रकार मोक्ष के अभिलाषी को सदा मोक्ष प्राप्ति में ही अपने चित्त को लगाये रखना चाहिए। बिना तीव्र चाहना और उत्कट अभिलाषा के

किसी सांसारिक महत्वपूर्ण पदार्थ की भी प्राप्ति नहीं होती, फिर भला जैसे दुर्लभ पद की प्राप्ति कैसे हो सकती है।

अतः बिना मुमुक्षु बने मोक्षपद की प्राप्ति होना कठिन ही नहीं, प्रत्युत् नितान्त असम्भव है। अतः मोक्ष पद प्राप्ति के अभिलाषी का यह परम कर्त्तव्य है कि जहां वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए सांसारिक सुख भोगों की प्राप्ति के लिए बुभुक्षु बने, वहां मोक्षपद प्राप्ति के लिए 'मुमुक्षु' भी बने।

फलासक्ति को छोड़कर अपने कर्त्तव्य कर्मों को करते जाना। उनके करने में आलस्य या प्रमाद न करना तथा अपने जीवन के कुछ भाग को लोक-कल्याण और परहित में भी लगा देना निष्काम कर्म कहलाता है। इस प्रकार के आसक्ति रहित निष्काम कर्म करने से साधक का अन्तःकरण शुद्ध तथा निर्मल हो जाता है। फिर उस शुद्धान्तःकरण ने उपर्युक्त ईशभक्ति आदि साधनों द्वारा अज्ञानान्धकार का नाश होकर आत्म ज्योति का प्रकाश होता है तथा आत्मस्वरूप के पा लेने पर यह आत्मा जन्म, जरा, मृत्यु के बन्धन से छूटकर सदा के लिए परमानन्द रूप मोक्ष पद को प्राप्त कर लेता है।

यहां तक हमने मनुष्य जीवनरूपी कल्प वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी मधुर फलों का आस्वादन करा कर हमारा गार्हस्थ्य जीवन अथर्ववेद के कथनानुसार "मयोभुवः" अर्थात् सुख, शांति तथा आनन्द का भण्डार कैसे बन सकता है, इसका विवेचन किया। अब गार्हस्थ्य जीवन को आदर्श तथा सुखमय बनाने वाला द्वितीय साधन "ऊर्जस्वन्तः" पर विचार करेंगे।

——

२

ऊर्जस्वन्तः

अभी तक हमने आदर्श गृहस्थ जीवन के प्रथम एक गुण "मयोभुवः" पर प्रकाश डाला तथा मानव-जीवनरूपी सुन्दर वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष-रूपी फलों की विषद व्याख्या की। किन्तु इन चारों सुमधुर फलों को प्राप्त करना तभी सम्भव है जबकि हमारा शरीर स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग हो। स्वस्थ और बलवान् शरीर ही इन मधुर तथा स्वादु फलों के आस्वादन का सुन्दर साधन है। इसीलिए आयुर्वेद में कहा है—

धर्मार्थ काम मोक्षाणामारोग्यं मूलसाधनम्।

अर्थात्—धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष प्राप्ति का मूल तथा मुख्य साधन शरीर की आरोग्यता ही है। अतः अपने गार्हस्थ्य-जीवन को आदर्श गार्हस्थ्य जीवन बनाने तथा उसे सुख-शांति से पूर्ण करने के अभिलाषी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने तथा अपने परिवार के शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाये। इसीलिए वेद मन्त्र में आदर्श गार्हस्थ्य जीवन के स्वरूप का वर्णन करते हुए आगे कहा—"ऊर्जस्वन्तः" अर्थात् हमारे ये घर ऊर्ज अर्थात् बल, तेज और आरोग्यता से भरपूर हों। हमारे घर का कोई भी सदस्य कम-जोर, बीमार तथा निस्तेज न रहे। परिवार के छोटे-बड़े सभी स्त्री, पुरुषों, बालक तथा बालिकाओं के मुखमण्डल पर बल, तेज तथा ओज की झलक हो। उन्हें अपने चेहरों को पाउडर और क्रीम आदि कृत्रिम साधनों से सुन्दर बनाने की आवश्यकता न पड़े।

अब हमारे शरीर स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग कैसे बन सकते हैं, उनके क्या साधन हैं? इसका हम विषद वर्णन करेंगे। शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने के मुख्यतया तीन साधन हैं—

आहार, व्यवहार तथा सदाचार। जिसने इन तीनों साधनों को सिद्ध कर लिया, वह निश्चय ही सदा निरोग तथा स्वस्थ बना रहेगा। इनमें सर्वप्रथम है—

(अ) आहार

आहार का तात्पर्य है—हमारा भोजन। भोजन के सम्बन्ध में मुख्यतया पांच नियमों पर ध्यान देना अत्यावश्यक है। वे पांच नियम हैं—

(१) हम क्या खायें? (२) कितना खायें? (३) क्यों खायें? (४) कब खायें? और (५) कैसे खायें?

भोजन के सम्बन्ध में सबसे पहिली ध्यान देने योग्य जो बात है वह है, हम क्या खायें? इसका संक्षेप में यदि कोई उत्तर हो सकता है तो यही कि हम वही खायें जो कि हमारे शरीर के लिये उपयोगी तथा लाभप्रद हो, जिसको खाकर हमारे शरीर की सब धातुएं बलवान्, परिपुष्ट तथा निरोग बनकर शरीर में बल, वीर्य तथा आरोग्यता की वृद्धि हो। भोजन में ऐसे पदार्थों का समावेश करना चाहिए, जो आरोग्यप्रद, पौष्टिक, सुपच तथा सात्विक हों। विशेषकर जो सज्जन अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा को पवित्र और बलवान् बनाना चाहते हैं, जिन्हें स्वास्थ्य, सौंदर्य और निरन्तर यौवन की, अभिलाषा है, जो शरीर के सकल सेलों अर्थात् जीवनीय परमाणुओं विकारों और विषैले कीटाणुओं से सुरक्षित रखना चाहते हैं, जो ब्रह्मचर्य पालन द्वारा अपनी आयु को दीर्घ-आयु तथा पूर्ण-आयु बनाकर जीवन को सुखमय बनाना चाहते हैं, जो योग के यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि के द्वारा अपने जीवन को सर्वाङ्गरूप से आदर्श बनाना चाहते हैं, उन्हें तो कम से कम सात्विक और पौष्टिक आहार का ही सेवन करना चाहिए। सड़े, गले, बासे, चटपटे अर्थात् अधिक मिर्च मसालों वाले तथा मादक पदार्थों का हमारे भोजन में सर्वथा वहिष्कार होना चाहिए।

दुग्ध, घृत, दही, ताजे फल, मेवे, ताजे तथा हरे साग और उत्तम अन्न आदि पदार्थों का ही हमें सेवन करना चाहिए। ये पदार्थ शरीर में रस, रक्त, वीर्य आदि सब धातुओं की वृद्धि कर उन्हें पुष्ट तथा निरोग बनाते हैं। शरीर की जीवन-शक्ति को स्थिर रखते हैं और धातुओं की विषमता को दूर करते

हैं जो कि शरीर के निर्बल और बीमार होने का मुख्य कारण है। वास्तव में शरीर की सब धातुओं में समता के लाने और विषमता को दूर रखने के लिए ऐसे ही पदार्थों का सेवन करना चाहिए, जो शरीर की सब धातुओं को निरोग और स्वस्थ बनाने वाले हों और जिनमें पौष्टिक तत्वों की प्रचुर मात्रा हो। क्योंकि शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाये रखने के लिए पौष्टिक तत्वों का होना परमावश्यक है। भोजन में पर्याप्त मात्रा में पौष्टिक तत्वों के होने से युवा-अवस्था बनी रहती है। बुढ़ापा जल्दी नहीं आता।

अब भोजन के दूसरे नियम अर्थात् "कितना खायें" के सम्बन्ध में कुछ लिखेंगे। खाद्य पदार्थ चाहे कितने भी पौष्टिक तथा आरोग्यप्रद क्यों न हों, किन्तु यदि उन्हें उचित तथा परिमित मात्रा में सेवन नहीं किया जाता तो वह कदापि शरीर के लिये लाभप्रद सिद्ध नहीं हो सकते।

अतः इन पौष्टिक तथा आरोग्यप्रद पदार्थों को भी हम उतना ही खायें जितना कि हमारे शरीर के लिए अत्यावश्यक हो या जितना हम सरलतापूर्वक पचा कर उसे अपने शरीर का अंग बना सकें। इसलिए क्या खायें के बाद दूसरा प्रश्न है, कितना खायें? जिसका संक्षेप में यही उत्तर है कि जितना हमारे शरीर को स्वस्थ और बलवान् तथा निरोग बनाए रखने के लिए अति आवश्यक है। आवश्यकता से कम खाना जहां शरीर की धातुओं का शोषण करता है, वहां आवश्यकता से अधिक खाना शरीर की धातुओं में विकार उत्पन्न करता है जिससे शरीर में नाना प्रकार के रोग उत्पन्न होकर शरीर बीमार तथा कमजोर बन जाता है और ऐसे मनुष्य सुख और वैभव से हीन होकर सदा दीन और दुखी ही बने रहते हैं। किसी कवि ने कैसा सुन्दर कहा है—

कुचेलिनं दन्त-मलावधारिणम्, बह्वाशिनं नित्य-कठोर-भाषिणम्।
सूर्योदये चास्तमये च शायिनम्, विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिम्॥

अर्थात्—जिस मनुष्य के शरीर तथा वस्त्र सदा मैले रहते हैं, जिसके दांतों पर मैल जमा रहता है, जो मात्रा में अधिक भोजन करता है, जो हमेशा कठोर वचन बोलता है, जो सूर्य के उदय हो जाने पर तथा अस्त होते समय सोता रहता है, वह चाहे साक्षात् विष्णु भी क्यों न हो, उसका भी लक्ष्मी अर्थात् सुख,

शांति, वैभव और कांति साथ छोड़ देते हैं। अतः हमारा भोजन परिमित मात्रा में होना चाहिए, न न्यून, न अधिक। हितकर और परिमित भोजन खाने से न केवल सामान्य स्वास्थ्य वाले मनुष्य प्रत्युत् असाध्य रोगी भी स्वस्थ और निरोग हो जाते हैं।

हम क्यों खाएं ? उत्तर है, अपने शरीर पोषण के लिए, दूसरे शब्दों में अपने जीवन-धारण के लिए। भोजन का उद्देश्य केवल अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाना ही है। पेट भरना या अपनी जीभ को सन्तुष्ट करना नहीं। जो लोग अपने शरीर को निरोग तथा बलवान् बनाने के लिए ही भोजन करेंगे, वे उतनी ही मात्रा में भोजन करेंगे जितनी कि उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हैं। इसके विपरीत जो केवल जिह्वा की तृप्ति के लिए ही खायेंगे, वे ऐसे ही पदार्थ खायेंगे, जिससे उनकी जीभ को स्वाद मिले, न कि शरीर का पोषण हो और वह भी परिमित मात्रा में नहीं, अपितु अत्यधिक मात्रा में। ऐसा हानिकर भोजन या अधिक मात्रा में खाया हुआ भोजन शरीर को रोगी तथा निर्बल ही बनायेगा, स्वस्थ तथा बलवान कदापि नहीं। इसीलिए बुद्धिमानों का कहना है—

जीवन के लिए खाओ, न कि खाने के लिए जीओ

चौथा प्रश्न है—कब खायें ? जब शरीर मांगे। शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग रखने के लिए ही भोजन करना चाहिए। अतः जब शरीर अपनी इस आवश्यकता को पूर्ण करना चाहता है तो वह स्वयं अपनी मूकवाणी से आप से भोजन मांगना प्रारम्भ कर देता है, उस समय पाचन शक्ति तेज होकर भूख खूब लगती है।

अतः जब भूख खूब लगे तब समझना चाहिए कि अब शरीर पूर्व खाए भोजन को अपना अंग बनाकर दुबारा अगले भोजन की मांग हमसे कर रहा है। किन्तु जब हम ऐसा नहीं करते अर्थात् बिन शरीर के मांगे, दूसरे शब्दों में बिना भूख लगे भोजन खा लेते हैं तो पूर्व खाया भोजन भली प्रकार से न पचने के कारण उसमें सड़ांद पदा हो जाती है। वह सड़ांद दुबारा खाये भोजन को भी सड़ा कर शरीर की रस, रक्त तथा वीर्य आदि धातुओं को कमजोर

तथा दूषित बना देती है। अतः पहिले भोजन के खूब पच जाने पर ही दुबारा भोजन खाना चाहिए, अन्यथा नहीं। इस सम्बन्ध में आयुर्वेद कैसा सुंदर नियम बताता है—

हिताशी स्याद् मिताशी स्याद् कालभोजी जितेन्द्रियः।
पश्यन् रोगान् बहून् कष्टान् बुद्धिमान् विषमाशनात्तु॥

बुद्धिमान का कर्त्तव्य है कि विषम आहार से नाना प्रकार के रोगों तथा कष्टों को देखता हुआ सदा हितकर और परिमित आहार का सेवन करने वाला बने और हमेशा ठीक समय पर अर्थात् भूख लगने पर ही भोजन करे तथा सदा संयमी और जितेन्द्रिय रहे।

अब पांचवा प्रश्न है—कैसे खाएं? इसका उत्तर इतना ही है कि जिस प्रकार खाने से हमारी जठराग्नि को भोजन पचाने में कम से कम परिश्रम करना पड़े। यह तभी हो सकता है, जबकि हम खूब चबाकर तथा प्रसन्न चित्त होकर, शान्तिपूर्वक भोजन खाएं। खूब चबाए हुए भोजन को पचाने में जठराग्नि को बहुत कम परिश्रम करना पड़ता है और वह भोजन को शीघ्र पचाकर शरीर का अंग बना देती है तथा पाचन शक्ति हमेशा ठीक बनी रहती है। अतः खूब चबाकर भोजन करने वाला मनुष्य अपचन, बद्ध कोष्ठ आदि रोगों से सदा मुक्त रहता है। जब हम भोजन को दांतों से खूब चबाते हैं तो मुख से से एक प्रकार का भोजन पचाने वाला रस निकलता है, जो कि भोजन के साथ मिलकर उसे पचाने में सहायता देता है। दूसरा चबाकर खाने से भोजन अधिक मात्रा में नहीं खाया जाता। इसीलिए बुद्धिमानों ने कहा है—

कम खाना और खूब चबाना। यही है तन्दुरुस्ती का खजाना॥

खूब चबाने के साथ-साथ भोजन खाते समय हम अपने अन्दर से रंज, गम, शोक, दुःख तथा क्रोध के विचारों को दूर कर दें और खूब प्रसन्न चित्त होकर शांतिपूवक भोजन खावें।

(आ) व्यवहार

व्यवहार से तात्पर्य है—सोने, उठने, बैठने, चलने आदि का वह उचित ढंग कि जो हमारे भोजन पचाने में सहायक हो तथा हमारी दिनचर्या और प्रति-

दिन नियमपूर्वक उचित मात्रा में व्यायाम । आज हमने सोने, बैठने के ढंग को बहुत बिगाड़ लिया है । यही कारण है कि जहां हमारा भोजन पक्वाशय में जाकर सरलतापूर्वक और ठीक समय पर पच जाना चाहिए था, वहां आज हमारा भोजन बहुत कठिनता से पचता है और चूर्ण, गोली आदि कृत्रिम साधनों द्वारा ।

आप सोने के ढंग को ही लीजिए, सोना करवट से चाहिए और वह भी विशेषकर बाईं करवट से, इससे भोजन भी भली प्रकार पच जाता है और वीर्याशय पर अधिक दबाव न पड़ने के कारण स्वप्नदोष आदि वीर्य विकार भी नहीं होते । किन्तु इसके विपरीत कोई भी पीठ के भार हाथ-पैर फैलाकर बिल्कुल चित्त ही लेट जाता है, कोई मगरमच्छ के समान पेट और छाती के बल पर सोता है और कोई यदि करवट से सोता भी है तो सीधा न सोकर घुटनों को मोड़कर और पेट के साथ सटाकर फुटबॉल के समान गोल-मटोल बनकर सोता है। इन सब सोने के विकृत उपायों से न तो हमारा भोजन ही भली प्रकार पचता है और न फेफड़ों और हृदय में रक्त का अभिसरण भली प्रकार से हो पाता है और न ही प्राण शक्ति, जो कि शरीर में जीवन का मुख्य साधन है; उसका भी भली प्रकार से संचार होता है । यही अवस्था हमारे चलने, फिरने; उठने, बैठने आदि की है । आज हमारी प्रत्येक जीवनोपयोगी क्रिया तथा चेष्टा का ढंग विकृत हो गया है । यही कारण है कि जो व्यवहार हमारे स्वास्थ्य तथा बल, बुद्धि की वृद्धि की प्राप्ति में साधक बनना चाहिये था, वह आज बाधक बन रहा है । व्यवहार का दूसरा भाग है—

दिनचर्या

शारीरिक स्वास्थ्य को ठीक रखने तथा सदा निरोग रहने के अभिलाषी को अपनी दिनचर्या को अवश्य ठीक करना चाहिए । उसकी दिनचर्या एक ऐसी आदर्श दिनचर्या हो कि जिसके द्वारा अनायास ही शरीर के स्वास्थ्य और बल का विकास होता जाय । प्रातः उठने से लेकर रात्रि-शयन करने तक हमारी आदर्श दिनचर्या कैसी हो, इसका संक्षिप्त दिग्दर्शन हम पाठकों के लाभार्थ यहां कर देना उचित समझते हैं ।

आदर्श दिनचर्या

१—ब्राह्ममुहूर्त्त में उठना—अपने शरीर, मन, आत्मा को स्वस्थ, निर्विकार तथा बलवान् बनाने के लिए और दीर्घजीवी बनने के लिए प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में उठना परमावश्यक है। शरीर शास्त्रियों ने कहा है—

ब्राह्मे मुहूर्त्ते उत्तिष्ठेत् स्वस्थो रक्षार्थमायुषः।

अर्थात्—जो मनुष्य अपने को स्वस्थ तथा बलवान् बनाना चाहता है और जो अपनी आयु को सुखमय और दीर्घजीवी बनाना चाहता है, उसे प्रातः ब्राह्ममुहूर्त्त में अवश्य उठना चाहिए। एक अंग्रेज कवि ने कहा है—

Early to bed and early to rise.

Makes a man Healthy, Wealthy and Wise.

अर्थात्—जो व्यक्ति प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठता है, वह स्वस्थ, धनवान् व बुद्धिमान् होता है।

प्रातः उठने से शरीर स्वस्थ, सुखी, निरोग तथा फुर्तीला बनता है। चित्त प्रसन्न रहता है। आलस्य दूर भागता है। बुद्धि निर्मल तथा कुशाग्र बनती है। उस समय शांति का साम्राज्य होता है। इसलिये सुषुम्ना नाड़ी ब्राह्ममुहूर्त्त में स्वयं ही चलने लगती है तथा सुषुम्ना के चलने के कारण मन में सात्विक वृत्तियों तथा दैवी विचारों का उदय होता है। तामसी तथा राजसी वृत्तियों का शमन होता है। इसीलिए ऋग्वेद में कहा है—

आमिनन्ति दैव्यानि व्रतानि।

"यह उषा काल दिव्य व्रतों को जन्म देने वाली है।"

अतः प्रातःकाल किए गये कार्य थोड़े ही समय में तथा भली प्रकार पूर्ण हो जाते हैं। कठिन से कठिन विषय भी प्रातः विचार करने से शीघ्र हृदयंगम हो जाते हैं। ईश्वर-भक्ति, आत्म-चिन्तन, ध्यान, धारणा तथा स्वाध्याय करने का भी यही एक सर्वोत्तम समय है। प्रातः शीघ्र न उठने से शरीर में आलस्य तथा भारीपन आ जाता है। अपान वायु विकृत हो जाती है, पेट में गुड़गुड़ाहट तथा दर्द होने लगता है। शौच खुलकर नहीं आता। प्रातः न उठने वाला मनुष्य आलसी, दरिद्री, हठी, दुराग्रही तथा कलुषित विचारों वाला बन जाता है।

अतः इन सब शारीरिक और मानसिक रोगों तथा बुराइयों से बचने के लिये और अपने शरीर को सदा स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाये रखने के लिए प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में उठना परमावश्यक है। इसीलिए यदि आप चाहते हैं कि हम कभी बीमार न पड़ें, सदा स्वस्थ, निरोग और बलवान् बने रहें और यह गार्हस्थ्य जीवन सदा सुख और शांतिमय बीते। यदि आपकी यह प्रबल अभिलाषा है कि हम अकाल में ही काल के ग्रास न बनकर चिरायु हों और अपना स्वार्थ व परमार्थ दोनों सरलतापूर्वक सम्पन्न कर सकें तथा इस अमूल्य मनुष्य जीवनरूपी सुन्दर वृक्ष के धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, इन चारों फलों को प्राप्त कर सकें तो देर से उठने की बुरी टेव को एकदम छोड़कर सदा प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में ही उठने का अभ्यास कीजिए।

उषःपान

प्रातःकाल उठकर पाव या आधापाव के लगभग जल को नासिका द्वारा पान करना, शरीर स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभकारी है। इसे 'उषःपान' कहते हैं। उषःपान की महिमा योग और आयुर्वेद दोनों में मुक्त कंठ से गायी गई है।

प्रातः उषःपान करने से मल विसर्जन भी खुलकर होता है। कब्जी दूर होती है। यदि उषःपान से पूर्व योग की जलनेति क्रिया कर ली जाय तो और भी अधिक लाभ होता है।

मल-विसर्जन

मल विसर्जनार्थ सदा सूर्योदय से पहिले तथा बाहर जंगल या सुविधानुसार जो भी एकान्त स्थान हो, जाना चाहिये। प्रातः सूर्योदय से पूर्व शौच से निवृत्त होने से शरीर निरोग तथा आयु की वृद्धि होती है। सुश्रुत में लिखा है—

आयुष्यमुषसि प्रोक्तं मलादीनां विसर्जनम्।

अर्थात्—"प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व मलादिकों का त्याग करना दीर्घ आयु प्रदान करने वाला है।" दाहिने पैर पर जोर देकर बैठने से शौच खुलकर आता है। यदि मल विसर्जन करते समय दांतों को भींचकर बैठा जाये तो दांतों के रोग नहीं होते। कई लोग किसी अन्य आवश्यक कार्य के आ जाने पर मलमूत्र के वेग को रोक लेते हैं। ऐसा करना शरीर के लिए महान् हानिकारक है।

मलमूत्र के वेग को कभी भी नहीं रोकना चाहिए। क्योंकि इन वेगों के रोकने से कई प्रकार के भयंकर रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसीलिए शरीर-शास्त्रियों ने लिखा है--

रोगाः सर्वेऽपि जायन्ते वेगोद्दीरण-धारणैः।

अर्थात्—"वेगों की गति को धारण करने से शरीर में सब प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं।"

प्रातःभ्रमण

जैसा कि पहिले लिखा जा चुका है, प्रातःकाल का समय शारीरिक, मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों के विकास के लिए अत्यन्त गुणकारी है और आत्मा के लिए शांति तथा आनन्द प्रदान करने वाला है। इस समय की मन्द-मन्द चलती हुई अत्यन्त शुद्ध, सुगन्धित तथा लाभप्रद पवन में प्राण-दायिनी जीवनी शक्ति का बहुत अधिक भाग रहता है। अतः वह मनुष्य में विशेषकर नव-जीवन का संचार करने वाली बड़ी ही सुहावनी और शारीरिक शक्ति तथा आरोग्यता के लिए अमृत के समान है। चन्द्रमा तथा अन्य नक्षत्र आदि प्रभु की दिव्य विभूतियां रात भर पृथ्वी तल पर अमृत बरसाती रहती हैं तथा प्रातःकाल सूर्य में से ऊषः नाम की एक किरण निकलती है, जो कि जगती में अमृत का संचार करती है।

इसीलिए प्रभात समय को अमृत वेला तथा उषःकाल कहा गया है। प्रातःकाल इन्हीं दैवी शक्तियों के अमृत को लेकर वायु मन्द-मन्द गति से चलती है। उस अमृतमयी वायु के शरीर में लगने से शरीर में तेज, बल, आरोग्यता, स्फूर्ति और उत्साह का संचार होता है। रक्त शुद्ध और लाल बनकर शरीर में तेजी से भ्रमण करता है, जिससे रक्त सम्बन्धी रोगों का नाश होता है। प्रातःकाल की शुद्ध वायु रोगों की अचूक तथा अमोघ औषधि है। अतः प्रातः भ्रमण करने से सब रोगों की निवृत्ति तथा आरोग्यता की वृद्धि होती है। जठराग्नि प्रदीप्त होकर भोजन भली प्रकार पचता है। बद्धकोष्ठता दूर होती है। नियमानुसार भ्रमण करने से पैरों, घुटनों, जांघों और कमर में मजबूती तथा सौन्दर्य के बढ़ने के साथ-साथ मज्जाओं, गर्दन और मेरुदण्ड की हड्डियों में बल, शक्ति तथा मांस-

पेशियों में दृढ़ता आती है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है।

नियमपूर्वक भ्रमण करने वाला पुरुष सदा नवयुवक बना रहता है क्योंकि इससे जीवन शक्ति बढ़ती और वृद्धावस्था के कोषों के परमाणु दूर होकर शरीर के प्रत्येक अंग में जीवनीय शक्ति, स्फूर्ति, दृढ़ता तथा स्वास्थ्यप्रद गति का संचार होता है। शरीर की धातुएं और उपधातुएं शुद्ध और पुष्ट होती हैं। मनोद्वेग; आलस्य, चिन्ता, दुर्बलता, भय और रोग आदि का नाश होता है। मनुष्य बलवान्, रूपवान व बुद्धिमान बन जाता है। प्रातः भ्रमण करने से न केवल शारीरिक प्रत्युत् मानसिक तथा बौद्धिक शक्तियों का भी विकास होता है। अतः प्रतिदिन भ्रमण करना स्वास्थ्याभिलाषी जनों को अपनी दिनचर्या का एक आवश्यक अंग बना लेना चाहिए।

तेल मालिश

शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाने के लिए तेल की मालिश परमोपयोगी एवं अत्यावश्यक है। इससे शरीर में जीवन शक्ति का संचार होता है। शरीर में तेल लगाने से वह शीघ्र ही रोम कूपों द्वारा शरीर के भीतर पहुंच जाता है। मालिश करने से शरीर के अंग-प्रत्यंग पुष्ट, बलवान्, सुन्दर, सुडौल तथा सुगठित बन जाते हैं। शरीर हर प्रकार से परिश्रम करने योग्य बन जाता है। वृद्धावस्था, शारीरिक-व्यथा तथा रुकावट दूर होते हैं। निद्रा गहरी आती है। शरीर का अंग निखर कर स्वर्ण के समान चमकीला, तेजस्वी तथा सुन्दर बन जाता है। नेत्रों की ज्योति बढ़ती है। शरीर की त्वचा नरम, लचकीली; चमकदार तथा चिकनी हो जाती है। फोड़ा, फुंसी आदि चर्म-विकार नहीं होते।

अतः यदि आप पुनर्यौवन के लिए कोई वैज्ञानिक उपचार चाहते हैं तो नित्य प्रति तेल की मालिश किया करें। दुबले और कमजोर मनुष्य को मोटा और बलवान् तथा मोटे व बेडोल मनुष्य को सुन्दर और सुडोल बनाने का मालिश ही एकमात्र सरल तथा सर्वोत्तम उपाय है।

दन्त धावन

शरीर स्वास्थ्य के लिए दांतों को सदा स्वच्छ रखना परम आवश्यक है।

दांतों को स्वच्छ न रखने से जहां कीड़ा लगना, मसूड़े फूलना, दर्द होना, पायोरिया आदि दांतों के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, वहां दांतों का रोगी दांतों से भोजन भली प्रकार न चबाने के कारण तथा भोजन पचाने में सहायक, स्वास्थ्यप्रद दांतों का लुआव भोजन में न मिलने के कारण भोजन भी भली प्रकार नहीं पचता। अतः प्रतिदिन प्रातःकाल दन्तधावन द्वारा दांतों तथा जिह्वा को साफ रखना परम आवश्यक है। नियमपूर्वक दातून करने से मुख की दुर्गन्धि; दांतों का मैल और कफ की निवृत्ति होती है। अन्न में रुचि तथा चित्त में प्रसन्नता आती है।

दांतों के रोग उत्पन्न नहीं होते और वृद्धावस्था तक दांत मजबूत तथा सुदृढ़ बने रहते हैं। दन्त धावन के लिए नीम, बबूल, करंज आदि का दातून बहुत उपयोगी है। हम पाठकों के लाभार्थ एक अत्यन्त उपयोगी, सुन्दर तथा प्रयोग यहां लिखते हैं। एक हिस्सा सोंठ, दो हिस्सा नमक को बहुत बारीक पीस छान कर रख लें और प्रातःकाल थोड़ा सा उसमें से हथेली पर लेकर उसमें चन्द बूंदें शुद्ध सरसों के तेल की डालकर मिला लें और उससे दातून करें। ऐसा करने से जहां दांत शुद्ध, साफ और चमकीले हो जाते हैं, वहां दांतों का कोई रोग पास नहीं फटकता।

स्नान

शरीर को स्वच्छ, पवित्र व निरोग रखने के लिए प्रतिदिन स्नान का करना परम आवश्यक है। स्नान करने से शरीर स्वच्छ हो जाता है। रोम छिद्र खुल जाते हैं। रात्रि को निद्रा के समय जो शरीर में उष्णता तथा आलस्य बढ़ जाता है अथवा दिन भर के परिश्रम से जो शरीर और मष्तिष्क में गरमी व थकावट आ जाती है, स्नान करने से ये सब दूर हो जाते हैं। जल वास्तव में बल, शक्ति, आरोग्यता आदि दैवी शक्तियों का भण्डार है। अतः स्नान; पान आदि में इसका यथायोग्य उपयोग करने से शरीर के सब रोगों ओर निर्बलताओं को दूर कर मनुष्य को अमृत अर्थात् दीर्घजीवी बना देता है। इसी लिए अथर्ववेद में कहा है—

अप्स्वन्तरममृतमप्सु भेषजम्

अर्थात्—जल के अन्दर सब तरह के रोगों को दूर करने की औषधि तथा

अमृत विद्यमान है। वेद तो यहां तक कहता है—

भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपः।

अर्थात्—जल सम्पूर्ण औषधियों की परम औषधी है। अतः प्रातः ठण्डे जल से स्नान करना अपने अन्दर अमृत का संचार करना है। स्नान करने से जहां शारीरिक लाभ होते हैं, वहां चित्त में भी शांति तथा सत्वगुण की वृद्धि होती है, जिससे ईश्वरोपासना, सत्संग, स्वाध्याय आदि में मन भली प्रकार लगता है। स्नान से शरीर में अपूर्व बल तथा शक्ति का संचार होता है और दूषित द्रव्य शरीर से वाहर निकल जाते हैं। स्नान से तेज, वल, आरोग्यता और स्फूर्ति की वृद्धि होती है। पाचन शक्ति तीव्र होती है। बुद्धिमानों का कहना है, जो नित्य नियमपूर्वक प्रातः स्नान करता है उसे निम्न गुणों की अवश्य प्राप्ति होती है—

(१) रूप (२) कान्ति (३) तेज (४) बल (५) पवित्रता (६) दीर्घ आयु (७) आरोग्यता (८) स्थिरता अर्थात् चंचलता का नाश (९) स्वप्न अर्थात् अधिक निद्रा की निवृत्ति (१०) यश (११) कीर्ति (१२) पवित्रता और (१३) सूक्ष्म मेधा वुद्धि।

हृदय और फेफड़े आदि शरीर के कोमल अंग दृढ़ होते हैं। शरीर में आलस्य नहीं रहता। मन की मलीनता दूर होती है। चित्त सदा प्रसन्न रहता है। काम करने में उत्साह होता है। स्नान करने से भीतर की स्वाभाविक ऊष्णता भीतर ही रह जाने से जठराग्नि प्रदीप्त होती है। रक्त का प्रवाह ठीक होता है। वीर्य, आयु, शक्ति तथा पुरुषार्थ की वृद्धि होती है। ज्ञान तन्तुओं में जागृति तथा नव चैतन्य का संचार होता है।

अतः हमें प्रातः स्नान में कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिए। स्नान गर्मी में ठण्डे जल से तथा सर्दियों में ताजा किंवा किञ्चित् उष्ण जल से करना चाहिए।

प्रभु भक्ति

प्रभु भक्ति का वर्णन हम मोक्ष प्रकरण में कर चुके हैं। थोड़ा दिग्दर्शन प्रसंगवश यहां भी कर देना उचित समझते हैं।

स्नान के पश्चात् व्यायाम करके (जिसका कि आगे पृथक्‌वर्णन आयेगा)

प्रभु का चिन्तन करना भीम नुष्य को अपनी दिनचर्या का एक मुख्य अंग बना लेना चाहिए। प्रभु भक्ति आत्मिक भोजन तो है ही, किन्तु इससे शरीर भी स्वस्थ; बलवान् और निरोग बनता है। उस सर्वशक्तिमान् का एकाग्र चित्त होकर चिन्तन करने से साधक को शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक शक्ति अवश्य प्राप्त होगी। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं। ईश्वरभक्ति के द्वारा जो मनुष्य को एक अलौकिक आनन्द और अद्‌भुत शान्ति प्राप्त होती है, उसका शरीर के ऊपर भी बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। शरीर की सब धातुओं-उपधातुओं की विषमता दूर होकर उसमें समता व शक्ति का संचार होता है। संत, महात्मा तथा योगी जनों के स्वस्थ, बलवान् और दीर्घजीवी होने का ईश्वरभक्ति ही एक कारण है। संत कबीर ने "मैं तो अपने प्रभु को रिझाऊँ" अपने इस भजन में कहा है—

औषध खाऊं न बूटी खाऊं, न कोई वैद्य बुलाऊं।
एक ही वैद्य मिलो अविनाशी, वाही को नबज दिखाऊं।।

ईश्वर भक्ति जहां शारीरिक उन्नति के लिए आवश्यक है, वहां आत्म-कल्याण के लिए भी परम आवश्यक है। जिस प्रकार भोजन के बिना शरीर का काम नहीं चल सकता, उसी प्रकार बिना ईश्वर भक्ति आत्मा का काम भी नहीं चल सकता, सच पूछा जाए तो शरीर के लिए भोजन इतना आवश्यक नहीं, जितना आत्मा के लिए ईश्वर भक्ति। इसीलिए ईश्वर भक्ति को आत्मिक खुराक अर्थात् भोजन कहा गया है। ईश्वर भक्ति से ही अज्ञान तिमिर का नाश होकर आत्मा से ज्ञान ज्योति का प्रकाश होता है। ईश्वर भक्ति के बल से ही मनुष्य संसार में अपनी सब शुभ कामनायें पूर्ण कर सकता है।

प्रभु भक्ति से रोग, शोक, संताप, दरिद्रता, चिन्ता, निर्बलता आदि जितने भी क्लेश हैं, वे सब दूर हो जाते हैं। प्रभु का अनन्य भक्त पर्वत के समान भारी से भारी आपत्तियों और संकटों में भी नहीं घबराता। प्रभु भक्तिहीन मनुष्य न तो सच्ची शांति और न आनन्द का अनुभव कर सकता है और न ही प्रभु के इस परम सुन्दर और सुखमय संसार का सच्चा रसास्वादन कर सकता है। अतः आत्मकल्याणाऽभिलाषी जनों को प्रतिदिन प्रभु का चिन्तन अवश्य करना चाहिए।

आशा है स्वास्थ्य-प्रेमी सज्जन इस आदर्श दिनचर्या के अनुसार अपने जीवन को तोल कर, उसे सुखमय तथा आदर्श जीवन बनाने का प्रयत्न करेंगे।

व्यायाम

जैसे शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाए रखने के लिए पौष्टिक तथा सात्विक भोजन की आवश्यकता है, इससे भी कहीं अधिक प्रतिदिन नियमपूर्वक व्यायाय करने की आवश्यकता है। नियमपूर्वक व्यायाम करने से खाया हुआ भोजन भली प्रकार पच जाता है तथा शरीर का अंग बन जाता है। मन्दाग्नि, बद्धकोष्ठ आदि बीमारियां दूर हो जाती हैं। शरीर सुन्दर, सुडौल तथा कांतिमान् बन जाता है। वैसे तो अनेक प्रकार के व्यायाम प्रचलित हैं—जैसे कुश्ती, दण्ड, बैठक, कबड्डी, हाकी, दौड़, फुटबॉल आदि। पाठक अपनी रुचि और सामर्थ्य के अनुसार इनमें से कोई भी व्यायाम करके लाभ उठा सकते हैं किन्तु इन सब प्रकार के व्यायामों में—

(अ) यौगिक व्यायाम

सर्वोत्तम है। यौगिक व्यायाम के द्वारा शरीर के सब प्रकार के रोगों का नाश हो जाता है। शरीर में आरोग्य, बल तथा शक्ति का संचार होता है। शरीर हलका, फुर्तीला तथा लचकदार बन जाता है। यह व्यायाम शरीर के व्यर्थ के मोटेपन तथा पतलेपन को दूर कर, उसे अपनी असली हालत में ला देता है। योग के आसन, प्राणायाम आदि क्रियाओं से जहां शरीर को आशातीत लाभ होता है, वहां इसके द्वारा मन, बुद्धि तथा मस्तिष्क का भी विकास होता है। यौगिक प्राणायाम इतने सरल तथा सुगम हैं कि इसे सभी छोटे, बड़े, स्त्री, पुरुष, बालक-बालिकाएं कर सकती हैं।

शरीर को स्वस्थ तथा बलवान् बनाने में आहार और व्यवहार इन दो साधनों का वर्णन हो चुका है। शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाने का तीसरा साधन है—

(३) सदाचार

अर्थात्—सत्+आचार। उत्तम आहार और योग्य व्यवहार के द्वारा जिस बल-वीर्य की हमारे शरीर में वृद्धि हुई है। उस बल, वीर्य की सत् अर्थात् सत्ता

को अपने शरीर में सुरक्षित तथा स्थिर बनाए रखने के लिए जो आचार अर्थात् आचरण किया जाता है, उसका नाम है—"सदाचार"।

हमने आहार आदि के द्वारा अपने शरीर में बल, वीर्य की वृद्धि तो कर ली किन्तु यदि उस बल, वीर्य को हम अपने शरीर में सुरक्षित न रख सकें, अर्थात् बुरी सोहबत (कुसंग) में फंसकर अनेक अप्राकृतिक साधनों तथा दुर्व्यसनों के द्वारा बल, वीर्य को नष्ट कर दिया तो भी हमारा शरीर स्वस्थ और बलवान् नहीं बन सकता।

जैसा कि एक मनुष्य की ग्यारह सौ रुपये मासिक आय है। यदि वह ग्यारह सौ के ग्यारह सौ ही प्रति मास खर्च कर दे तो वह कदापि धनवान् नहीं बन सकता। अथवा जैसे एक तालाब में पानी आने का भी मार्ग है और जाने का भी। वह तालाब कभी भी पानी से भरा नहीं रह सकता। इसी प्रकार हमारे शरीर में बल, वीर्य के प्राप्त होने का मार्ग होते हुए भी यदि हमने उसके खारिज करने का भी अपनी कुटेवों द्वारा मार्ग बना लिया है तो भी हमारा शरीर स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग नहीं बन सकता। अतः आवश्यकता है कि हम अपने शरीर में से बल, वीर्य के निकलने के मार्ग को रोकें और उसका एकमात्र उपाय है—

सदाचार

(१) ब्रह्मचर्य पालन। (२) उत्तम ग्रन्थों का स्वाध्याय। (३) सत् पुरुषों का संग। (४) ईश्वरभक्ति। (५) प्राणायाम। (६) परोपकार। (७) सादापन। (८) उच्च तथा पवित्र विचार। (९) पवित्रता। (१०) प्रसन्नता। (११) आत्म निरीक्षण आदि गुणों का नाम ही सदाचार है।

इनके पालन से मनुष्य संयमी तथा सदाचारी बन जाता है और उसके विचार हमेशा उच्च तथा पवित्र रहते हैं, उसके मन में गन्दे तथा कलुषित विचारों को स्थान ही नहीं मिलता। जब मनुष्य के विचार कलुषित तथा गन्दे नहीं हुआ करते तो वह उसके वशीभूत होकर कोई भी ऐसा कुकर्म नहीं करता; जिससे उसके शारीरिक तथा मानसिक व आत्मिक बल का ह्रास हो।

इसीलिए हमारे ऋषियों ने आचार को परम धर्म के नाम से पुकारा है;

क्योंकि आचार ही मनुष्य के शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक बल के धारण करने का परम साधन है। जीवन को उच्च, महान् तथा सुखमय बनाने की क्षमता केवल सदाचार में ही है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम मन, वचन तथा कर्म से सदाचारमय जीवन का निर्माण करें। जो मनुष्य अपने जीवन में सदाचार को धारण नहीं करता, वह जीवन के सुखों अर्थात् स्वास्थ्य, सौन्दर्य; दीर्घ आयु तथा यौवन के सुखों का कदापि आस्वादन नहीं कर सकता।

संसार में वे ही महापुरुष कहलाते हैं कि जिन्होंने सदाचारी बनकर अपने मानसिक विकारों पर पूर्ण विजय प्राप्त की है। जो अपने विचारों और भावनाओं पर शासन करते हैं, जो चुम्बक बनकर अपने संस्कारों और संकल्पों के अनुसार अभीष्ठ पदार्थों को अपनी ओर आकर्षित कर सकते हैं। जिन्हें अपने शरीर और मानसिक वृत्तियों पर पूर्ण अधिकार है और जो बाह्य क्षणिक पदार्थों में आनन्द ढूंढने के स्थान में अपने अन्तंमन की सृष्टि में ही आनन्द प्राप्त करते हैं, उनके मन में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि विकार, भय, शंका और लज्जा आदि विकल्प, दरिद्रता, रोग और क्लेश आदि की भयजनक कल्पनाएं, ईर्ष्या व द्वेष आदि के दुर्भाव और अशान्त करने वाली चित्त वृत्तियां स्थान ही नहीं पातीं। अतः शरीर को स्वस्थ तथा निरोग बनाने के लिए जहां हम अपने आहार तथा व्यवहार को ठीक बनाएं, वहां आचारवान् भी बनें।

विविध रोगों की अनुभूत चिकित्सा

शरीर को स्वस्थ, बलवान् तथा निरोग बनाने के साधन—आहार, व्यवहार तथा आचार—का संक्षिप्त वर्णन हमने प्रिय पाठकों के सम्मुख रखा। अपने गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने के अभिलाषी स्त्री, पुरुष, बालक, बालिकाएं यदि इनके अनुसार चलेंगे तो वे सदा स्वस्थ और बलवान् बने रहेंगे तथा सब प्रकार के रोगों से बचे रहेंगे। किन्तु यदि आहार, व्यवहार की अनियमितता अथवा ऋतुपरिवर्तन या जलवायु परिवर्तन आदि से परिवार में किसी प्रकार रोब हो भी जाए, जो कि हो जाना सम्भव है तो हम उसके निवारणार्थ विविध रोगों के अनुभवी वैद्यों में शतशः अनुभूत (पेटेन्ट) नुस्खों को भी नीचे दे रहे हैं जिससे घर में कोई भी रोग हो जाने पर पाठक, पाठिकाएं स्वयं उसकी चिकित्सा कर सकें।

उदर रोग-चिकित्सा

१—पेट के सब विकारों पर अनुभूत चूर्ण

काला नमक २½ तोला, सेन्धा नमक २½ तोला, नौसादर टीकरी वाला ६ माशे, अकरकरा ६ माशे, बड़ी इलायची १ तोला, काली मिर्च १ तोला, सोंठ ६ माशे, सफेद जीरा २ तोला, काला जीरा १½ तोला, नींबू का सत ६ माशे; पीपरमेंट १ माशा, हींग १ माशा। प्रथम हींग और जीरा को थोड़ा भून कर फिर सब चीजों को बारीक कूट छान कर चूर्ण बना लो। यह चूर्ण पेट के समस्त रोगों के लिए अत्यन्त लाभकारी है।

२—पाचक चूर्ण

सेन्धा नमक ७½ तोला, काला नमक २½ तोला, सफेद मिर्च २½ तोला; भुनी हींग ३ माशा, पीपरमेंट के फूल ३ माशा, जीरा सफेद भुना हुआ २ तोला; इन सबको खूब बारीक कूट छान लें, बस चूर्ण तैयार है। यह चूर्ण भूख को खूब बढ़ाता है तथा पेट के सब विकारों को दूर करता है।

३—अतिसार (दस्तों) पर अनुभूत योग

शुद्ध पारा, शुद्ध गन्धक, अफीम मोचरस, लौंग, इन्द्र जौ, बिलकत्थ, नागर मोथा, बाय के फूल इन सबको सम भाग लें। प्रथम पारे और गन्धक को मिला कर एक-दो दिन तक खूब खरल में घोटकर काली कजली बना लें। फिर अफीम डालकर खूब मिला लें। फिर सब औषधियों को बारीक पीसकर और मिलाकर इतना खरल करें कि सब औषधियां काली हो जाएं। रंग जितना काला होगा उतनी ही औषधि अधिक प्रभाव करेगी।

मात्रा—१ वर्ष के बालक को १ चावल, २ वर्ष के बालक को २ चावल; ८ वर्ष के बालक को ½ रत्ती, १२ से १६ वर्ष तक के बालक को १ रत्ती से ३ रत्ती तक आयु तथा बलानुसार थोड़ा सा अनारदाना पानी में घोल कर तथा छानकर, उस जल से आवश्यकतानुसार एक, दो या तीन बार दिन में लेवें।

यह औषधि हर प्रकार के दस्तों को लाभ करती है। संग्रहणी तक भी इससे दूर हो जाती है। हैजे के दस्तों व कै में भी एक-दो मात्रा देने से दस्त और कै दोनों बन्द हो जाते हैं।

४—पेट दर्द की अनुभूत गोली

आक की जड़ के छिलके ४ तोले, काली मिर्च ४ तोला—दोनों को बारीक पीसकर अदरक के रस में एक पहर तक खरल करें। फिर चार-चार रत्ती की गोली बनाएं। गर्म जल से सेवन करें। इस गोली के प्रयोग से कैसा भी पेट दर्द होगा, बन्द हो जाएगा।

५—"संग्रहणी" की अनुभूत गोली

आधा पाव शुद्ध कुचला को सवा तोला घृत में अच्छी प्रकार से सेकें। जब कुचले का रंग काला पड़ जाए और वह खस्ता होकर टूटने लगे, तब अग्नि पर से उतार कर उसे पीस लें। उसमें करंग की गिरी, अजवायन, छोटी अतीस प्रत्येक आधी छटांक डालकर बारीक पीस छानकर जल डाल काली मिर्च के बराबर गोलियां बना लें। दोनों समय एक-एक गोली जल से खावें। बलवान् पुरुष दिन में तीन गोली भी खा सकता है। अत्यन्त कमजोर को आधी-आधी गोली ही दें। इससे असाध्य संग्रहणी भी दूर हो जाती है। भोजन —मूंग की धुली दाल तथा फुलका खायें।

६—पेट दर्द तथा सब प्रकार के शूलों पर एक साधारण परन्तु रामबाण नुस्खा

अमलतास की कोमल-कोमल पाव भर फलियों के एक-एक अंगुल के टुकड़े करके एक सेर गन्ने के रस के सिरके में डालकर रख दें। पन्द्रह दिन पड़े रहने के पश्चात् पेट दर्द अथवा शूल की अवस्था में चार टुकड़े निकाल चबाकर खा जाएं। पेट दर्द किंवा उदरशूल बिल्कुल जाता रहेगा।

७—मुख की अरुचि को दूर करने का एक अद्भुत योग

अनारदाना १० तोला, काली मिर्च ६ माशा, सौंफ १ तोला, इलायची बड़ी २ तोला, देशी खांड १६ तोला; दालचीनी ६ माशा, वंशलोचन १ तोला; आंवला १ तोला सबको कूट कपड़ छानकर चूर्ण बना लें। इस चूर्ण का सेवन करने से अरुचि कोसों दूर भागती है। मुख का स्वाद बहुत अच्छा हो जाता है। जठराग्नि प्रदीप्त होकर भूख लगती है।

८—बद्धकोष्ठ (कब्जी) तथा उदावर्त्त की अकसीर दवा

निशोथ १ तोला, छोटी पीपल २ तोले, मिश्री ४ तोले इन सबको कूट

छानकर रख दें तथा शहद में एक तोला डालकर नित्यप्रति खाने से उदावर्त रोग दूर होता है। दस्त साफ आता है। हवा खुलती है और चित्त प्रसन्न होता है।

९—पतले दस्तों की सस्ती औषध

सफेद जीरे को तवे पर भून कर और पीस कर मीठे दही में मिला कर खाने से पतले दस्त बन्द होकर दस्त बन्धकर आता है।

१०—आंव के दस्तों पर अद्‌भुत प्रयोग

आधा रत्ती अफीम के ऊपर खाने का चूना लपेट कर दिन में दो-तीन बार निगलवा दो। दो-तीन दिन में आंव के दस्त अर्थात् पेचिश ठीक हो जाएगी।

११—दस्त बन्द करने का एक अजीब टोटका

थोड़े से आंवले लेकर घी में पीस लो और बीमार की नाभि के चारों ओर दीवार सी बना दो तथा उसके बीच अदरक का रस भर दो और थोड़ी देर तक रहने दो। इससे पानी के समान पतले दस्त भी बन्द हो जायेंगे।

१२—पेट के सर्व रोग नाशक चूर्ण

हींग १ भाग, बच २ भाग, पीपल ३ भाग, सोंठ ४ भाग, अजवायन ५ भाग, हरड़ ६ भाग, चीता ७ भाग, मीठाकूट ८ भाग—इन सबको कूट, पीस, छानकर शीशी में भर दो। इसे दही के पानी अथवा कवोष्ण जल के साथ सेवन करने से उदावर्त, अजीर्ण, तिल्ली तथा पेट के अन्य सब रोग दूर हो जाते हैं। बवासीर भी इसके सेवन से चला जाता है। अग्नि प्रदीप्त होती है तथा गोले के दर्द को भी दूर करता है।

१३—जलोदर पर अचूक प्रयोग

साफ कुटकी आधी छटांक लेकर दो सेर पानी में डाल धीमी आंच पर पकाएं। जब जल पाव भर रह जाए, उतारकर छान लें। प्रतिदिन चार बार एक छटांक दें। यह काढ़ा कुछ दिन तक लगातार पिलाने से सारा पानी पेशाब और दस्त के मार्ग से निकल जायेगा। सूजन घटती जायेगी तथा शरीर स्वस्थ और निरोग बन जायेगा।

१४—अजीर्ण, हैजा, सर्प विष तथा सन्निपात की एक ही अद्भुत औषध

वायविडंग, सोंठ, पीपल, हरड़, चीता (चित्रा), बहेड़ा, वच, गुरच, शुद्ध भिलावा, शुद्ध विष समभाग लेकर कूट, पीस, छान कर एक दिन गोमूत्र में घोटें। फिर रत्ती भर की गोलियां बनाकर रख दें। अजीर्ण में अदरक के रस के साथ १ गोली, हैजे में दो गोली, सांप काटे में ३ गोली तथा सन्निपात में ४ गोली दें।

१५—पेट शूल का बहुत सस्ता प्रयोग

उड़द की दाल को चिलम में रखकर पियो। शूल तत्काल जाता रहेगा।

१६—बद्धकोष्ठता (कब्जी) का एक उपयोगी सरल योग

बीज निकला मुनक्का ८ तोला, गुलकन्द ८ तोला, स्नाय के पत्ते ५ तोला, सेन्धा नमक २ तोला, सेका हुआ जीरा ५ तोला—इन सबको बारीक कूटकर ६-६ माशे की गोलियां बना लें। एक गोली रात को सोते समय गर्म जल से ले लिया करें।

वीर्य विकार चिकित्सा

वीर्य विकार की कुछ लाभप्रद औषधियां हम पहिले 'काम' प्रकरण में लिख आये हैं। कुछ और अत्यन्त उपयोगी औषधियां नीचे दे रहे हैं।

१—प्रमेह की अनुभूत औषध

ताल मखाना, सफेद मूसली, बला के बीज तथा शक्कर समभाग लेकर चूर्ण तैयार कर लें। प्रातः-सायं चार से आठ माशा तक गाय के दूध के साथ लें। इससे धातु का बहना बन्द हो जाता है।

२—शीघ्रपतन नाशक तथा वीर्य पुष्टिकर गोलियां

अकरकरा, सोंठ, लोंग, केसर, छोटी पीपर, जायफल, जावित्री, सफेद चंदन ये सब एक-एक तोला, शुद्ध अफीम ४ तोला इन सब को बारीक पीसकर ५-५ रत्ती की गोलियां बना लें। १-१ गोली सायं-प्रातः शहद के साथ लें। इससे वीर्य पुष्ट होकर शीघ्रपतन नष्ट होता है।

३—सोजाक का अनुभूत काढ़ा

शीतल चीनी २ तोले लेकर उसे जौं के साथ कूट कर लो। फिर उसे आधा

सेर पानी में औटाओ। जब छटांक भर पानी शेष रह जाये उसे छानकर ठण्डा कर लो और उसमें १०-१२ बूंद बढ़िया चन्दन का तेल मिलाकर पी लो। इस प्रकार कुछ दिन लगातार और भोजन में गेहुं की रोटी, घी, शक्कर के साथ खाने से सोजाक बिल्कुल चला जाता है !

४—वीर्य पुष्टि का सरल उपाय

मोचरस को पीस, छानकर रख दो। इसमें से ६ माशे चूर्ण को मिस्री में मिलाकर प्रातः खाओ और ऊपर से पाव भर गाय का दूध पी लो। इससे वीर्य खूब पुष्ट होता है और स्वप्नदोष दूर होता है।

५—सब प्रकार के वीर्य विकार का बहुत सरल नुस्खा

बाराही कन्द के चूर्ण में बराबर मिस्री कूटकर मिला लें। प्रतिदिन सायं-प्रातः ६ माशे लेकर ऊपर धारोष्ण गाय का दूध पी लें। इससे सब प्रकार के वीर्य दोष दूर हो जायेंगे।

६—सुजाक का एक बहुत ही सरल प्रयोग

एक छटाक मुण्डी के अर्क में ६ माशा जवाखार मिला दिन में दो-तीन बार देने से चाहे जैसा ही पुराना सोजाक हो, चला जाता है।

७—वीर्य विकार आदि अनेक कठिन रोगों पर एक ही अचूक प्रयोग

असगन्ध को कूटकर कपड़े में छान लो। इस चूर्ण को इसके छटे भाग गौ के घृत में मिलाकर चीनी या कांच के स्वच्छ पात्र में डालकर रख दो। इसमें से डेढ़ से तीन माशा तक खाकर ऊपर से मिस्री मिला गर्म दूध पी लो। इस अद्भुत औषध के सेवन से समस्त वायु विकार, धातु विकार, सब प्रकार के दर्द, वातज्वर, प्रसूति पीड़ा, गठिया, पसली का दर्द, सिर दर्द और पेट के समस्त रोग दूर होते हैं।

८—असगन्ध का एक और सुन्दर तथा सरल प्रयोग

जिन सज्जनों को ऊपर के नुस्खे के लेने में कुछ अरुचि मालूम हो, उन्हें निम्न प्रयोग लेना चाहिए। घी में भुना हुआ बबूल का गोन्द एक पाव में नागोरी असगन्ध ½ पाव कूट, छानकर रख लो। तीन से छः माशा तक इसे

शहद में मिलाकर प्रतिदिन चाट लो। इससे समस्त वीर्य विकार नष्ट हो जाते है।

६—सोजाक की पिचकारी

परमैंगनेट पोटाश (कुएं में डालने की दवा) १ रत्ती, १६ छटांक पानी में घोल कर डाल दें। इसकी पिचकारी देने पर पुराना सुजाक भी अच्छा हो जाता है और यदि साथ में खाने की दवाई भी लें तो फिर अच्छा होने में सन्देह ही नहीं।

शरीर में बल बढ़ाने के प्रयोग

१—क्षीणवीर्य को वीर्यवान् बनाने का सरल प्रयोग

मुलहटी का चूर्ण ६ माशे, घृत ६ माशे और शहद तीन माशे, इन सबको मिलाकर चाट लें और ऊपर से गाय का दूध मिश्री मिलाकर पी लें। इस औषध का लगातार कुछ दिन सेवन करने से क्षीणवीर्य भी वीर्यवान् हो जाता है।

२—नामर्द को भी मर्द बनाने वाला गरीबी नुस्खा

सफेद प्याज का रस ८ माशे, अदरक का रस ६ माशे, शहद ४ माशे और घृत ३ माशे, इन चारों को मिलाकर २१ दिन तक सेवन करने में नामर्द भी मर्द हो जाता है।

३—निर्बलता दूर करने का एक सस्ता और अचूक प्रयोग

गिलोय, गोखरू, आंवला तीनों को समभाग लेकर कूट, पीसकर चूर्ण बना लें तथा घी, शक्कर के साथ सेवन करें। इससे वीर्याशय की गर्मी तथा अन्य वीर्याशय सम्बन्धी सभी विकार दूर होते हैं। मूत्र मार्ग, प्रजनन स्थानों के विकार भी नष्ट होते हैं। रोग विशेष से उत्पन्न तथा वृद्धावस्था की निर्बलता भी दूर होकर शरीर में बल तथा शक्ति का संचार होता है।

स्त्री-रोग चिकित्सा

१—प्रदर पर अनुभूत प्रयोग

चीनिया गोंद १ तोला, गोखरू १ तोला, चिरायता १ तोला, गेहूं का निशास्ता भुना हुआ १ तोला, तेलिया सुपारी १ तोला इन सबको कूट, छान कर चूर्ण तैयार करें। एक तोला चूर्ण प्रातः बासी पानी के साथ लें। भोजन

मसूर की दाल तथा चावल लें। इस औषध से प्रदर रोग अवश्य चला जाता है।

२—प्रदर के अति शीघ्र दूर करने का सफल नुस्खा

केले के पत्तों को बारीक पीसकर दूध में उसकी खीर बना कर खाएं। कुछ ही दिनों में प्रदर भाग जायेगा।

३—पेट में मरे हुए बालक को निकालने का अचूक नुस्खा

कपड़े से निचोड़ा हुआ गाय के गोबर का रस ७ तोले, थोड़े से गाय के दूध में मिलाकर स्त्री को पिलाएं। इससे पेट में मरा हुआ बालक बाहर निकल आयेगा।

४—बन्द मासिक धर्म खोलने का अचूक नुसखा

नीम की छाल के छोटे-छोटे टुकड़े ४ माशे, पुराना गुड़ २ तोले, इनको डेढ़ पाव जल में औटाइए, जब तीसरा भाग पानी बाकी रह जाए तब छान कर मासिक धर्म वाली स्त्री को पिलाओ। दस-ग्यारह दिनों में ही मासिक धर्म पुनः शुरू हो जावेगा।

५—प्रसूतिका रोग

दशमूल के काढ़े में पुराना गुड़, घृत तथा पीपर का चूर्ण मिलाकर प्रसूता को पिलाने से प्रथम तो किसी प्रकार का प्रसूति रोग होता ही नहीं। यदि हो भी जाए तो इस काढ़े के पिलाने से शीघ्र ही ठीक हो जाएगा।

६—माता का दूध बढ़ाने का सरल प्रयोग

बिरादीकन्द अथवा शतावरी के चूर्ण को दूध के साथ सेवन करने से दूध खूब बढ़ता है। भोजन दूध भात खाएं।

७—रक्त प्रदर पर बहुत सरल योग

अशोक की छाल का अर्क ठण्डे दूध के साथ एक-एक तोला दिन में तीन बार देने से कितना भी पुराना रक्त प्रदर क्यों न हो, शीघ्र दूर हो जाता है।

बालकों के रोगों की चिकित्सा

१—बच्चों का पेट दर्द, हरे-पीले दस्त तथा कै की उत्तम औषध

अजवायन के कुछ दाने माँ के अथवा बकरी के दूध में पीसकर बालक को

पिलाने से बच्चे के पेट का दर्द; हरे-पीले दस्त तथा कै बन्द हो जाती है।

२—बच्चों का दूध गिराना, भूख न लगना, खांसी होना आदि

आधा पाव पानी में अढ़ाई तोले खाने का चूना और ५ तोले मिश्री पीस कर घोल दो। जब ऊपर पानी नितर आए तो उसे अलग करके रख दो। आठ-दस बूंद बालक को पिला दिया करो इससे उपर्युक्त सब रोग दूर हो जाते हैं।

३—बच्चों के दांत सुगमता से निकलने के प्रयोग

(क) सुहागा को पीसकर तथा शहद में मिलाकर मसूड़ों पर मलने से दांत सुगमता से निकलते हैं।

(ख) कौड़ी की भस्म शहद में मिलाकर मसूड़ों पर मलने से दांत आसानी से निकलते हैं।

४—अत्यन्त लाभप्रद सस्ता बालामृत

एक छटांक पत्थर का बिना बुझा चूना मिट्टी की कोरी हांडी में डालकर ऊपर से आधा सेर जल डाल दो और लकड़ी से हिला दो। २४ घण्टे तक रखे रहने दो, फिर ऊपर का पानी नितार कर उस पानी से दुगनी मिश्री या शक्कर कलईदार देगची में मन्द-मन्द आंच में पकाओ। जब एक तार की चाशनी तैयार हो जाए, उतार कर छान लो, बस, यही बालामृत है। इसमें एक माशा रतनजोत कपड़ छान करके डाल देने से यही लाल रंग का बालामृत बन जाता है। इसकी मात्रा आयु के अनुसार २० बूंद में ६ माशे तक है। एक मात्रा शर्बत सायं-प्रातः दूध में डालकर पिलाने से या यूं ही चटा देने से दूध का न पचना, हरे-पीले दस्त, दूध गिराना, पेट में मरोड़ या दस्त का होना आदि के सब रोग दूर हो जाते हैं। लगातार कुछ दिन सेवन कराने से निर्बल बालक भी हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं।

५—बच्चों की आंखें दुखना

थोड़ा सा धनिये को साफ कपड़े की पोटली में बांधकर ठण्डे जल में छोड़ दो फिर उसे बालक की दुखती आंख पर फेरो। इससे आंखों का दुखना बन्द हो जायेगा।

६—बच्चों की जन्म घुट्टी

सौंफ, सौंफ की जड़, वायविडंग, अमलतास, मकोय, दोनों प्रकार की हरड़ें, बच, देशी अजवायन, जीरा सफेद, गुलाब के फूल, ढाक के बीज, मुन्नका, ऊनाव, पुराना गुड़, सुहागा, काला नमक, इन सबको बराबर-बराबर लेकर इन सबको कूटकर बराबर के पानी में उबाल कर रख दो। फिर प्रातः-सायं एक चम्मच दिया करें।

७—बच्चों के बुखार, खांसी तथा कब्ज के लिए अत्युत्तम घुट्टी

नागर मोथा, हरड़ का छिलका, मुलहटी, गुलबिनफशा, समभाग लेकर कूट लें। खुराक ३ माशा। इस जन्म घुट्टी से उपर्युक्त रोग दूर हो जाते हैं।

८—बच्चों की कब्ज का सरल उपाय

सुहागा भुना २ चावल पीसकर बच्चे की मां के दूध में घोल द।

९--बच्चों की पसली का उत्तम नुस्खा

जवाहर मोहरा खतई १ तोला, इलायची छोटी ६ माशे, मुलहटी का चूर्ण ६ माशे, इन सबको अर्क गुलाब में खरल करके एक-एक रत्ती की गोली बना लें। एक गोली बच्चे की माता के दूध अथवा केवल जल में घिस कर पिलाने से बच्चे का पसली चलना बिल्कुल बन्द हो जाता है।

१०—बच्चे के सूखे की अद्‌भुत औषध

बिल्कुल काली गौ जिसमें सफेद धब्बा बिल्कुल न हो, का सेर भर गोमूत्र लो। उसमें एक तोला काश्मीरी केशर उसी गोमूत्र में मिलाकर बारीक पीस कर उसकी लुगदी बना, उसी गोमूत्र में मिला दें। फिर छानकर साफ शीशी में डालकर रख दें। ऊपर मजबूत डाट लगा दें। प्रातः, दोपहर, शाम को ८ बूंद उतने ही माता के दूध में दें। इस औषध से तीन-चार दिन में ही सूखा रोग भाग जाता है। दवाई सात दिन तक दें। केशर मिला गोमूत्र तीन वर्ष तक भी नहीं बिगड़ता।

११—बच्चों के फोड़े-फुन्सी की औषध

पपड़िया कत्था २ तोले, नीला थोथा १ माशा, इन दोनों को कपड़ छान करके, कोरे बर्तन में डाल, ऊपर पाव भर कच्चा गाय का दूध डाल दो और

एक सींक में रूई लपेट कर उससे हिलाओ। उसी फोहे से पहिले नीम के जल से फोड़े को धो कर दवा लगाएं। सिर आदि कहीं भी फोड़े हों, ठीक हो जायेंगे।

सिर रोग-चिकित्सा

१—आधा शीशी का दर्द

गाय के ताजा घृत को सायं-प्रातः नाक में टपकाएं। इससे आधा शीशी का दर्द जड़ से चला जायेगा।

२—नकसीर

(क) गाय के ताजा घृत को नाक में टपकाने से नकसीर भी बन्द हो जाती है।

(ख) प्रातःकाल उठकर नाक से जल पीने से नकसीर बन्द हो जाती है।

३—सिर दर्द

गाय के दूध में सोंठ घिसकर तथा उसे रूई के फोहे में लगा कर माथे पर रखने से कुछ ही घंटों में कैसा भी दर्द हो, ठीक हो जाता है।

४—सिर दर्द की सस्ती दवा

पीपर और सेन्धा नमक पानी में घिसकर उसकी तीन-चार बूंद नाक में डालने से सिर दर्द शीघ्र ठीक हो जाता है।

५—सिर दर्द का यौगिक इलाज

योग की जलनेति तथा नाक से प्रातः उषःपान करने से भी सिर दर्द ठीक हो जाता है।

चर्म रोग-चिकित्सा

१—समस्त चर्मरोग नाशक अद्भुत प्रयोग

नीम की छाल, चिरायता, हल्दी, दारू हल्दी, लाल चन्दन, हरड़, बहेड़ा, आंवला और अड़ूसे के पत्ते इन सबको एक-एक छटांक लेकर कुटवा लो। फिर पानी डालकर सिल पर भांग की तरह पीसो और लुगदी बना लो। लुगदी में चौगुना काले तिलों का तेल लो, कलईदार कड़ाही में लुगदी रखकर

उसमें तेल डाल दो तथा तेल से चौगुना पानी डाल दो। कड़ाही को धीमी-धीमी आंच पर रखो, जब पानी जल जाए और तेल शेष रह जाए तब उतार कर ठंडा करके छान लो और शीशी में भर दो। यह तेल शरीर के समस्त चर्मरोगों के लिए अमृत के समान है।

२—कुष्ठ रोग का अत्युत्तम नुस्खा

कड़वे नीम के पत्तों का रस गाय के दूध में डालकर सायं-प्रातः पिलाइये और नीम के पत्तों को पानी में डाल, उबालकर उस जल से रोगी को स्नान कराइए और खाने को ऐसा पदार्थ दीजिए, जो खून खराब करने वाला न हो तथा नीम के नीचे ही रोगी को सुलाइए। यह कुष्ठ रोग की एक ही अद्भुत औषधी है।

यदि नीम के तने की खोख में चने रख दिए जायें और १५ दिन पड़े रहने के पश्चात् उन्हें रोगी प्रतिदिन उपर्युक्त औषध के सेवन के साथ-साथ खाए तो कुष्ठ रोग शीघ्र ही भाग जाता है।

३—दाद की अत्युत्तम गोली

सिंघाड़ा सूखा २ तोला ४ माशा, सुहागा २½ तोला, सफेद राल ५ तोला, आम्बलासार गन्धक २½ तोला, नीला थोथा भुना हुआ ३ माशा इन सबको बारीक कूट, छानकर दही के पानी से गोलियां बना लें और दही के पानी या केवल पानी में घिसकर लगायें, दाद भाग जायेगा।

४—श्वेत कुष्ठ की औषध

बावची, हड़ताल, गन्धक, मैनसिल समभाग लेकर कूट, पीसकर पानी में गाढ़ा-गाढ़ा लगावें। श्वेत कुष्ठ दूर हो जाएगा।

५—गहरे से गहरे तथा अत्यन्त पुराने नासूर को दूर करने की अद्भुत सस्ती औषध

तम्बाकू के हरे पत्तों को कूट-पीसकर उनका रस निचोड़ लो और बराबर का मीठा तेल डालकर धीमी-धीमी आंच में पकाओ। जब पानी सूखकर केवल तेल रह जाए, तब छानकर एक साफ शीशी में भरकर रख दो। यह तेल नासूर के अतिरिक्त पाथरिया तथा गठिया तक को भी ठीक कर देता है।

नेत्र रोग-चिकित्सा

१—सर्व नेत्ररोग नाशक एक अद्भुत सुरमा

वंशलोचन १२ भाग, छोटी इलायची १० भाग, वायविडंग ८ भाग, आंवला के बीज ६ भाग, काली मिर्च ४ भाग, पीपर छोटी २ भाग और इन सब औषधियों के वजन से आधा शुद्ध सुरमा इन सबको अत्यन्त बारीक पीसकर शीशी में भरकर रख दो। सायं-प्रातः आंखों में लगाओ। इससे नेत्रों के सब रोग दूर होते हैं। आंखों की ज्योति बढ़ती है।

२—सम्पूर्ण नेत्ररोग नाशक खाने की औषध

त्रिफला, दालचीनी, मुलेठी तथा महुए के फूल समभाग लेकर चूर्ण बना लें और असम भाग घृत और शहद में मिलाकर सायं-प्रातः सेवन करें। यह औषध आंखों के समस्त रोगों को दूर करती है। यही औषध स्त्रियों के समस्त रोगों तथा बवासीर, भगन्दर, कुष्ठ और प्रमेह के लिए भी लाभदायक है।

३—रतौंधी की अक्सीर दवा

काली मिर्च को दही के पानी में घिसकर आंखो में अंजन करें। कुछ दिन लगातार लगाने से रतौंधी दूर हो जाती है।

४—रतौंधी के और सरल प्रयोग

(क) करेले के पत्तों का रस आंखों में लगाओ, (ख) प्याज का रस आंखों में लगाओ। (ग) लाहोरी नमक की सलाई आंखों में फेरो, (घ) दही के पानी में अपना थूक मिलाकर आंजो। (ङ) अदरक का रस आंखों में टपकाओ, (च) गाय के गोबर में पीपल घिसकर आंजो। इनमें से किसी भी प्रयोग को काम में लाने से रतौंधी दूर हो जाती है।

५—आंखों की जलन और लाली

स्वच्छ कपड़े की कई तह बनाकर उस पर पिसी हुई फिटकरी बुरक दो और उसके ऊपर गाय का दूध डालकर आँखों पर रखो। जलन और लाली दूर हो जाएगी।

६—मोतिया बिन्द का सरल नुस्खा

(क) भीमसेनी कपूर को लड़के वाली स्त्री के दूध में घिसकर आंजने से

थोड़े दिन का मोतिया बिन्द चला जाता है। इसी प्रकार—

(ख) नौसादर को सुरमे की तरह आंखों में आंजने से थोड़े दिन का मोतिया बिन्द दूर हो जाता है।

७—फूला की उत्तम औषध

सोनामक्खी (सनाय) शहद में घिसकर आंखों में आंजने से फूला दूर हो जाता है।

८—नेत्रों के लिए देशी लोशन

फिटकरी, कलमीशोरा, शोधा हुआ काला सुरमा एक-एक तोला बारीक पीसकर एक शीशी में डालकर और उसमें एक पाव अर्क गुलाब डाल कर, हिलाकर काक लगा दो। जब पानी नितर आए, उस पानी को ऊपर से लेकर शीशी में भरकर रख दें। बस, लोशन तैयार है। इस लोशन की दो-तीन बूंद आंख में टपकाने पर दुखती आंख, लाली, धुन्द, जाला आदि दूर हो जाते हैं।

९— कूकरों की उत्तम औषध

शुद्ध जस्त भस्म, शुद्ध काफूर तथा शुद्ध काला सुरमा समभाग लेकर खरल करें। यही कूकरों का सुरमा है। इसे प्रतिदिन सोते समय सलाई से नेत्रों में लगाने से कूकरे भाग जाते हैं।

बवासीर की चिकित्सा

१—बवासीर का खाने और लगाने का एक गरीबी नुस्खा

धुली हुई मूंग की दाल तथा २१ पत्ते कड़वे नीम के, इन दोनों को पीसकर एक पूड़ी बनाओ। उसे गाय के घृत में तलो। पूरी के अच्छी प्रकार तल जाने पर, उसे निकाल कर फेंक दो और घृत को शीशी में भरकर रख दो और २१ दिन तक यथाशक्ति तोला, आधा तोला उस घृत को खाओ तथा रोगी को अन्य सब प्रकार के नमक छुड़ाकर थोड़ा सेन्धा नमक का ही प्रयोग कराओ। इससे मस्से स्वयं ही गिर जाते हैं और यदि मस्से बहुत अधिक कष्ट देते हों तो कड़वे नीम के बीजों को तेल में तलकर उसी तेल में पीस लो। फिर जरा-सा नीला थोथा पानी में घोलकर उसमें मिला दो और इस मलहम को मस्सों पर

लगाओ। मस्से या गांठ गलकर स्वयं गिर जायेंगे। लगाने तथा खाने की दोनों औषध साथ में सेवन करने से और भी शीघ्र लाभ होता है।

२—खूनी तथा बादी दोनों बवासीर की अचूक दवा

जंगी हरड़, सफेद जीरा, इलायची, रसौंद सब बराबर-बराबर लेकर बारीक पीस लें, फिर मूली के रस की ७ भावनाएं दें। जंगली बेर के बराबर गोलियां बनाकर एक गोली मठे (छाछ) या ठण्डे जल से दें। इस औषध के सेवन से खूनी तथा बादी दोनों प्रकार की बवासीर १५, २० दिन में ही दूर हो जाती है।

३—खूनी बवासीर पर एक सरल नुस्खा

करेले के पत्तों अथवा करेले के ही एक छोटे चम्मच के रस में थोड़ी शक्कर मिलाकर पीने से खूनी बवासीर ठीक होती है।

४—खूनी बवासीर पर दूसरा नुस्खा

गाय के दूध में काले तिल और मिश्री मिलाकर कुछ दिन तक खाने से खूनी बवासीर ठीक हो जाती है।

५—खूनी बवासीर का बहुत सस्ता अचूक प्रयोग

जंगली उपलों (कन्डों) की भस्म को जल के साथ सेवन करने से चार-पांच दिन में ही खून आना बन्द हो जाता है।

६—खूनी बवासीर, रक्तप्रदर तथा खून के दस्तों की एक ही अचूक सस्ती दवा

सूखे गूलरों को बारीक पीस लें और उसमें बराबर की मिश्री मिला लें। उसमें से प्रतिदिन सायं-प्रातः ६ माशा खाकर ऊपर से थोड़ा ताजा जल पी लें। इससे उपर्युक्त तीनों बीमारियां ठीक हो जायेंगी।

ज्वर आदि चिकित्सा

१—सब प्रकार के ज्वरों की एक चमत्कारी औषध

नीम की निम्बोली का मगज ५ तोला, हड़ताल तबकी ५ तोला, चूना सूखा ५ तोला, इनको घीकुमार (ग्वारपाठा) के रस में एक पहिर तक भली

प्रकार खरल करें और चने के बराबर गोलियां बना लें। नागरबेल पान के टुकड़े में एक-एक गोली सायं-प्रातः रखकर सेवन करने से दूसरे ही दिन शीत ज्वर भाग जाता है।

आटे की बाटी बनाकर उसे खूब अच्छी तरह से सेक लें। फिर उसे फोड़ कर घी में डाल दें। जब घृत से खूब तर हो जाये, तब उसे बाहर निकाल लें और उसके बीच के गूदे को प्रथम ग्रास में एक या दो गोली रखकर खा लें और ऊपर से शेष बाटी भी खा लें। फिर ५ घंटे के पश्चात् भोजन खिलावें। इससे रोगी के सब प्रकार के ज्वर नष्ट होकर वह पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। जो रोगी खाए बिना नहीं रह सकते, उनके लिए तो यह प्रयोग बहुत ही उत्तम है।

२—शीत तथा विषम ज्वर का एक ग्रामीण नुस्खा

नीम की २ तोला छाल का काढ़ा बनाकर उसमें ६ माशा सोंठ तथा ६ माशा धनियां पीसकर डाल दें तथा रोगी को सायं-प्रातः पिलायें। सात दिन तक पिलाने में निश्चय ही शीत-ज्वर तथा विषम ज्वर उतर जायेगा। यह औषध कुनैन मिक्चर से भी अधिक लाभप्रद है।

३—मोतीझारा की उत्तम औषध

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, मुलेठी और काली दाखों को समभाग लेकर काढ़ा बनायें और थोड़ा शहद मिलाकर पिला दें। मोतीझारा ठीक हो जायेगा।

४—शीत ज्वर की एक और सस्ती औषध

आक की जड़ दो भाग, काली मिर्च एक भाग को बकरी के दूध में पीस कर चने के बराबर गोलियां बना लें तथा बुखार चढ़ने से पहिले एक गोली पानी से निगल जाएं। तीन-चार बार देने से ही बुखार उतर जायेगा।

५—विषम ज्वर की औषध

बच, हरड़ और घी इन तीनों को आग में डालकर धुनी देने से विषम ज्वर चला जाता है।

६—सब प्रकार के ज्वरों की रामबाण औषध

सतगिलोय १ भाग, काली मिर्च ४ भाग, इनको तुलसी के पत्तों के रस में तीन पहर तक खरल करें और ज्वार के दाने के बराबर गोलियां बनाकर रख

दें। शीत ज्वर में शीत आने से पौन घंटा पहिले १ या २ गोली गर्म जल से दें। बिना सरदी के ज्वर में ताजे जल से दें। टाईम के ज्वर में सायं-प्रातः एक एक गोली चिरायता के एक छटांक अर्क के साथ दें।

दमा, खांसी, जुकाम, क्षय आदि रोग-चिकित्सा

१ – दमा को एक अत्युत्तम औषध

धतूरे के फल लेकर उनके ऊपर की टोपी उतार दो तथा धतूरे को चीर कर, आधे धतूरे के बीज निकालकर उसमें चनें भर दें। फिर धतूरे के दोनों टुकड़ों को जोड़कर ऊपर धतूरे की टोपी भी लगा दें। फिर सूत के डोरे से बांधकर एक हांडी में रखकर, मुख बन्द कर उपलों की अग्नि में गाड़ दें। जब हांडी स्वयं ठण्डी हो जाए, उन धतूरों को पीस, छानकर रख दें और बंगला पान में दो रत्ती दवा रोज दमा के रोगी को खिलावें। इससे दमा चला जायेगा।

२—श्वास के वेग को रोकने का एक अनुभूत प्रयोग

सूखी भांग, सूखे धतूरे के पत्ते, कलमीशोरा, समभाग लेकर कूट-छानकर रख दें। इसमें से दो-तीन चुटकी चिलम में रखकर धूम्रपान करें अथवा बीड़ी बनाकर पीयें। इससे दमे का दौरा रुक जाएगा।

३—दमे को हमेशा के लिये बन्द करने का नुस्खा

माणिक्यरस चौथाई रत्ती से आधी रत्ती तक मुनक्का या कैप्सूल में रख कर खिलायें। यदि जिगर में कोई खराबी न हो तो मक्खन या मलाई में भी ले सकते हैं। प्रथम तीन दिन औषध लेकर फिर एक दिन बन्द कर दें और फिर दो दिन तक औषध खिलावें। इससे फिर कभी भी दमे का दौरा नहीं पड़ेगा।

४—श्वास का एक अत्युत्तम टोटका

पक्के केले को आग पर रखकर गर्म कर लें। उसमें एक रत्ती सोडा-बाई कार्ब लगाकर खिला दें। यह श्वास की अत्युत्तम औषध है।

५—जुकाम-खांसी औषधी

६ माशा सोंठ को बारीक पीसकर गुड़ में मिलाकर खाओ। इससे खांसी तथा जुकाम दोनों ठीक हो जाते हैं और भूख खुलकर लगती है।

६—भयंकर दमे को भी दूर करने की औषधि

हल्दी, काली मिर्च, बीज सहित मुनक्का, कणालघु, रास्ना, कचूर प्रत्येक समभाग, गुड़ दुगना, सबको कूट, पीस कर कड़वे तेल में मिलाकर चाटें। यह औषध भयंकर प्राणनाशक दमा को भी नष्ट कर देती है।

७—जुकाम, छाती की पीड़ा और सारे श ीर के दर्द का सस्ता टोटका

सोंठ, पताशों का काढ़ा बनाकर पीने से जुकाम, छाती का दर्द तथा सारे शरीर का दर्द ठीक हो जाता है।

८ असाध्य खांसी का एक सरल प्रयोग

सितोपलादि का चूर्ण खाकर ऊपर से गाय का धारोष्ण दूध पीयें। इससे असाध्य खांसी और प्रारम्भ का तपेदिक भी चला जाता है।

९—दमा, खांसी, सर्दी, जुकाम, कफ, अरुचि पर एक ही अत्यन्त सरल प्रयोग

अदरक का रस ६ माशे और शहद ६ माशे मिलाकर चाटें। इससे उ युक्त सभी बीमारियां दूर हो जाती हैं।

१०—जुकाम का सस्ता टोटका

नौसादर और चूने में जरा-सा पानी डालकर हथेलियों में घिसो, फिर सूं ल जुकाम ठीक हो जायेगा। साधारण सिर दर्द भी चला जायेगा।

११—सब प्रकार की खांसी पर अद्भुत नुस्खा

जौखार १ तोला, काली मिर्च २ तोला, पीपल २ तोला, अनारदाना $1\frac{1}{2}$ तोला, गुड़ १६ तोला, इनको कूट, छान लें। फिर अनारदादाना कूटकर मिला द और गुड़ डालकर छोटे वेर के वरावर गोली बना लें। इसका रस चूसने से सब प्रकार की खांसी चली जाती है।

विविध रोग—चिकित्सा

१—पागल कुत्ते काटने पर

सफेद जीरा, काला जीरा, काली मिर्च इनको पीसकर एक माशा भर पिला दें तथा प्याज को बारीक पीसकर शहद में मिला कुत्ते की काटी हुई

जगह पर लेप करने से पागल कुत्ते का काटा ठीक हो जाता है।

२--बिच्छू के विष पर

कोई दूसरा मनुष्य कड़वे नीम के पत्तों को मुंह बन्द करके चवाए तथा जिसको बिच्छू ने काटा हो, काटे वाले स्थान के दूसरे कान में फूंक मार दें तो बिच्छू का विष उतर जायेगा।

३—कान के बहने तथा दर्द की सस्ती दवा

(क) गोमूत्र को गर्म करके बहते कान में डालो, कान का बहना बन्द हो जाएगा। दर्द वाले कान में डालने से दर्द भी दूर हो जाता है।

(ख) लहसुन या हींग को तेल में भूनकर वह तेल कान में डालने से भी कान का दर्द तथा बहना बन्द हो जाता है।

४—सर्पदंश पर एक अचूक औषध

नाग दमनी जिसको नागन बेल तथा नागदौन भी कहते हैं, की एक तोला जड़ को घोट छानकर दस तोला पानी में पिलावें। इससे सर्प विष अवश्य दूर हो जाता है।

५—मुख के छाले

(क) शीतल चीनी और मिश्री को दाढ़ में रखकर उसका रस चूसें। (ख) पीपरमैंट को मुख में रखें। (ग) छाछ (मठे) के कुल्ले करें।

६—बन्द पेशाब की दवा

केले की छाल का रस ४ तोले में २ तोले घृत मिलाकर पीयें। इससे रुका हुआ पेशाव खुल जायेगा। यह नुसखा स्त्री, पुरुष दोनों के लिए लाभदायक है। स्त्रियों के लिए अत्यन्त लाभदायक है।

७—विष दूर करने का सरल योग

केले के वृक्ष के बीच के भाग का रस पिला देने से पेट में पहुंचा हुआ विष भी दूर हो जाता है।

८—मिर्गी दूर करने का नुस्खा

केवड़े की बाल का चूरा तम्बाकू के समान सूंघे, मिर्गी जाती रहेगी।

९—बहुमूत्र का अनुभूत नुस्खा

शंकर लोध २ रत्ती, त्रिफला ३ माशा शहद में मिलाकर चाटें।

१०—भयंकर हैजे को भी तत्काल दूर करने वाली औषध

सीपी भस्म $\frac{1}{2}$ माशा, पिसी हल्दी $\frac{1}{2}$ माशा, गाय का घृत १ तोला मिला कर चटा दें और घंटा भर तक जल न पिलावें। इससे भयंकर हैजा भी चला जायेगा।

११—नाक की पीनस तथा दुर्गन्ध पर अत्यन्त लाभप्रद औषध

नकछिनी बूटी को पीसकर तीन रत्ती शहद में मिलाकर हुलास लें। इस प्रकार दिन में तीन बार करें। पीनस रोग में ३ माशा औषध में १ माशा गठीली कौड़ी भी भस्म मिलाकर हुलास लें। सब प्रकार की पीनस ५ दिन में भाग जायेगी।

१२—बिच्छू की नायाब औषध

चिरचिटा (अपामार्ग) की जड़ पास रखने से बिच्छू कदापि नहीं काटता और तो क्या जिस दरी पर चिरचिटा की जड़ वाला मनुष्य बैठा है उस दरी पर जितने भी मनुष्य बैठे हों, उनको बिच्छू नहीं काटेगा।

१३—नासूर का बिल्कुल सरल प्रयोग

जटाशंकरी की बेल के नीचे एक दानेदार गांठ निकलती है। उसे ठंडे जल में घिसकर नासूर पर लगाने से वर्षों का पुराना नासूर भी ठीक हो जाता है।

१४—हिचकी की अक्सीर दवा

जामुन का सिरका २ माशे में काला नमक ४ रत्ती घोलकर पिला दो। इससे भयंकर हिचकी भी बन्द हो जाती है।

१५—लकवा अथवा पक्षाघात की अद्भुत माजून

शुद्ध कुचला २$\frac{1}{4}$ तोले, गाजवान के फूल १$\frac{1}{2}$ तोला, दोनों इलायची, कचूर, शकाकुल, सन्दल सफेद, आंमला, जंगी हरड़ प्रत्येक नौ-नौ माशे, उरद ४$\frac{1}{2}$ माशे, लौंग ४$\frac{1}{2}$ माशे, उस्तखद्दूस, गोंद कतीरा, नारियल की गिरि, चिलगोजा प्रत्येक १३$\frac{1}{2}$ माशे, इन को कूट, पीसकर शहद में मिलाकर माजून बना लें और एक-एक तोला सायं-प्रातः लें। इससे लकवा तथा पक्षाघात दोनों ठीक हो जाते हैं तथा शरीर बलवान बनता है।

१६—आग से जलने की औषधि

अलसी का तेल और चूने के ऊपर का नितरा हुआ पानी बराबर मिलाकर आग पर जले स्थान पर लगाने से जलन शान्त हो जाती है। फफोले नहीं पड़ते। यदि पड़ते भी हैं तो तकलीफ़ कम होती है।

१७—नारु की उत्तम औषध

चार तोला मोठ के आटे में एक या दो चना भर असली हींग मिलाकर पानी में घोलकर पकाओ। जब लोई के समान हो जाए तब उतारकर नारू पर बांध दो। इससे नारू निकल जायेगा।

१८—बाल उड़ाने का उत्तम प्रयोग

डेढ़ छटांक खोलते हुए पानी में अढ़ाई तोले वैरियम सलफाईड (अंग्रेजी दवा) मिलाकर शीशी में डाल, मजबूत काक लगा दो। इसमें से चन्द बूंदें बालों पर डालकर मल दो। पांच मिनट में बाल उड़ जायेंगे।

१९—मुख के मुहासे दूर करने की उत्तम औषध

भुने हुए चनों का चूर्ण ६ माशे, मुर्दासिंग ३ माशे, सफेद काशगरी ४ माशे सबको पीस, छानकर बकरी के दूध में खरल करके रात्रि को मुहासों पर लगा कर सो जाओ और प्रातः नीम के पत्तों में औटाए जल से धोकर फिर खालिस शुद्ध जल से धो दो। इस प्रकार कुछ दिन लगातार करने से मुहासे दूर होकर मुख साफ निकल आता है अथवा जायफल को दूध में घिसकर लगाओ।

२०—हाथ पैर फटने की औषध

आधा पाव अलसी के तेल में २ तोला उत्तम देशी मोम मिलाकर गर्म करो। जब दोनों मिल जाएं तब उसमें एक तोला देशी कपूर डालकर मिला दो। इस मरहम को फटे हाथ-पैरों पर लगाने से वे ठीक हो जाते हैं।

२१—कान दर्द पर अक्सीर दवा

आक के पत्तों को घृत से चुपड़ कर अग्नि पर सेको। फिर उनका रस निचोड़ कर कान में डालो। इससे कान का दर्द अवश्य चला जायेगा।

२२—हिचकी बन्द करने के कुछ उत्तम प्रयोग

(क) शहद चाटो, (ख) खप्पर की पुरानी रस्सी को चिलम में रखकर

पियो। (ग) पोदीने के पत्तों में शक्कर मिलाकर चबाओ, (घ) प्राणायाम करो, (ङ) बकरी के दूध में सोंठ औटाकर पिलाओ।

२३—दांतों का दर्द, उनका हिलना तथा मसूड़ों के फूलने की उत्तम औषध

पीपल, सेन्धा नमक, जीरा और सोंठ पीसकर वैसे ही अथवा कुछ बूंद कड़वा तेल डालकर मलो। इससे उपर्युक्त रोग ठीक हो जायेंगे।

२४ दांतों का कीड़ा दूर करना

कीड़े वाले छेद में कपूर या पीपरमैंट भर दो। कीड़ा मर जायेगा और दर्द बन्द हो जायेगा।

२५—हैजा हो ही नहीं

(क) दुर्भाग्यवश यदि आपके नगर में हैजा फैल गया है तो आप कड़वे नीम के पत्ते १ तोला, कपूर १ रत्ती और हींग १ रत्ती। इन तीनों को पीसकर गोली बना लो। रात्रि को सोते समय ६ माशा गुड़ मिलाकर खा लो। अपने समस्त परिवार को खिलाओ। आपके परिवार में किसी को भी हैजा नहीं होगा।

(ख) रात के भोजन के पश्चात् थोड़े से प्याज के रस में चने के बराबर हींग, डेढ़ माशा सोंठ और डेढ़ माशा धनिया पीसकर और मिलाकर खा लो। हैजा नहीं होगा।

२६—सर्प के विष को दूर करने की उत्तम औषध

जिसे सांप ने काटा हो उसे नीम के पत्ते, नमक और काली मिर्च चबाने को दो अथवा नीम के पत्तों अथवा छाल का रस निकाल-निकाल कर पिलाओ और तब तक उपर्युक्त प्रयोग करते रहो जब तक कि रोगी को नीम का कड़वापन मालूम न हो। जब नीम का कड़वापन मालूम हो तब समझिए कि विष उतर गया। सांप के काटे को नीम का कड़वापन मालूम नहीं होता। यही सांप के काटे की पहिचान है।

२७—सब प्रकार के विषों को दूर करने का अचूक उपाय

काली मिर्च तथा सेंधा नमक एक-एक भाग, नीम के फल दो भाग, इन

तीनों को पीसकर शहद के साथ देने से सब प्रकार के विष दूर हो जाते हैं।

२८—निद्रा लाने का उत्तम नुस्खा

(क) अलसी और अरण्डी के तेल को समभाग लेकर कांसे की थाली में कांसे की कटोरी से घोटो और नींद न आने वाले की आंखों में आंजो। फौरन नींद आ जाएगी।

(ख) अथवा जायफल को घिसकर पलकों पर लगाओ।

२९—अण्डकोष की वृद्धि का नुस्खा

छोटी इन्द्रायण की जड़ के चूर्ण को अरण्डी के तेल में पीसकर दिन में चार-पांच बार लगाओ और २ माशे इन्द्रायण का चूर्ण गाय के दूध के साथ लेने से अण्डकोष ठीक हो जाते हैं।

३०—ग्रीष्म ऋतु में गर्मी आदि के दूर करने का उत्तम शर्बत

शक्कर या मिश्री का शर्बत बनाकर उसमें चावल भर देशी कपूर, एक लौंग, एक इलायची और चार गोल मिर्च पीसकर मिला दो। यह शर्बत ठण्डा वीर्यवर्धक, दस्तावर, रुचिकारक, स्वादिष्ट और पचने में हलका है। इससे बादी, पित्त, मूर्छा, कै, प्यास और जलन आदि रोग भी दूर होते हैं।

३१—पसली दर्द की उत्तम औषधि

थोड़ा सा सिन्दूर शहद में मिलाकर एक स्वच्छ कपड़े पर लगा दो और दर्द के स्थान पर उसे चिपका दो और जलते हुए कंडे की आग से सेकें। कंडा शरीर से दूर रखकर केवल उसकी भभक ही लगने दें।

३२—सिर पर लगाने का एक अत्युत्तम तेल

छड़ीला, नागर मोथा, कपूर कचरी, पनड़ी, गुलाब के फूल, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, त्रिफला, लौंग, बड़ी इलायची, चम्पावती, धनियां, खस, कंकोल, हाऊबेर, दालचीनी, वालछड़ सुगन्ध वाला, सुगन्ध कोकिला, नरकचूर और नख यह सब चीजें एक-एक तोला लेकर अधकचरा कर लो, फिर एक टीन में अथवा कांच के वर्तन मे खोपरे या काले तिलों का १ सेर तेल डालकर उसी में उपर्युक्त अधकचरी चीजें भी डाल दो और मुख वन्द करके एक सप्ताह तक दिन-रात छत पर रख दो फिर छानकर बोतल में भर दो। यह बालों तथा मस्तिष्क

के लिए अत्यन्त उपयोगी तेल है। इसके लगाने से सिर ठण्डा रहता है, बाल काले और चिकने रहते हैं और इसकी मन-मोहक सुगन्ध से चित्त प्रसन्न रहता है। इसमें गुलाब या केवड़े का इत्र भी डाल सकते हैं।

३३—सांप को घर से भगाने का टोटका

जहां लहसन रखा होगा, वहां सांप कदापि नहीं आयेगा। अतः जहां भी सांप के रहने की शंका हो, वहां लहसुन रख दो। सांप भाग जायेगा।

३४—मूर्छा तथा बेहोशी दूर करने का प्रयोग

पीपल के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटें। इससे मूर्छा तथा बेहोशी दूर हो जाएगी।

३५—समस्त वातरोग नाशक औषधि

चीता, इन्द्रजौ, पाढ़, अतीस, कुटकी, हरड़ इनको समभाग लेकर कूट-छान लो। प्रति दिन चार से ६ माशे तक यह चूर्ण गर्म जल से लेने पर वात के सभी रोग दूर होते हैं। भूख खूब लगती है। दस्त खुलकर आता है।

३६—रक्त विकार के सब रोग, उदर रोग, पाण्डु रोग, सूजन तथा जलोदर की एक ही औषधि

नीम, गुर्च, आमले, हरड़ और बावची चार-चार तोले, सोंठ, वायविडंग, पमार के बीज, पीपर, अजवायन, वच, जीरा, कुटकी, सफेद कत्था, सेन्धा नमक, जवाखार, हल्दी, दारू हल्दी, नागर मोथा, देवदारू और मीठा। कूटकर यह सब एक-एक तोला, सब औषधियों को मिलाकर कूट-छान लो। इसमें से चार-चार माशे चूर्ण गिलोय के काढ़ा में पिओ। इससे उपर्युक्त सब रोग नष्ट हो कर, दो मास में शरीर सोने के समान चमकने लगता है।

३७—अत्यन्त लाभप्रद दन्तमंजन

जलाये हुए भिलावे के कोयले १० तोला, फिटकरी का फूला २½ तोला, कपूर ¼ तोला, लौंग, दालचीनी, समुद्र फेन, काली मिर्च, सेन्धा नमक, सुहागे का फूला, अकरकरा प्रत्येक एक-एक तोला, पीपरमैंट ६ माशा—इन सब पदार्थों को बारीकपीसकर मंजन बना लें और नीलगिरी का तेल तथा क्रिओजोट तीन-तीन माशा भली प्रकार खरल में घोटकर समूचे मंजन में मिला दें। यह मंजन दांतों के समस्त रोगों को दूर कर दांतों को स्वच्छ तथा मजबूत बनाता है।

३

पयस्वन्तः

शरीर को स्वस्थ, बलवान् बनाने का मुख्य साधन घृत, दुग्ध आदि पौष्टिक पदार्थ

ऊपर बताया जा चुका है कि शरीर को निरोग और बलवान् बनाने का भोजन ही मुख्य साधन है। किन्तु वह भोजन स्वास्थ्य और बल प्रदान करने वाला होना चाहिए और यह तभी सम्भव है, जबकि हमारे भोजन में दूध; दही; घृत, मक्खन आदि पर्याप्त मात्रा में विद्यमान हों। इसलिए गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने का तीसरा साधन अथर्ववेद ने बताया—'पयस्वन्तः' मन्त्र में प्रार्थना की गई है—

हे प्रभो ! हमारे घर दूध, दही तथा घृत से भरपूर हों। उनमें दूध, दही; मक्खन आदि की कमी न हो। वास्तव में वही घर सुखमय है, जिस घर में दूध, दही की कमी नहीं। जहां बालकृष्ण के सदृश नन्हे-नन्हे सुन्दर और सुडौल बच्चे मां से मक्खन मांगकर खा रहे हैं। जहां गृहदेवियां प्रातः सुमधुर गान के साथ बैठी दही विलो रही हैं। जहां आबाल वृद्ध सभी बैठकर ताजे दुग्धपान का आनन्द ले रहे हैं। जिस घर में छाछ (मठे) की कमी नहीं। जहां गौएं खड़ी अपनी प्रेममयी अव्यक्त वाणी से अपने भोले-भाले प्रिय वत्सों को पुकार रही है। ऐसे स्वर्गसम घरों के बालक, युवा, वृद्ध भला कभी बीमार और कमजोर रह सकते हैं। कभी बेडौल और बदसूरत बन सकते हैं। गाय का दूध तो वेद के शब्दों में अत्यन्त दुबले-पतले कृश शरीर को भी हृष्ट-पुष्ट बना देता है। बदसूरत को भी खूबसूरत कर देता है। ऋग्वेद गाय की महिमा का वर्णन करते हुए कहता है—

यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं कृणुथा सुप्रतीकम् ।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद् वो वय उच्यते सभासु ।।

"हे गौओ ! तुम कमजोर को भी बलवान् बना देती हो । बेडौल को भी सुन्दर और सुडौल बना देती हो । जहां तुम्हारी कल्याणकारिणी सुमधुर वाणी सदा सुनाई देती है उस घर का, उस परिवार का सदा कल्याण ही होता है ।"

वास्तव में प्रभु ने अपनी रचना में प्राणियों के पोषणार्थ जितने भी फल, फूल, अन्न, शाक आदि पदार्थ बनाए हैं, उन सब में यदि कोई सर्वश्रेष्ठ पोषक तत्त्वों से भरपूर पदार्थ है तो वह दूध है । दूध न केवल मानव प्रत्युत समस्त प्राणियों का प्राण तथा जीवन है । विधाता की रचना में दूध ही ऐसा पदार्थ है, जो सब प्राणियों के लिए अनुकूल है । ए० बी० सी० डी० आदि सभी पोषण तत्त्व (विटामिन्स) इसमें मौजूद हैं । नवजात शिशु, जब तक वह अन्न ग्रहण करने के योग्य नहीं होता, केवल दूध से ही पोषण प्राप्त करता है । यही कारण हैं कि वह विश्व-विधाता बालक के जन्म से पूर्व ही माता के स्तनों में दूध की पावन-पीयूष धाराएं बहा देता है । इसी कारण दूध को संस्कृत भाषा में "बाल जीवन" के नाम से भी पुकारा गया है ।

तात्पर्य यह है कि बालक को जीवित रखने, निर्बलों को बलवान् बनाने, जवानों को पहलवान बनाने, बूढ़ों को दीर्घजीवी रखने और बीमारों को तन्दु-रुस्त बनाने का दूध ही सर्वोत्कृष्ट साधन है । पाश्चात्य डाक्टरों ने भी इस बात को निश्चित रूप से माना है कि दूध के समान पौष्टिक और बलप्रद अन्य कोई पदार्थ विश्व में विद्यमान नहीं । सच पूछो तो दूध ही इस मृत्युलोक का एक मात्र अमृत है । इसीलिए वेद भी इसे अमृत नाम से पुकारता है ।

स्व आदमे सुदुघा यस्य धेनुः स स्वधां पीपाय । सुभ्वन्नमत्ति (ऋग्वेद)

इसके विपरीत जिस घर में दूध, दही का अभाव है, जहां छाछ पीना भी बच्चों को नसीब नहीं होता, वह घर मानो साक्षात् नरक की निशानी है । ऐसे घरों का किसी कवि ने कैसा सुन्दर खाका खींचा है । कवि कहता है—

यत्र नास्ति दधि मन्थनघोषो यत्र न सन्ति लघुलघूनि शिशूनि ।
यत्र नास्ति गुरु गौरवपूजा तानि किं वन गृहाणि न वनानि ।।

अर्थात्—जिस घर में प्रातःकाल माताओं के दही विलोने की आवाज नहीं आ रही। जिस घर में उस दही, दूध और मक्खन को खाकर बलवान् बने सुन्दर और सुडौल शिशु खेल, कूद नहीं रहे। जिस घर में गुरुजनों के गौरव की पूजा नहीं होती। अर्थात् उनके तप, त्याग तथा विद्या का सम्मान नहीं होता। उनका आदर और सत्कार नहीं होती अथवा जिस घर में उस परम गुरु परमेश्वर की पूजा अर्थात् उपासना नहीं होती। क्या वे भी घर हैं ? इसका उत्तर कवि स्वयं देता है—

वे घर नहीं प्रत्युत् भयानक, डरावने जंगल हैं। कोई समय था, जब हमारे घरों में दूध, दही की नदियां बहती थीं। लोग दूध और दही को बेचना तो जानते भी नहीं थे। यदि कोई प्यासा आकर पानी मांगता था तो घर की गृह देवियां उसे दूध पिलाती थीं। यही कारण था कि हमारे पूर्वज बलवान्, पराक्रमी, तेजस्वी तथा दीर्घजीवी हुआ करते थे। उनके शरीर सदा नीरोग और स्वस्थ रहते थे। उनके बलिष्ठ शरीर को देखकर रोग उनसे कोसों दूर भागते थे।

दूध ही सर्वोत्तम वाजीकरण है

हम कामशास्त्र के प्रकरण में कई प्रकार के वाजीकरण प्रयोग लिख आए हैं। किन्तु सबसे अधिक बल, पुरुषार्थ से पूर्ण यदि कोई वाजीकरण पदार्थ है तो वह दूध ही है। वैद्य शिरोमणि लोलिम्बराज अपनी धर्मपत्नी से कहते हैं—

सौभाग्य-पुष्टि-बल-शुक्र विवर्धनानि,
किं सन्ति नो भुवि हूबंनि रसायनानि।
कन्दर्पवर्धिनि ! परन्तु सिताज्ययुक्तात्,
दुग्धादृते न मम कोपि मतः प्रयोगः ॥

"हे प्रिय कामिनी ! इसमें कोई सन्देह नहीं कि संसार में सौभाग्य, बल पुष्टि तथा वीर्यवर्धक बहुत रसायन हैं किन्तु मेरे विचार में घी और मिश्री मिले हुए दूध से बढ़कर संसार में अन्य कोई भी रसायन बल बढ़ाने वाली नहीं।" इसी प्रकार कोकशास्त्र के निर्माता कोकदेव लिखते हैं—

धातु करण और बल धरण, मोहि पूछे जो कोय।
पय समान या जगत में, है नहीं दुसर कोय ॥

दूध के गुण

अब हम प्रिय पाठकों की जानकारी के लिए गाय आदि प्रसिद्ध दुधारी जानवरों के दूध, दही, घृत आदि के गुणों का संक्षिप्त वर्णन करेंगे, जिससे पाठक अपनी तथा अपने परिवार की शरीर प्रकृति के अनुसार दूध, दही आदि का चुनाव कर उससे लाभ उठा सकें। सर्वप्रथम पृथक्-पृथक् गाय आदि के दूध का वर्णन करने से पूर्व हम सामान्यत: दूध के गुणों का वर्णन करते हैं। भावप्रकाश में दूध के निम्न गुण बताए हैं—

दूध—मधुर, चिकना, वादी और पित्त का नाशक, दस्तावर, वीर्यवर्धक, शीतल, सबके अनुकूल, सबको जीवन, पुष्टि देने वाला, बलकारक, बुद्धि को बढ़ाने वाला, सन्धान कारक, रसायन तथा ओज को बढ़ाने वाला है।" दूध किन-किन रोगों को दूर करता है इसका भी सुन्दर वर्णन उपर्युक्त ग्रन्थ में किया गया है —

जीर्णज्वर, मानसिक रोग, उन्माद, शोथ, मूर्छा, भ्रम, संग्रहणी, पीलिया, जलन, प्यास, हृदय रोग, शूल, उदावर्त, गोला, बस्ति रोग, बवासीर, रक्तपित्त, अतिसार, योनि रोग, परिश्रम, ग्लानि और गर्भ स्राव को दूर करने वाला है। अब हम अलग-अलग दूध आदि के गुणों का वर्णन करते हैं।

गाय का दूध - वाग्भट्ट में गाय के दूध के निम्न गुण बताए हैं—

अन्य दूधों की अपेक्षा अधिक बलदायक, जीवनप्रद, रसायन, घाव को शीघ्र भरने वाला, पवित्र; बलप्रद, स्त्री के स्तनों में दूध बढ़ाने वाला, थकावट, चक्कर, नशा, दरिद्रता, श्वास, खांसी, अतिप्यास तथा क्षुधा को शान्त करने वाला है। जीर्णज्वर, सुजाक और रक्तपित्त को भी शांत करता है। सर्वरोग नाशक तथा वृद्धावस्था को दूर भगाने वाला है। अर्थात् जो लोग गौ के शुद्ध, ताजा दूध को हमेशा पीते हैं, वृद्धावस्था उनसे सदा ही दूर रहती है।

गाय का दही—गाय का दही अन्य दहियों की अपेक्षा मीठा, कुछ खट्टा, रुचिकर, पवित्र, अग्निवर्धक, हृदय को प्रिय, पुष्टिकारक, वातनाशक तथा अन्य सब दहियों से गुणकारी है।

गौ का घृत—नेत्र रोग नाशक, बलप्रद, अग्निदीपक, पाक में मधुर, वात,

पित्त, कफ नाशक, बल, वीर्य, बुद्धि, ओज, सौन्दर्य, कान्ति और तेज को बढ़ाने वाला है। आयुवर्धक है। सुगन्धयुक्त तथा उत्तम रसायन है और सब प्रकार के घृतों से श्रेष्ठ है।

भैंस का दूध—गाय के दूध की अपेक्षा अधिक मधुर, चिकना, वीर्यवर्धक, भारी, नींद लाने वाला, कफ कारक, भूख बढ़ाने वाला और ठंडा है। गाय के दूध की अपेक्षा रंग में सफेद तथा तबियत में ताजगी देता है।

भैंस का दही—चिकना, कफकारक, वात, पित्तनाशक, पाक में मधुर, वृष्य और पचने में भारी है। अधिक मात्रा में सेवन से थोड़ा रक्त विकार भी करता है।

भैंस का घृत—मधुर, शीतल, कफकारक, बलप्रद, भारी, पाक में मधुर तथा पित्त विकार तथा रक्त विकार और बादी को नष्ट करता है।

बकरी का दूध—कुछ कसैला तथा मधुर, शीतल, ग्राही तथा पचने में हल्का होता है। रक्त पित्त, अतिसार, क्षय, खांसी, ज्वर, कण्ठ के रोग तथा फेफड़ों के रोगों के लिए लाभप्रद है।

बकरी का दही—उत्तम, ग्राही, हल्का, त्रिदोषनाशक और अग्निदीपक है। श्वास, खांसी, बवासीर, क्षय रोग तथा दुर्बलता के लिए हितकारी है।

बकरी का घृत—अग्निवर्धक, नेत्रों के लिए हितकर, बलदायक और पाक में चरपरा होता है। खाँसी, श्वास और क्षय रोग में बकरी का घृत विशेष लाभकारी है।

भेड़ का दूध—खारी, स्वादिष्ट, चिकना, उष्ण, पथरी रोग नाशक, तृप्ति-कारक, वृष्य, वीर्यवर्धक, कफ तथा पित्त कारक और वादी के रोगों को नष्ट करता है।

अन्य दुधारू पशुओं के दूध आदि के गुणों को ग्रन्थ विस्तार भय से नहीं दिया जा रहा है।

दूध आदि के सेवन सम्बन्धी आवश्यक नियम

१—दूध पीने के लिए प्रातः, मध्याह्न तथा रात्रि ये तीन समय ही उप-

युक्त तथा लाभप्रद हैं। मध्याह्न से पूर्व पिया हुआ दूध बलवर्धक, पुष्टिकारक और अग्निवर्धक है।

मध्याह्नकाल में पिया हुआ दूध बलवर्धक तथा अग्निदीपक है। कफ तथा पित्त का नाश करता है।

रात्रि को पिया हुआ दूध बालकों के शरीर की वृद्धि करता है। क्षय रोग का नाश करता है, वीर्यवर्धक है। अत्यन्त पथ्यकारी तथा अनेक दोषों को नष्ट करता है। आंखों के लिए भी हितकारी है।

२—जहां तक हो सके रात्रि को भोजन के एक-दो घंटे पश्चात् दूध पीना चाहिए, भोजन के साथ नहीं।

३—जिस दूध का रंग बदल गया हो, जिसके स्वाद में फीकापन आ गया हो, जो खट्टा हो गया हो, जिसमें दुर्गन्ध आ गई हो, जो फट गया हो, जिसमें भूल से लवण आदि पदार्थ पड़ गये हों, उस दूध को कदापि नहीं पीना चाहिए। ऐसा दूध पीने से शरीर में नाना प्रकार के विकार उत्पन्न हो जाते हैं तथा बलबुद्धि का नाश होता है।

४—छोटे बच्चों को ऊपर के दूध में जहां तक हो सके बकरी अथवा गाय का दूध ही पिलाना चाहिए और उसमें थोड़ा जल तथा थोड़ी-सी बारीक पिसी सोंठ डालकर पांच-छः उबाले आ जाने पर उतार देना चाहिए। फिर थोड़ी-सी शक्कर डालकर पिला देना चाहिए।

५—देर के दूध को बिना औटाये नहीं पीना चाहिए।

६—जहां तक हो सके बच्चों को शीशी से दूध नहीं पिलाना चाहिए। यदि विवशतः पिलाना भी पड़े तो उसे प्रतिदिन गर्म जल से ब्रुश द्वारा साफ कर लेना चाहिए।

७—दूध औटाते समय यदि उसमें थोड़ी-सी पिसी हुई सोंठ डाल दी जाए तो बहुत अच्छा है। इससे दूध पाचक तथा शक्तिवर्धक बन जाता है।

८—रात्रि को दही नहीं खाना चाहिए। यदि खाना भी पड़े तो उसमें शक्कर, शहद या मूंग की दाल डालकर खाना चाहिए।

९—रक्त पित्त सम्बन्धी यदि कोई रोग हो तो दही नहीं खाना चाहिए।

१०—अगहन, पौष, माघ और फाल्गुन में दही खाना अधिक लाभप्रद है।

११—जाड़े में मठा पीना सब मौसमों से अधिक लाभप्रद है। इस मौसम में सेवन किया हुआ मठा संग्रहणी, बवासीर, कफ तथा वात रोग और मन्दाग्नि के लिए अमृत तुल्य है।

स्वादिष्ट मठा

१२—भैंस का अत्यन्त गाढ़ा तथा कुछ खट्टे दही में चौथाई पानी डालकर मिट्टी के पात्र में रई से बिलोओ, फिर उसमें भुनी हींग, भुना जीरा, सेन्धा नमक, काली मिर्च और राई पीसकर मिला दो। यह मठा अत्यन्त स्वादिष्ट, रुचिकर, अग्निवर्धक, अत्यन्त पाचक, तृप्तिकारक तथा पेट के समस्त रोगों को दूर कर देता है।

घृत

१३—आजकल घृत में वेजिटेबिल आदि की बहुत मिलावटें होने लगी हैं। असली बिल्कुल खालिस घृत मिलना बहुत दुर्लभ हो गया है। अतः जहां तक हो सके अपने घर में ही गाय, भैंस रखकर उसके उत्तम दूध, घी का सेवन करना चाहिए। यदि बाजार से घृत लेना भी पड़े तो बड़ी सावधानी से लेना चाहिए। आज ग्रामों के सीधे-साधे लोग भी दही में ही वेजिटेबिल घी मिला कर और फिर बिलोकर शुद्ध घी के नाम से बाजार में आकर चतुर लोगों को भी ठग लेते हैं। अतः घृत सदा या तो अपने किसी विश्वस्त व्यक्ति से लेना चाहिए अथवा मशीन से पास किया हुआ। घृत लेते समय जहां उसकी सुगन्ध की परीक्षा करनी चाहिए, वहां उसे खाकर के भी देखना चाहिए। वेजिटेबिल मिला हुआ घृत जीभ पर रखते ही चिप-चिप करने लगता है। अतः जितना अधिक चिप-चिप करे उतना ही समझिए उसमें मिलावट है।

१४—घृत को उतना ही तपाओ जिससे छाछ आदि दूर हो जाए। अधिक नहीं। अधिक तपाने से उसके पोषक तत्व (विटामिन) नष्ट हो जाते हैं।

१५—निम्न रोगों के लिए घृत लाभप्रद है—उन्माद, शूल, अफारा, फोड़ा, घाव, कब्जी, विसर्प, रक्तविकार, स्नायु की निर्बलता आदि।

१६—तपेदिक, कफ सम्बन्धी रोग, आम, ज्वर, हैजा, नशे से उत्पन्न रोग मोटापा और मन्दाग्नि में घृत नहीं लेना चाहिए।

१७—भोजन के लिए जहां तक हो सके ताजा घृत का ही सेवन करना चाहिए।

१८—रोग निवृत्ति के लिए जितना पुराना घृत होगा, उतना ही अच्छा है। मूर्छा, मृगी, कोढ़, उन्माद, कर्ण रोग, नेत्र रोग, सिर दर्द, सूजन, योनि सम्बन्धी रोग, बवासीन, गोला और पीनस रोग में पुराना घृत लाभप्रद है। किन्तु, थकावट, निर्बलता, पीलिया आदि रोगों में ताजा घृत ही अधिक लाभकारी है।

१६—सौ वार का धोया घृत घाव, खुजली, फोड़े, फुन्सी तथा रक्तविकार के अन्य उपद्रवों के लिए बहुत लाभप्रद है।

दूध के पौष्टिक पकवान

अब हम पाठकों के लाभार्थ दूध के कुछ सुन्दर, स्वादिष्ट तथा पौष्टिक पकवानों को प्रस्तुत करेंगे। आशा है कि प्रिय पाठक इन्हें अपने गृह पर तैयार करवाकर अपने शरीर को स्वस्थ तथा बलवान बनायेंगे।

१—**पौष्टिक तथा बलदायक खीर**—दूध खालिस ४ सेर, बढ़िया चावल एक पाव, शक्कर तीन पाव, इलायची के दाने ६ माशे, अर्क केवड़ा ६ माशे, चांदी के वर्क ६ माशे, किशमिश आधी छटांक, महीन कतरी हुई गिरी ३ तोले, कतरा हुआ पिस्ता १$\frac{1}{2}$ तोला, बादाम का छिलका उतरी तथा कतरी हुई मींगी २ तोले।

चूल्हे पर कलई के पात्र अथवा कड़ाही में दूध को डालकर औटाओ, फिर उसमें चावलों को छोड़ दो और कड़छी से हिलाते रहो। जब चावल गल जायें, उसमें किशमिश, गिरी, बादाम, पिस्ता तथा इलायची के दाने छोड़ दो, खूब घुट जाने पर नीचे उतार लो। फिर चीनी मिलाकर अर्क, केवड़ा डाल दो, फिर कलई की रकाबियों अथवा थालियों में डालकर ऊपर चांदी के वर्क चिपका दो। कुछ ठण्डी होने पर खाओ। यह खीर बलप्रद, पौष्टिक तथा वीर्यवर्धक है। इसमें चाहें तो केशर भी डाल सकते हैं। केशर के अभाव में पकते समय थोड़ी हल्दी डाल दें।

२-- अत्यन्त पौष्टिक तथा वीर्यवर्धक दलिया—दूध २ सेर, दलिया गेहूं का (यदि जौं का हो तो और भी उत्तम है) १ पाव, शक्कर १½ पाव, किशमिश २ तोला, गिरी बारीक २ तोला, बादाम की गिरी १½ तोला, चिरौंजी १½ तोला, इलायची ३ माशा, केशर के अभाव में हल्दी पिसी हुई २ तोला, घृत ½ पाव। दो सेर दूध में ½ जल डालकर गर्म करो। फिर जिस पात्र में दलिया बनाना हो, उसमें घृत डाल दलिया को भून लो। जब दलिया सूजी की तरह सिक जाए तब उसमें दूध डाल दो और धीमी-धीमी आंच पर पकाओ और हिलाते जाओ। जब दलिया भली प्रकार गल जाए तब मेवे, इलायची तथा पिसी हल्दी डाल दो। भली प्रकार घुट जाने पर शक्कर मिलाकर उतार लो तथा कुछ ठंडा होने पर खाओ। यह दलिया अत्यन्त स्वादिष्ट, पौष्टिक, बलदायक तथा वीर्यवर्धक है।

३—अत्यन्त स्वादिष्ट तथा पौष्टिक श्रीखंड—बढ़िया खालिस भैंस के ४ सेर दूध को मिट्टी के पात्र में जमा दो। प्रातः उस दही को कपड़े में डालकर खूंटी आदि पर टांग दो। जब सब पानी निकल जाए. तब उसमें उचित मात्रा में शक्कर, इलायची, लौंग, काली मिर्च तथा केसर पीसकर डाल दो और खूब हिलाकर एक जान कर दो। चाहें तो उसमें थोड़ा देशी कपूर भी डाल सकते हैं। यह श्रीखंड वीर्यवर्धक, बलकारक, पौष्टिक. अत्यन्त स्वादिष्ट तथा वात-पित्त नाशक है। जठराग्नि को प्रदीप्त करता है। गर्मी को शांत करता है और बद्धकोष्ठता को हटाता है।

४—एक ही पात्र में भिन्न-भिन्न चार स्वादों वाला स्वादिष्ट दही—दही जमाने का हलवाइयों जैसा चौड़ा हण्डा लो। उसमें टीन या लकड़ी का एक दही के पात्र जितना ही चोफाका बनाकर इस प्रकार फिट कर दो कि उस हण्डे के चार खाने बन जायें। अब खालिस भैंस या गाय का दूध लेकर खूब औटाओ और उन चार खानों में भर दो। एक खाने में शक्कर मिला दो, एक में नमक, एक में भुना हुआ जीरा, काली मिर्च बारीक पीसकर मिला दो। दही जमाने लायक दूध हो जाने पर जामन दे दो। जब दही के जमने में कुछ कसर हो, अर्थात् गाढ़ा नहीं जमा हो, तब उसमें से खांचा निकाल दो और गाढ़ा जमने दो। जब खूब गाढ़ा जम जाए, तब उसमें से चारों स्वादों वाले दही को

स्वयं भी आनन्द से खाओ तथा अपने इष्ट मित्रों तथा अतिथियों को भी खिला कर उनके मन तथा रसना को आनन्दित करो।

दूध आदि से रोगों का इलाज

गाय आदि के दूध, दही से रोगों की निवृत्ति होती है, यह आपको दूध आदि के गुणों से ज्ञात होगा। अब हम प्रिय पाठकों के लाभार्थ दूध आदि के द्वारा कुछ रोगों का इलाज लिखते हैं। आशा है कि पाठक इससे लाभ उठायेंगे।

१—बल, पुरुषाथ तथा वीर्य वृद्धि का प्रयोग—गाय के दूध में असम भाग घी और शहद अथवा शक्कर मिलाकर पीने से खूब बल, वीर्य तथा पुरुषार्थ की वृद्धि होती है और शरीर बलवान तथा स्वस्थ बनता है।

२—आंख की जलन—गाय के दूध में कई तह की हुई पट्टी भिगोकर आंख पर रखो और ऊपर फिटकरी को पीसकर बुरक दो।

३—हिचकी—ओटाए हुए गर्म-गर्म गाय के दूध को पीने से हिचकी बंद हो सकती है।

४—जुकाम—गाय के गर्म दूध में मिश्री और काली मिर्च डालकर पीने से जुकाम दूर हो जाता है।

५—आधा शीशी—गाय के दूध में बादाम की खीर बनाकर खाने से आधा शीशी का दर्द दर होता है।

६—सिर दर्द—गाय के दूध में सोंठ घिसकर लगाने से भयंकर सिर दर्द भी दूर हो जाता है।

७—सूर्य उदय के साथ घटने-बढ़ने वाला सिर दर्द—सूर्य उदय से पूर्व चार-पांच दिन तक गाय का दही खाने से उपर्युक्त दर्द ठीक हो जाता है।

८—आंव तथा मरोड़ के दस्त—दही में थोड़ा लवण भास्कर चूर्ण डालकर उसके साथ चावल खाओ।

९—बादी का पेट दर्द—पीपल तथा सेन्धा नमक पीसकर मठे (छाछ) में डालकर पीजिये।

१०—**पित्त की शिकायत**—मठे में काली मिर्च तथा देशी खांड मिला कर पीजिये।

११—**कफ के कारण पेट दर्द**—सफेद जीरा, पीपल, सोंठ, काली मिर्च, अजवायन, सेन्धा नमक, इन सबको पीस, मठे में मिला कर लीजिए।

१२—**वात, पित्त, कफ तीनों दोषों के कारण पेट दर्द**—जवाखार, सेन्धा नमक, सोंठ, पीपल, काली मिर्च पीसकर मठे में डालकर लीजिए।

१३—**कब्ज**—काला नमक, अजवायन पीसकर मठे के साथ लीजिये।

१४—**संग्रहणी**—कुछ दिन लगातार गाय के मठे में लवण भास्कर चूर्ण डालकर लीजिए।

१५—**सब प्रकार की बवासीर**—चीते के जड़ की छाल को पीसकर कोरी हांडी के अन्दर चारों ओर चिपका दो और उसी हांडी में गाय के दूध का दही जमाओ। इस हांडी की दही का मठा कुछ दिन लगातार पीने से सब प्रकार की बवासीर ठीक हो जाती है।

१६—**सब प्रकार के उदर रोग**—यदि भोजन के पश्चात् भुना जीरा और सेन्धा नमक मिलाकर प्रतिदिन मठा पिया जाये तो पेट में किसी प्रकार का भी रोग न हो।

१७—**शरीर की जलन**—सौ बार धोये हुए घृत को शरीर पर मलो।

१८—**हाथ-पैर के तलुओं की जलन**—गाय का घृत तलुओं पर मलो।

१९—**गर्मी के कारण सिर दर्द या उष्णता**—गाय का मक्खन सिर पर मलो।

२०—**आंख में अन्धेरा तथा नजर की कमजोरी**—गाय के घृत में काली मिर्च पीसकर डाल दो तथा उसे रातभर चांद की चांदनी में खुला हुआ टांग दो और सायं-प्रात. प्रतिदिन खाओ।

२१—**नकसीर**—गाय का ताजा घृत नाक में टपकाओ।

२२—**हिचकी**—(क) पुराने चावलों के भात में गाय का गर्म घृत डाल कर खाओ।

(ख) अथवा वैसे ही सुहाता-सुहाता गाय का गर्म घृत पियो।

(ग) घृत में सेन्धा नमक डालकर सुंघाओ।

२३—घाव, चमड़ा छिलना, चोट का लगना—कुछ दिन लगातार पुराना घृत मलो।

२४—लाल-लाल चकते, दरौरे, खाज—सौ बार धोये हुए घृत की मालिश कर, गाय के गोबर से बदन को रगड़ो, फिर बेसन मलकर स्नान कर लो।

२५—चौथिया ज्वर—पुराने घृत में हींग डालकर सुंघाओ।

जहां शरीर को सुन्दर और स्वस्थ बनाने के लिए दूध, दही, घृत आदि का सेवन करने से शरीर को बलवान् बनाना आवश्यक है, वहां यदि कुछ बाह्य कारणों से सौन्दर्य में कुछ कमी है तो उसे भी दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। अत: नीचे हम कुछ सौन्दर्यवर्धक उपाय लिख रहे हैं।

कुछ सौन्दर्यवर्धक उपाय

१—चेहरे की झाइयां—बड़ के पेड़ की जटा और मसूर की दाल को दूध में पीसकर मुख पर लेप करो।

२—तिल—करंजादि तेल तथा कुंकुमादि तेल मिलाकर लगाओ।

३—मस्से—हल्दी, चूना, अदरक को पीसकर मस्सों पर लेप करो।

४—मुख को गौर वर्ण बनाना—सरसों को पीसकर मुख पर लेप करो अथवा हल्दी का उबटन करो।

५ बाल काले करना—छोटी दूधी (एक प्रकार की बूटी) और कनेर की छाल जल में पीसकर लेप करो।

६—पसीना बन्द करना—पक्की इमली तथा उसके फूलों को पीसकर शरीर पर लेप करने से पसीना आना कम हो जाता है तथा शरीर से दुर्गन्ध आना भी रुक जाता है।

७—मुख के मुहासे—(क) भुने हुए चनों का चूर्ण ६ माशे, मुर्दासंग ३

माशे और सफेद काशगरी ४ माशे सबको पीस, छानकर बकरी के दूध में खरल करके रात्रि को मुहासों पर लगाकर सो जाओ। प्रातः नीम के पत्तों में औटाए जल से धोकर फिर शुद्ध जल से धो डालो। इस प्रकार कुछ दिन लगातार करने से मुहासे दूर होकर मुख साफ निकल आता है।

८—शरीर का सौन्दर्य—(क) चन्दन, केसर, अगर, लोध, खस सुगन्धवाला इनको मिला पर पानी डालकर खूब बारीक पीस लो और उबटन की तरह शरीर पर लगाओ। कुछ रोज लगातार लगाने से शरीर सुन्दर बन जाता है।

(ख) सन्तरे के छिलकों को सुखा लो, फिर बारीक पीसकर रख लो। स्नान से पूर्व इसमें से थोड़ा-सा चूर्ण लेकर उसमें थोड़ा आटा और तेल व पानी डालकर गाढ़ा सान लो और ५-१० मिनट तक रखा रहने दो, फिर शरीर पर भली प्रकार से मलकर गुनगुने जल से भली प्रकार मलकर स्नान कर लो। इससे शरीर सुन्दर, मुलायम तथा कोमल बन जाता है।

९—त्वचा को गोरी, सुन्दर तथा कोमल बनाना—बादाम, खसखस और गोला इनको बराबर-बराबर लेकर मलाई में पीसो तथा दिन में दो बार शरीर पर उबटन के समान मलो। कुछ दिन में ही प्रत्यक्ष लाभ मालूम होगा।

४

पूर्णा वामेन तिष्ठन्तः

हम गत स्तम्भों में वेद मन्त्र के तीन वचनों अर्थात् मयोभुवः, उर्जस्वन्तः तथा पयस्वन्तः की विशद व्याख्या कर आए हैं। अब 'पूर्णा वामेन तिष्ठन्तः' इस मन्त्र भाग की व्याख्या प्रिय पाठकों के सम्मुख रख रहे हैं।

हमारे परिवार उपर्युक्त तीनों गुणों से पूर्ण होते हुए भी यदि वे सत्+आचरण से पूर्ण नहीं अर्थात् उनके जीवन सदाचार और श्रेष्ठ व्यवहार रूपी सुमनों की सुरभि से सुरभित नहीं। उनमें उत्तम आचार तथा आदर्श व्यवहार का अभाव है। वे सन्मार्गगामी नहीं अर्थात् परिवार का प्रत्येक प्राणी सतपथ का पथिक नहीं और अपने-अपने कर्त्तव्य और दायित्व को निभाने में तत्पर तथा जागरूक नहीं, तब भी यह गार्हस्थ्य जीवन 'आदर्श गार्हस्थ्य जीवन' नहीं बन सकता। उसमें वह सौख्य व शान्ति नहीं आ सकती जो एक आदर्श परिवार में होनी चाहिए। वे स्वस्थ, बलवान् और दधि, पय आदि पौष्टिक पदार्थों से पूर्ण होने पर भी यदि सत्कर्त्तव्य परायण और सत्पथगामी न हों तो भी वह परिवार एक उच्चादर्श से पूर्ण, आदर्श परिवार नहीं कहला सकता और न ही वह उस परम शान्ति और पूर्ण आनन्द का भोग कर सकता है, जो कि उसका परम लक्ष्य और अन्तिम उद्देश्य है। इसीलिए वेद ने आदर्श गार्हस्थ्य जीवन का चौथा लक्षण बताया है।

"पूर्णा वामेन तिष्ठन्तः"

अर्थात् हमारे ये परिवार सन्मार्ग से पूर्ण हों। सदा सत्पथ परायण हों। कभी कुपथगामी न बनें। परिवार का प्रत्येक नर-नारी, माता-पिता, पति-पत्नी, भाई-बहिन, पुत्र-पुत्री, सास-ससुर आदि प्रत्येक सदस्य अपने-अपने कर्त्तव्यों को पूर्णतया निभाने वाले हों। उनके ऊपर जो अपने परिवार के प्रत्येक सदस्य

के प्रति दायित्व हैं, कुछ कर्त्तव्य हैं, उन्हें पूरी निष्ठा, पूर्ण उत्साह तथा लगन से निभाने वाले हों। तभी हमारे परिवार वास्तव में सच्चे आदर्श परिवार बन सकते हैं। अब हम परिवार के माता-पिता, पति-पत्नी आदि कतिपय विशिष्ट पुरुषों के कुछ विशेष कर्त्तव्यों का संक्षिप्त विवरण करेंगे। आशा है आदर्श तथा सुखी गार्हस्थ्य जीवन के अभिलाषी घर का प्रत्येक सदस्य उसके पालन में पूर्ण तत्पर होगा।

सन्तान के प्रति माता-पिता के कर्त्तव्य

जो युवक-युवती आदर्श माता-पिता बनना चाहते हैं, उनका कर्त्तव्य है कि वे अपने शरीर को स्वस्थ, बलवान् और निरोग बनाकर अपने विचारों तथा व्यवहारों को वैसा ही बनायें, जैसा कि वे अपनी सन्तान चाहते हैं तथा गर्भाधान द्वारा अपनी भावी सन्तान को वैसा ही जन्म देने का प्रयत्न करें। उत्तम सन्तान के अभिलाषी माता-पिता के कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में आर्यसमाज के प्रवर्त्तक ऋषि दयानन्द ने निम्न महत्वपूर्ण विचार प्रकट किए हैं—

"माता-पिता को अति उचित है कि गर्भाधान से पूर्व और पश्चात् मद्य आदि मादक द्रव्य, दुर्गन्धित, रूखे और बल बुद्धि नाशक पदार्थों को छोड़कर शान्ति, आरोग्य, बल, बुद्धि, पराक्रम तथा सुशीलता और सुसभ्यता आदि गुणों को धारण करें। वैसे ही घृत, दूध, मिष्ट, अन्न, पान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें, जिससे रज, वीर्य सब दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों और सन्तान स्वस्थ, निरोग, बलवान्, गुणवान् और बुद्धिमान् हो।

गर्भावस्था में माता का कर्त्तव्य

जब गर्भ रह जाए तब स्त्री का कर्त्तव्य है कि वह कोई मादक द्रव्य जैसे शराब आदि, रेचक द्रव्य, हरड़ आदि, क्षार पदार्थ—अति लवण आदि, अत्यम्ल अधिक खटाई आदि, रूक्ष चने आदि, तीक्ष्ण—अधिक लाल मिर्च आदि का सेवन कभी न करें। घी, दूध, मिष्ठान्न, सोमलता अर्थात् गिलोय आदि औषधियां, चावल, दही, दूध, गेहूं, उड़द, मूंग, अरहर आदि अन्न तथा पुष्टि और आरोग्यकारक शाक, मेवे तथा फल आदि का सदा सेवन करे। भोज्य पदार्थों में ऋतु के अनुसार गर्मी में सफेद इलायची तथा सर्दी में केशर आदि डालकर खाए। दही, दूध में सोंठ और ब्राह्मी बूटी का सेवन विशेषकर करें।

सदा युक्त आहार, व्यवहार करें। वेद, गीता, रामायण आदि धार्मिक ग्रन्थों का स्वाध्याय करें। महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ें। अपने कमरे में ऐसे ही महापुरुषों तथा आदर्श देवियों के चित्र लगाकर प्रातःकाल उठ, उनका दर्शन करें। जहां तक हो सके गर्भावस्था में पति-पत्नी ब्रह्मचर्य का पालन करें। इससे निश्चय ही सन्तान स्वस्थ, बलवान्, गुणवान्, तेजस्वी और बुद्धिमान होती है।

सुश्रुत के शारीरिक अध्याय में लिखा है कि माता के गर्भ में नौ मास तक माता के रस से ही सन्तान की देह बनती रहती है। इसीलिए गर्भवती स्त्री रजस्वला नहीं होती। मांस, रुधिर, चर्वी, मज्जा, हृदय, जिगर, तिल्ली, गुर्दा आदि अंग तो माता के रज से ही बनते हैं। इसीलिए यह अंग 'मातृज' कहलाते हैं और दाढ़ी, मूंछ' रोहें, हड्डी, रक्तवाहिनी नाड़ियां, सन्धि बन्धन नाड़ी और शुक्र ये सब पिता के वीर्य से बनते हैं। इसीलिए बालक के ये अंग 'पितृज' कहलाते हैं। सुश्रुत के उक्त वचन के अनुसार सन्तान का हृदय माता के रज से बनता है।

अतः माता का जैसा हृदय होगा सन्तान का भी वैसा ही हृदय बनेगा। इसीलिए गर्भवती माता को अपने हृदय में कोमलता, दया, प्रेम,सहानुभूति, ईश्वर भक्ति और सदाचार के भावों का ही संचार करना चाहिए जिससे भावी संतान का हृदय भी उपर्युक्त गुणों से ही युक्त बने। गर्भवती माता को सदा स्मरण रखना चाहिए कि यदि वह अपने हृदय में निर्दयता, धैर्यहीनता, दम्भ, मान, मिथ्या अहंकार आदि रजोगुणी भावों को रखती है, तो सन्तान निश्चय ही द्वेष, मात्सर्य, क्रोध, तीक्ष्णता, निष्ठुरता आदि गुणों से युक्त ही उत्पन्न होगी और यदि वह अपने हृदय में अधर्म, अन्याय, अज्ञान, अतिनिद्रा, आलस्य, प्रमाद, नास्तिकता आदि तमोगुणी वृत्तियां रखेगी, तो सन्तान भय, तन्द्रा, मूर्खता, धर्म और ईश्वर से विमुख नास्तिक विचारों वाली ही उत्पन्न होगी। अतः गर्भवती माता को उपर्युक्त रजोगुणी तथा तमोगुणी विचारों को अपने हृदय से सर्वथा दूर कर देना चाहिए।

बालक के जन्म के पश्चात् कर्त्तव्य

जब बालक का जन्म हो तब जन्म से लेकर दूध पिलाने तक माता

अपने आहार, व्यवहार को ठीक रखे और ऐसे पदार्थों का सेवन करे जिससे वह स्वयं भी स्वस्थ और निरोग रहे तथा बालक भी उसके रोगनाशक तथा बलकारक दूध को पीकर स्वस्थ, बलवान् तथा बुद्धिमान बने। जब बालक, बालिका बड़े होकर कुछ समझने लगें और बोलने लगें तब माता, पिता उन्हें सब प्रकार के उत्तम व्यवहार और धर्माचरण की शिक्षा दें तथा स्वयं भी सदाचरण में तत्पर रहकर उनके सम्मुख आदर्श उपस्थित करें। माता, पिता अपनी सन्तान को कैसी शिक्षा दें ? इस सम्बन्ध में भी महर्षि दयानन्द ने बहुत सुन्दर उद्‌गार प्रकट किए हैं। उन्हें हम अपनी सन्तान को सर्व गुण सम्पन्न बनाने के अभिलाषी सज्जनों के लाभार्थ नीचे उद्धृत कर रहे हैं—

"बालकों को माता, पिता सदा उत्तम शिक्षा करें, जिससे सन्तान सभ्य हो और शरीर के किसी भी अंग से कुचेष्टा न करने पावे। जब बोलने लगे, तब उसकी माता बालक की जिह्वा जिस प्रकार कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण कर सके, वैसा उपाय करे······वाणी मधुर, गम्भीर, सुन्दर तथा उसके स्वर, मात्रा, पद, वाक्य, संहिता, अवसान भिन्न-भिन्न तथा स्पष्ट प्रतीत होवें। जब बालक कुछ बोलने व समझने लगे, तब सुन्दर वाणी और बड़े, छोटे मान्य माता, पिता, राजा, विद्वान् आदि से भाषण, उनसे यथायोग्य व्यवहार और उनके पास बैठने आदि की भी शिक्षा देवें, जिससे कहीं उनका अयोग्य व्यवहार न होकर, सर्वत्र प्रतिष्ठा हुआ करे।

जिस प्रकार सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय और सत्संग में रुचि करे, माता, पिता वैसा प्रयत्न करते रहें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई-झगड़ा, हर्ष, शोक, किसी पदार्थ में लोलुपता (लालच), ईर्ष्या, द्वेष आदि न करे। उपस्थेन्द्रिय के स्पर्श और मर्दन से वीर्य की क्षीणता तथा नपुंसकता होती और हाथ में दुर्गन्ध भी होती है, इससे उसका स्पर्श न करें। सदा सत्य भाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नता आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार से हो, करावें। जब पांच-पांच वर्ष के बालक, बालिका हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें और अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। उसके पश्चात् जिससे अच्छी शिक्षा, विद्या, धर्म, परमेश्वर, माता-पिता, आचार्य, विद्वान्, अतिथि, राजा, प्रजा, कुटुम्ब, बन्धु, भगिनी, भृत्य आदि से कैसे वर्तना इन शिक्षाओं के वेद मन्त्र, श्लोक, सूत्र,

गद्य, पद्य भी अर्थ सहित कण्ठस्थ करावें जिससे सन्तान किसी धूर्त के बहकाने में न आवे और जो-जो विद्या और धर्म के विरुद्ध भ्रान्ति जाल में फसाने वाले व्यवहार हैं, उनका भी उपदेश कर दें, जिससे उनके कोमल हृदयों पर भूत-प्रेत आदि मिथ्या बातों का विश्वास न हो।.........

जब सन्तान बड़ी होकर समझदार हो जाये तब वीर्य रक्षा में आनन्द और नाश से दुःख की प्राप्ति होती है यह भी जतला दें जैसे देखो जिसकी देह में सुरक्षित वीर्य होता है तब उसका आरोग्य, बुद्धि, बल, पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। वीर्य रक्षा का यह उपाय है कामुक विषयों की चर्चा, विषयी तथा दुर्व्यसनीजनों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री तथा पुरुष को विषय दृष्टि से देखना, परस्पर एकांत सेवन, सम्भाषण और स्पर्श आदि वीर्य-नाशक कर्मों से ब्रह्मचारी तथा ब्रह्मचारिणी सदा पृथक् रहकर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त करें। देखो ! जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता वह नपुंसक, महाकुलक्षणी और जिसे वीर्य नाश के कारण प्रमेह आदि रोग हो जाते हैं, वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह, साहस, धैर्य, बल, पराक्रम आदि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है।

देखो ! यदि तुम सुशिक्षा और विद्या के ग्रहण करने और वीर्य को रक्षा करने में इस समय चुकोगे तो पुनः इस जन्म में तुमको यह अमूल्य नमय हाथ न आवेगा। जब तक हम तुम्हारे माता-पिता आदि गृह कार्यों के करने वाले जीवित हैं, तब तक तुमको अवश्य विद्या ग्रहण और शरीर का बल बढ़ाना चाहिए। इसी प्रकार माता-पिता चोरी, जारी, आलस्य, प्रमाद, मादक द्रव्यों का सेवन, मिथ्य भाषण, हिंसा, क्रूरता, ईर्ष्या, द्वेष, मोह आदि दोषों को छोड़ने और सत्याचार को ग्रहण करने की भी शिक्षा करें।

अपनी सन्तान का कल्याण चाहने वाले माता-पिता! आशा है, ऋषि दयानंद के उपर्युक्त स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य अमूल्य उपदेशों तथा सुन्दर शिक्षाओं को अपने बालक-बालिकाओं को दे उन्हें सुसंस्कृत, सभ्य, सुशील तथा सच्चे नागरिक बनाने में पूर्ण प्रयत्न करेंगे।

बालक-बालिकाओं के हृदय में भूत-प्रेत तथा डाकिनी आदि का मिथ्या भय

भी नहीं बिठाना चाहिए। इससे बच्चे बचपन से ही डरपोक स्वभाव के हो जाते हैं और बड़े होकर भी उनके मन से भूत, प्रेतों का भय नहीं निकलता। अतः माता-पिता का कर्त्तव्य है कि वे अपने बच्चों को सदा निर्भय रहना सिखायें। यदि कभी भय भी दिलाना हो तो एकमात्र परमेश्वर का ही भय दिलायें और उन्हें समझायें कि देखो बच्चो! परमेश्वर हर जगह रम रहा है। वह सबके भले-बुरे कर्मों को देखता है। अतः तुम्हें कोई भी ऐसा कर्म नहीं करना चाहिये कि जिससे परमेश्वर तुम पर रुष्ट हो जाए।

बच्चों की शिक्षा

बालक-बालिकाओं को समान रूप से ही शिक्षा देनी चाहिए। शिक्षा से मेरा अभिप्राय बी० ए०, एम० ए० पास कराना नहीं। अपितु लड़के को सच्चा नागरिक तथा लड़कों को सच्ची आदर्श गृहिणी बनाने से है। न केवल समान रूप से, अपितु कन्याओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना चाहिए क्योंकि यदि लड़का सुशिक्षित न बना तो एक कुल की ही बदनामी तथा हानि है। किन्तु यदि लड़की सुशिक्षित तथा सच्ची गृहिणी न बनी तो दोनों कुलों का बिगाड़ तथा नाश है और यदि वह सुशिक्षित अर्थात् सच्ची गृहिणी बन गई तो न केवल माता-पिता के मुख को उज्ज्वल करेगी, प्रत्युत दोनों कुलों को कीर्तिरूपी चांदनी से चमका देगी।

याद रखो! बालक रूपी दीपक तो केवल एक ही घर का उजाला करता है, किन्तु कन्या रूपी दीपक ही वह दीपक है जो दोनों कुलों को अपने पावन प्रकाश से चमका देता है। अतः कन्याओं की शिक्षा पर विशेष ध्यान देना माता-पिता का परम कर्त्तव्य है। कई नासमझ माता-पिता यह कहते सुने गए हैं कि लड़कियां तो पराया धन हैं। फिर इन्हें सुशिक्षित बनाने से क्या लाभ? ऐसे नासमझ माता-पिता को यह भली प्रकार जान लेना चाहिए कि खोटा रुपया देने वाले की ही सदा बदनामी होती है, लेने वाले की नहीं। अतः कन्याओं को भोजन पाक, सीना-पिरोना आदि गृह कार्यों की, मनोरंजन के लिए संगीत आदि की तथा पिता और पति गृह में किसके साथ कैसा व्यवहार करना आदि की शिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

जहां बच्चों को लाड़, प्यार और प्रेम से रखना चाहिए वहां माता-पिता का वात्सल्य प्रेम भी उन्हें सदा प्राप्त होते रहना चाहिए। किसी भी भारी अपराध के करने पर या किसी दोष या दुर्व्यसन के दूर करने के लिए उन्हें बार-बार प्रेमपूर्वक समझाने पर भी यदि वे बाज नहीं आते तो ऐसी अवस्था में उनकी ताड़ना करना भी आवश्यक है, जिससे कि भविष्य में किसी अनुचित कर्म करते समय उन्हें उस ताड़ना का भय उस दुष्कर्म से बाज रख सके।

सन्तान-हितैषी माता-पिता को एक बात और ध्यान में रखना आवश्यक है कि वे अपनी सन्तान को जैसा बनाना चाहते हैं, अपने जीवन को भी वैसा ही आदर्शमय बनाकर उनके सामने रखें। वे यदि चाहते हैं कि मेरा बालक असत्य न बोले, चोरी न करे, बीड़ी-सिगरेट मद्यपान आदि दुर्व्यसनों से दूर रहे, किसी से गाली या अपशब्द न बोले, किसी के साथ व्यर्थ में लड़ाई, झगड़ा तथा कलह न करे तो उन्हें भी अपने जीवन से उपर्युक्त अवगुणों को निकाल देना चाहिए तथा जिन सद्गुणों को वे अपनी सन्तान में सदा विकसित हुआ देखना चाहते हैं, उन सद्गुण रूपी सुमनों को अपने जीवनोद्यान में भी सदा विकसित करने का प्रयत्न करना चाहिए।

सन्तान को माता-पिता सदा निम्न बातों की शिक्षा अवश्य दें—

सत्य भाषण, सज्जन संगति, कुसंग परित्याग, ब्रह्मचर्य पालन, सेवाभाव, सरलता, सादगी, नम्रता, ईश्वर विश्वास, प्रसन्नता, आत्मविश्वास, धैर्य, कर्त्तव्यपालन, पुरुषार्थ, सुविचार, सदाचार इन गुणों का संचार यदि बच्चों में में हो गया तो निश्चय समझिए कि आपकी सन्तान एक उच्च आदर्श की स्वामिनी बन जाएगी।

बच्चों का शारीरिक विकास

बालकों, बालिकाओं के शारीरिक विकास पर भी पूरा ध्यान देना चाहिए। उनका खान-पान, रहन-सहन इस प्रकार का होना चाहिए कि बालक सदा हृष्ट, पुष्ट, स्वस्थ तथा निरोग बने रहें और उत्तरोत्तर उनके शरीर का विकास होता जाए। छोटे बालकों को स्वेच्छापूर्वक खेलने, कूदने का सदा अवसर देना चाहिए। स्वेच्छापूर्वक खेलने, कूदने से बालक सदा हृष्ट, पुष्ट, प्रसन्न तथा

नीरोग बने रहते हैं। हां ! माता-पिता को सदा इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि वे किसी भी अंग से कोई कुचेष्टा न करने पायें और न ही ऐसे बच्चों के साथ खेलें कि जिनकी संगत उन्हें कुपथगामी बनाने में सहायक हो।

बच्चों के रोग

बच्चों के स्वास्थ्य का पूरा ध्यान रखने पर भी यदि कोई बालक या बालिका बीमार हो जाए तो बालरोग प्रकरण में लिखी औषधियों में से उनके रोगानुसार औषधि तैयार करके देनी चाहिए। यदि रोग अधिक बढ़ा हुआ हो तो किसी योग्य वैद्य या डाक्टर को दिखाना चाहिये। यन्त्र, मन्त्र, तावीज या टोने आदि के चक्कर में नहीं पड़ना चाहिए। याद रखिये रोगों की निवृत्ति उनकी चिकित्सा अर्थात् पथ्यपूर्वक औषध सेवन से ही होगी। जादू-टोनों आदि से नहीं।

विशेषकर छोटे बालकों का, जो अपने मुंह से अपने रोग या पीड़ा को प्रकट नहीं कर सकते, विशेष ध्यान रखना चाहिए। उनके रोने तथा भिन्न-भिन्न अंगों की चेष्टाओं से उनके रोग को पहिचानने का प्रयत्न करना चाहिए। कुछ मुख्य पहिचानें हम नीचे दे रहे हैं—

१—यदि बालक पेट के दबाने पर अधिक रोए तो समझना चाहिए कि उसके पेट में दर्द है। ऐसी हालत में—

(क) हींग को पानी में घिसकर बालक की नाभि के आस-पास लेप करें।

(ख) आग पर हाथ गर्म करके बालक के पेट को सेकें।

(ग) इलायची तथा सौंफ के दो-दो दाने माता के दूध में पीस कर पिला दें।

२—यदि बालक रोता हो और मुख से झाग भी आती हो तो समझना चाहिये कि बालक को जूं, मच्छर या खटमल आदि कोई जीव काट रहा है। तब जहां किसी जन्तु ने काटा हो, वहां थोड़ा-सा घी मल देना चाहिए या कंडे की राख मल देनी चाहिए। बालक चुप हो जाएगा।

३—यदि कोई बालक निरन्तर रोता ही चला जाए और बहुत प्यार-पुचकार से भी रोना बन्द न करे तो समझना चाहिए कि बालक को कहीं बहुत

दर्द हो रहा है। बालक के जिस अंग में भी दर्द होगा, वह उसे बार-बार छूएगा और दूसरों के छूने पर रोएगा। ऐसी अवस्था में बाल रोग में बताई औषध का सेवन करना चाहिए।

४—यदि बालक सोकर उठे और रोए, जीभ निकाले, इधर-उधर दूध की की तलाश में सिर हिलाए। तब समझना चाहिए कि बालक भूखा है। तब उसे दूध पिला देना चाहिए।

इस प्रकार जो माता-पिता अपने बच्चों की शिक्षा, दीक्षा और स्वास्थ्य पर पूर्ण ध्यान देंगे, उनकी सन्तान, स्वस्थ, बलवान्, नीरोग, सदाचारी, धर्मपरायण तथा सच्ची नागरिक बनेगी, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

पुत्र-पुत्रियों का माता-पिता के प्रति कर्त्तव्य

अब जिस माता-पिता नेगर्भ से लेकर बड़े होने तक अपने पुत्र-पुत्रियों का पालन-पोषण किया, उन्हें बलवान्, गुणवान् तथा विद्वान् बनाया, स्वयं सहस्रों कष्ट सहे पर उन्हें दुःख नहीं होने दिया, प्रत्युत् सदैव सुखी तथा प्रसन्न रखने का प्रयत्न किया। उनका भी अपने परम हितैषी माता-पिता के प्रति कुछ दायित्व है। अतः बड़े होकर उनका परम कर्त्तव्य है कि वे उस दायित्व को पूरा करने का पूर्ण प्रयत्न करें। उनकी सेवा, शुश्रूषा में सदैव तत्पर रहें। उनका सदैव आदर और सम्मान करें। उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न दें और न ही अपने किसी व्यवहार से उनका अनादर और अपमान करें। उनके सम्मुख असभ्य और उच्छृङ्खल न बनें। उनकी आज्ञा में सदैव तत्पर रहें। प्रातः उठ कर उन्हें चरण छूकर नमस्ते करें। यदि माता-पिता कहीं बाहर से आए हों या स्वयं कहीं बाहर जाना हो तो उस समय भी उनके चरण छूकर नमस्ते करें। अपने जीवन से कोई ऐसा कर्म न करें जिसमें उनकी आत्मा को ठेस पहुंचे और वे दुःखी हों।

बालको ! याद रखो, माता-पिता ही तुम्हारे सच्चे देवता हैं। भला जिस माता ने तुम्हें अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया उससे बढ़कर और देवता कौन होगा। अतः तुम उन्हें अपना सच्चा हितैषी तथा आराध्य देव समझकर उनकी आराधना अर्थात् आदर-सत्कार में कमी न रखना। हमारे प्राचीन ऋषियों ने

भी तुम्हें यही उपदेश दिया है—"मातृदेवो भव, पितृदेवो भव"।

यह पुस्तक चूंकि उन युवक-युवतियों के लिए है, जो कि अब बड़े होकर कमाने योग्य हो गये हैं तथा गार्हस्थ्य जीवन में पदार्पण करने वाले हैं। अतः मैं उन युवक-युवतियों से पुनः साग्रह अनुरोध करूंगा कि तुम बड़े होकर अपने माता-पिता के अहसान को मत भूल जाना। उनके प्रति सदा अपने कर्त्तव्य को स्मरण रखना। जब तुम्हारी माता तुम्हारे छोटे भाई का या अन्य कोई माता अपने छोटे बालक का पालन-पोषण कर रही हो तो उसे देखकर अपने बचपन को याद करना और मन में विचार करना कि एक दिन हमारी माता ने भी इसी प्रकार लाड-प्याड़ से पालन-पोषण किया था। स्वयं अनेक कष्ट सहे थे, किन्तु तुम्हें सुखी रखा था। तुम्हारे मलमूत्र वाले गीले वस्त्रों में स्वयं सोई थी पर तुम्हें बिछौने पर सुलाया था। उस समय यह विचार कर तुम अपनी पूज्य माता के चरणों में नतमस्तक हो जाना।

भला जिस मातृशक्ति ने हमें यह अमूल्य मानव जीवन प्रदान किया, स्वयं अनेक कष्ट सहे पर हमें सुख प्रदान किया, स्वयं हमारे मलमूत्र से भरे गीले वस्त्रों पर सोई पर हमें सुखमय सूखे बिछौने पर सुलाया, मीठी-मीठी लोरियां और प्रेमभरी थपकियां देकर हमारे दुःख, दर्द तथा कष्ट को हरा, बीमार अवस्था में हमारे दुःख से दुःखी हो, रातों जागकर हमारी सेवा की, जब हम किसी बीमारी या दुःख में दुःखी हो रोते और चिल्लाते थे तो वह व्याकुल हो जाती थी, हमारे दुःख हरने के हेतु वह अपने सुख की तनिक परवाह नहीं करती थी। ऐसी देवोपम, परम हितैषिणी माता यदि हम सेवा न करें, उसका आदर, सम्मान और सत्कार न करें, उसकी आज्ञा पालन में सदैव तत्पर न रहें, अपने दुर्व्यवहार तथा कटु वचनों द्वारा उसकी अन्तरात्मा को असन्तुष्ट और दुःखी बनायें तो फिर हमसे बढ़कर नीच तथा कृतघ्न और कौन होगा ?

इसी प्रकार जिस पिता ने हमारा पालन-पोषण किया, रात-दिन एक कर अपनी भूख, प्यास, सर्दी, गर्मी की भी परवाह न कर हमारी खातिर कमाया; आप भूखा रहा पर हमें खिलाया, आप नंगा रहा, फटे-पुराने वस्त्र पहने पर हमें हमारी इच्छा के अनुरूप पहनाया। हमारी खातिर अनेक कष्ट उठाए;

देश, विदेशों में भटके। सिर पर भारी कर्जे का बोझा उठाकर भी हमरी आवश्यकताओं को पूर्ण किया। हमें पढ़ाया, लिखाया, विद्वान् तथा गुणवान् बनाया। न चाहते हुए भी लोगों की अनेक खुशामदें कर हमें नौकरी आदि दिलवा कर हमारे भविष्य को उज्जवल किया।

भला ऐसे साक्षात् देवमूर्ति पिता के प्रति यदि हम अपने कर्त्तव्य का पालन न करें, उनकी सेवा-शुश्रूषा का विशेष ध्यान न रखें, उनकी आज्ञाओं की अवहेलना करे, उनके हितकर तथा कल्याणप्रद वचनों की भी अवहेलना करें तो हमसे बढ़कर नराधम और पामर प्राणी और कौन होगा ? इसलिए हमारा यह परम कर्त्तव्य है कि हम अपने पूज्य माता-पिता के प्रति अपने दायित्व तथा कर्त्तव्य को न भूलें। अपने सद्व्यवहार से उनकी आत्मा को शांति और सुख पहुंचायें। अपनी कमाई को उनकी ही कमाई समझ पहले उनकी आवश्यकताओं को पूर्ण करें। ऐसा व्यवहार कभी न करें कि जिससे उनके कोमल हृदय को दुःख और ठेस पहुंचे।

प्रिय युवक-युवतियो! देखो! जो जन इस जीवन में मातृ ऋण और पितृ ऋण से उऋण नहीं होता, उसे न इस लोक में सुख और शान्ति मिलती है और न ही परलोक में। अतः मातृऋण और पितृऋण को चुकाना पुत्र-पुत्रियों का परम कर्त्तव्य है।

अभी तक हमने सन्तान का माता-पिता के प्रति तथा माता-पिता का संतान के प्रति क्या कर्त्तव्य होना चाहिए इसका विवेचन किया है। किन्तु आदर्श माता और आदर्श पिता बनने से पूर्व उनका आदर्श पत्नी और आदर्श पति बनना परम कर्त्तव्य है। विना आदर्श पत्नी और आदर्श पति के बने, वे आदर्श माता-पिता नहीं वन सकते। आदर्श पति, पत्नी वे तभी बनेंगे जबकि अपने परिवार के प्रति, जो उनके कर्त्तव्य और जिम्मेदारियां हैं, उन्हें पूर्ण करने का पूरा प्रयत्न करें।

पत्नी का कर्त्तव्य

आदर्श पत्नी

एक आदश पत्नी का क्या कर्त्तव्य है ? अब हम इसकी विवेचना करेंगे। वास्तव में जैसी गृहदेवी होगी, वैसा ही गृह का निर्माण होगा। यदि गृहदेवी

आदर्श गृहिणी है तो वह गृहस्थ भी निःसन्देह आदर्श गृहस्थ ही होगा और यदि गृहस्वामिनी आदर्श गृहिणी नहीं, गार्हस्थ्य जीवन में उसके जो कर्त्तव्य हैं या उसके ऊपर दायित्व हैं, उनको पूरा नहीं निभाती तो वह आगे चलकर कभी भी आदर्श माता नहीं बन सकती। वास्तव में घर की गृहलक्ष्मी नाम ही घर है। ईंट, पत्थर की बनी ऊंची-ऊंची इमारतों का नाम या घर की धन-सम्पत्ति का नाम घर नहीं। बुद्धिमानों ने कहा भी है—

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृह मुच्यते।

अर्थात् विज्ञजन घर का नाम घर नहीं कहते, प्रत्युत् घर की गृहिणी का नाम ही घर बताते हैं। क्योंकि आदर्श पत्नी के बिना घर की ऊंची-ऊंची बिल्डिंगें, घर की धन-सम्पत्ति और वैभव कभी भी पारिवारिक जीवन को सुख-मय नहीं बना सकते। इसके विपरीत यदि घर की गृहिणी वास्तव में गृहलक्ष्मी है अर्थात् आदर्श गृहिणी है तो घास-फूस की झोपड़ी में रहने वाला निर्धन परिवार भी सुख और चैन की जिन्दगी बसर कर सकता है और अपने गार्हस्थ्य जीवन को आदर्श तथा सुखमय गार्हस्थ्य जीवन बना सकता है।

अब हम एक आदर्श पत्नी का पारिवारिक जीवन कैसा होना चाहिए। परिवार के पति, सास, ससुर, देवर, जेठ आदि के प्रति उसके क्या कर्त्तव्य हैं, इस सम्बन्ध में कुछ प्रकाश डालेंगे। अथर्ववेद में पत्नी को उपदेश देते हुए कहा गया है—

स्योना भव श्वशुरेभ्यः स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनाऽस्यै सर्वस्यै विशे स्योना पुष्टायैषां भव॥

अर्थात्—'हे गृह स्वामिनी! तू अपने सास, ससुर, देवर, जेठ आदि के लिए सुख प्रदान करने वाली बन। तू अपने पति को सुख देने वाली बन और जितने भी घर में छोटे-बड़े प्राणी हैं, उन सबको सुख देने वाली बन और इन सबके पालन-पोषण में तत्पर रहकर इन सबके जीवनों को सुखमय बना।' वेद के शब्दों में एक आदर्श पत्नी अपने सुन्दर व्यवहार से घर के सब प्राणियों को सुख पहुंचा कर ही अपने गार्हस्थ्य जीवन को आदर्श और स्वर्ग समान बना सकती है।

पत्नी का पति के प्रति कर्त्तव्य

एक आदर्श गृहिणी का सबसे पहला कर्त्तव्य उसके अपने पति के प्रति है जिसकी कि वह अर्धाङ्गिनी बनी है और उसे अपना आधा अंग बनाकर अपने हृदय को उसके हृदय के साथ एकाकार बनाया है। दूसरे शब्दों में जिसे उसने अपना पूज्य आराध्यदेव चुना है। प्राचीन शास्त्रों में कहा गया है कि स्त्री के दो ही आराध्य देवता हैं—एक सब देवों के देव महादेव परमेश्वर और दूसरा पति। अतः जो स्त्री प्रभु की अपने हृदय मन्दिर में उपासना नहीं करती, उसका भजन, पूजन और कीर्तन नहीं करती अर्थात् उस प्रभु के गुणानुवाद गाकर उसके चरणों में नतमस्तक नहीं होती तथा जो अपने पतिदेव की सेवा-शुश्रूषा तथा उसका आदर-सत्कार नहीं करती, वह चाहे अन्य लाखों देवी-देवताओं की पूजा क्यों न करे, वह कभी भी इहलोक तथा परलोक में सुख-शान्ति को प्राप्त नहीं हो सकती।

इसके विपरीत जो देवी अपने घर में प्रभु की भक्ति अर्थात् उसकी स्तुति, प्रार्थना और उपासना करती है और सदा अपने पति की सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रही है, उसे अपना पूज्यदेव समझकर उसका आदर, सम्मान और सत्कार करती है, वह चाहे अन्य किसी भी देवी-देवता की पूजा न करे, उसका इहलोक तथा परलोक सदा सुखमय बना रहता है। अतः पत्नी का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने पति की सेवा में सदैव तत्पर रहे। अपने प्रेममय मधुर व्यवहार से उसे सदा प्रसन्न रखे। कटु वचनों से अथवा दुर्व्यवहार से उसके हृदय को ठेस न पहुंचाए।

पति की हितकर तथा उचित आज्ञा की अवहेलना तथा उल्लंघन न करे। सदैव उसके पालन में तत्पर रहे। यदि पति की कोई बात उसकी समझ में न आए तो उसे प्रेम से समझाए। उसके कारण पति से लड़ाई-झगड़ा न करे। पति के भोजनाच्छादन आदि का सदैव ध्यान रखे। जो खाद्य पदार्थ या अन्य कोई वस्तु प्रति को प्रिय हो, उसके बनाने या प्रस्तुत करने में आनाकानी न करे। हां, पति यदि किसी अभक्ष्य पदार्थ या मादक द्रव्य का दुर्व्यसनी है तो उसे उससे दूर रखने के लिए प्रेमपूर्वक बार-बार समझाती रहे। प्रथम प्रेम और

श्रद्धा से पति को भोजन खिलाने के पश्चात् स्वयं भोजन करे। पातिव्रत धर्म का सदा पालन करे। पति को ही अपना सच्चा सखा तथा प्रेमपात्र समझकर उसे ही अपना दाम्पत्य प्रेम प्रदान करे। किसी कवि ने क्या ही अच्छा कहा है—

सा भार्या या गृहे दक्षा, सा भार्या या प्रजावती।
सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या पतिव्रता॥

अर्थात्—'वही सच्ची पत्नी है जो घर के सब काम-काज में दक्ष है, जो उत्तम, वीर, धर्मात्मा, सदाचारी सन्तान की जननी है। जो पति परायण तथा पतिव्रता है।"

ऐसी देवी ही वास्तव में सच्ची लक्ष्मी है। किसी कवि ने क्या ही सुन्दर कहा है—

यावै भार्या शुचिर्दक्षा भर्त्तारमनुगामिनी।
नित्यं मधुर वक्त्री च सा रमा न रमा रमा॥

अर्थात्—"जो स्त्री सदा शुद्ध, पवित्र रहती है, जो घर के सब काम-काज में दक्ष है, जो सदा पति की अनुगामिनी बनकर उसकी आज्ञा पालन में तत्पर रहती है, जो सदा प्रेममय मधुर वचन ही बोलती है, वास्तव में वही सच्ची लक्ष्मी है।' ऐसी पतिव्रता देवियों के लिए ही सन्त तुलसीदास ने कहा है—

एक धर्म एक व्रत नेमा। काय, वचन, मन पतिपद प्रेमा॥

ऐसी पतिव्रता लक्ष्मी अपने पति के लिए केवल पत्नी ही नहीं रहती, वह तो अपने पति का सर्वस्व बन जाती है। इसका किसी विद्वान् ने बहुत सुन्दर वर्णन किया है। वह लिखता है—

क र्येषु मन्त्री करणेषु दासी, भोज्येषु माता शयनेषु रम्भा।
धर्मानुकुला क्षमया धरित्री, षाड्गुण्यमेतद्धि पतिव्रतानाम्॥

सच्ची पतिव्रता देवी, केवल पत्नी ही नहीं प्रत्युत् उपर्युक्त कवि के वचनानुसार वह छः रूपों को धारण करती हुई पति की सेवा में सदैव तत्पर रहती है। वह घर के सब काम-काजों में पति को उचित परामर्श तथा पूर्ण सहयोग देने के कारण उसकी मन्त्री बन जाती है। जब वह अत्यन्त प्रेम और स्नेह भरे

हाथों से पति को भोजन खिलाती है तो वह मानो माता का रूप धारण कर लेती है। शयनागार में वह साक्षात् रम्भा बन जाती है। धर्मानुकूल गार्हस्थ्य व्यापार में वह पत्नी कहलाती है तथा पति के प्रति क्षमाशील बनकर वह मानो अपने पति की धाया अर्थात् दासी का रूप धारण कर लेती है। यही पति-व्रता देवी का सच्चा स्वरूप है। ऐसी पतिपरायण देवियां जहां पति के सुख और आराम का कारण वनती हैं, वहां स्वयं भी सदा सुख और शांति को प्राप्त करती हैं।

पतिपरायण पत्नी को एक बात और ध्यान में रखनी चाहिए। वह जो भी हार-श्रृंगार करे, सुन्दर आभूषण और बढ़िया कपड़े पहने, वे केवल पति के लिए ही हों। पति की प्रसन्नता उसके हार-श्रृंगार का मुख्य उद्देश्य हो। कई स्त्रियां घर में पति के समीप तो मैले-कुचैले कपड़े पहनती हैं, बाल बिखर-बिखरकर भोज्य पदार्थों तक पहुंच जाते हैं। कभी-कभी तो उन्हें कंघी तक के भी दर्शन नहीं होते। किन्तु जब वे बाजार या पर-गृह आदि में पधारने के लिये घर से निकलती हैं तो खूब बन ठनकर, बढ़िया से बढ़िया वस्त्र और आभूषण पहनकर। घर में जिन बालों को कंघी भी नसीब नहीं होती, अब सिर पर बढ़िया खुशबूदार तेल, नाना प्रकार के क्लिप, एक नहीं, चार-चार चोटियां निकालकर चलती हैं। जिस मुख को घर में जल का छींटा भी नसीब नहीं होता, अब उस पर क्रीम, पाउडर, लवैण्डर और न जाने क्या-क्या बवंडर लगाया जाता है।

तात्पर्य यह है कि वे अपने हार-श्रृंगार से अपने पति को रिझाना नहीं चाहतीं प्रत्युत पर-पुरुषों के सम्मुख उसका प्रदर्शन करना चाहती हैं। इससे जहां मन में विलासिता के विकृत विचार उत्पन्न होते हैं, वहां पति भी उनसे प्रसन्न नहीं रहता और न ही पति की उनमें रुचि तथा आकर्षण रहता है। सी स्त्री से, जो कि पति को अपने हार-श्रृंगार से, उत्तम वस्त्राभूषणों से प्रसन्न नहीं रखती, उससे पति प्रेम करनेकी बजाय हमेशा उदासीन रहता है। ऐसी अवस्था में जहां दोनों का दाम्पत्य जीवन सुखमय नहीं बीतता, वहां सन्तान भी प्रथम तो उत्पन्न नहीं होती और यदि होती भी है तो रोगी, कमजोर, निस्तेज तथा निर्बुद्धि होती है। मनु ने कहा है

यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् ।
अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजननं न प्रवर्त्तते ।।

अर्थात्—यदि स्त्री में पुरुष की रुचि न हो स्त्री अपने व्यवहार से पुरुष के चित्त को प्रसन्न न रखने वाली हो। ऐसी अवस्था में पुरुष के प्रसन्न न रहने के कारण सन्तान उत्पन्न ही नहीं होती। इसके विपरीत—

सन्तुष्टो भार्यया भर्त्ता, भर्त्रा भार्या तथैव च ।
यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ।।

अर्थात्—"जिस कुल में पत्नी से पति और पति से पत्नी सदा प्रसन्न रहती है, वहां निश्चित ही हमेशा कल्याण बना रहता है।" अतः स्त्री का यह परम कर्त्तव्य है कि वह सदा ऐसा व्यवहार करे कि जिससे पति सदा उसे अपनी प्रिय अर्द्धाङ्गिनी समझ उससे प्रेम तथा उसका वशवर्त्ती बना रहे। अब हम पति-परायण पत्नियों के लाभार्थ उन व्यवहारों को संक्षेप से लिखते हैं कि जिनके करने ने पति सदा पत्नी का वशवर्त्ती बन जाता है—

१—प्रिय वचन

पत्नी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने पति से सदा प्रियवचनों का ही प्रयोग करे। कभी भूलकर भी अपने मुख से कटु तथा कठोर वचन न बोले। पति को यदि किसी समय क्रोध भी आ जाए तो भी उसका प्रतिकार क्रोध से न करे। पति की क्रोधावस्था में या तो उसे प्रेम से समझाए अथवा बिल्कुल मौन धारण कर ले। ऐसा करने पर जैसे मस्तिष्क पर ठण्डे जल के छींटे देने पर उसकी गर्मी शान्त हो जाती है, उसी प्रकार पति का क्रोध भी स्वयं शांत हो जायेगा।

२—स्वातन्त्र्य-परित्याग

विवाह होते ही स्त्री पति की अर्धाङ्गिनी बन जाती है। जैसे शरीर की सब इन्द्रियां यदि परस्पर एक-दूसरे की वशवर्त्तिनी होकर कार्य करती हैं तो शरीर के सब काम सुचारु रूप से चलते रहते हैं। उसी प्रकार स्त्री को पति का आधा अंग समझकर उसे अपने पति के आधीन रहकर उसकी सम्मति से ही सब काम करने चाहिए। यदि पति उसे सब प्रकार से स्वाधीन भी कर दे तो

भी आदर्श पत्नी का कर्त्तव्य तो यही है कि वह जो भी कार्य करे पति से पूछ कर, उसकी सम्मति से ही करे।

खेद से लिखना पड़ता है कि आज पाश्चात्य शिक्षा में दीक्षित हमारी भारतीय देवियां भी यह कहने लगी हैं कि हम पति के आधीन क्यों रहें ? क्या हम मनुष्य नहीं ? या हम गाय, भैंस हैं कि पति के आधीन रहें। मानो किसी के आज्ञानुवर्तिनी होना, उनकी सम्मति में गाय, भैंस बन जाना है। मानो पति अनुगामिनी सीता, सावित्री, दमयन्ती आदि प्राचीन आदर्श देवियां मनुष्य कोटि में थीं ही नहीं। दुःख से लिखना पड़ता है कि आज भारतीय नारी भी उस पाश्चात्य लेडी का अनुकरण करना चाहती है, जो पति के चाय तैयार करके न देने या उसका बूट साफ न करने पर जज के सामने जाकर पति से अपना तलाक नामा पेश कर देती है और इसी का नाम आज की शिक्षित नारी समाज में "स्त्री स्वातन्त्र्य" रख दिया गया है।

मैं विनम्र भाव से भारतीय शिक्षित नारी से पूछना चाहता हूं कि क्या उपर्युक्त स्वतन्त्रता का उपभोग करने वाली पाश्चात्य नारियां आज सुखी हैं ? क्या उन्हें वह शान्ति और गार्हस्थ्य जीवन का आनन्द उपलब्ध है कि जिसका दिव्य दर्शन पति-परायणा सीता, सावित्री आदि प्राचीन देवियों ने किया था, जिन्हें राजपाट के आनन्द के सामने पति की सहचारिणी बन बीहड़ जंगलों में भटकना हजारों गुणा अधिक आनन्द और शान्ति देने वाला प्रतीत होता था। अतः अपने गार्हस्थ्य जीवन को आदर्श तथा सुखमय बनाने की अभिलाषिणी पत्नी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने पति की आधीनता को आधीनता न समझ सदा उसकी आज्ञानुवर्तिनी बन कर ही रहे।

३—सत्य तथा सरल व्यवहार

पतिपरायण पत्नी का यह तीसरा परम कर्त्तव्य है कि वह अपने पति के साथ सदा सत्य का ही व्यवहार करे। किसी भी बात को पति से छुपाकर न रखे। पूछने पर सदा सत्य ही बोले, जो बात जैसी हो उसे वैसे ही सरलतापूर्वक कह दे। कभी भी छल-कपट तथा अमृत व्यवहार न करे। जो स्त्री किसी गुप्त बात को पति से छुपाकर रखती है, पूछने पर सत्य-सत्य नहीं कहती,

प्रत्युत अपने वाक् छल से उसे छुपाने का प्रयत्न करती है वह भगवान् के दरबार में तो पाप की भागिनी बनती ही है, किन्तु यदि पति को उसके छल-कपट और असत्य व्यवहार का पता लग जाता है, तो वह सदा के लिए पति की अविश्वास पात्र बन जाती है तथा पति प्रेम से वंचित रह जाती है। छल-कपट तथा असत्य का व्यवहार करने वाली स्त्री पर पति कभी भी प्रसन्न नहीं होता। अतः अपने पतिदेव के साथ छल-कपट को छोड़ सदा सत्य और सरलता का ही व्यवहार रखना आदर्श पत्नी का परम कर्त्तव्य है।

४—पति निन्दा परित्याग

मनुष्य के अन्दर जहां गुण होते हैं, वहां एक आध अवगुण के होने की भी सम्भावना है क्योंकि मनुष्य अल्पज्ञ है। अर्थात् थोड़ा ज्ञान रखता है इसलिए उससे भूल हो जाना सम्भव है। पति चाहे कितना भी अच्छा हो, सर्वगुण सम्पन्न हो, फिर भी जाने अनजाने उससे भूल हो जाना सम्भव है। वह नासमझी के कारण किसी के बहकाने में आकर पत्नी से यदा-कदा दुर्व्यवहार भी कर सकता है। ऐसी अवस्था में पति-परायण-पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह अपने पति की बुराई या त्रुटि का दूसरों के सामने ढिंढोरा न पीटती फिरे और न ही कभी दूसरों के सामने पति की निन्दा करे।

बल्कि जब भी वह कभी अपने पति के अन्दर कोई दोष या त्रुटि देखे, उसे नम्रतापूर्वक एकान्त में अपने पति के ही सामने रख दे और प्रेमपूर्वक उस दोष से दूर रहने की पतिदेव से विनम्र प्रार्थना करे। यदि पति को उसके सम्बन्ध में कोई गलतफहमी हो गई हो तो उसे समझाकर दूर करने का प्रयत्न करे। ऐसा करने से पति जहां अपनी पत्नी की प्रेमपूर्वक प्रकट की हुई त्रुटि या दोष को दूर करने का प्रयत्न करेगा, वहां वह अपनी पत्नी को पहले से भी अधिक प्रेम करने लगेगा। इतना ही नहीं, प्रत्युत यह कहकर कि देवी तुम धन्य हो, तुमने मुझ कुपथगामी को मेरा दोष दूर कर मुझे सत्पथगामी बना दिया। वह अपनी प्रिय पत्नी का भूरि-भूरि आभार प्रकट करेगा।

इसके विपरीत यदि पत्नी ने पति के दोषों का दूसरों के सम्मुख ढिंढोरा पीटना प्रारम्भ कर दिया तो पति चिढ़कर अपने दोष तो दूर करेगा नहीं,

उल्टा पत्नी के लिए पूर्णतः दुःखदायी बन जायेगा। हो सकता है कि वह पत्नी की निन्दा से चिढ़कर जिन दोषों या त्रुटियों को पत्नी उनसे दूर करना चाहती है उन्हें और अधिक मात्रा में करना प्रारम्भ कर दे। इससे पति-पत्नी दोनों का जीवन दुःखदायी बन सकता है। इसलिए पति-प्रिया पत्नी का यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपने पति के दोषों, अपराधों और त्रुटियों को परपुरुषों तथा स्त्रियों के सम्मुख निन्दा रूप में कभी भी उपस्थित न करे। हां, यदि प्रेमपूर्वक समझाने पर भी पति अपने दोषों और त्रुटियों से बाज न आए तो उसके सुधार की दृष्टि से, न कि निन्दा के विचार से, अपने सास-ससुर या ज्येष्ठ आदि के सम्मुख रखकर पति को समझाने की उनसे प्रार्थना कर सकती है। आदर्श पत्नी का पति के प्रति पांचवां कर्त्तव्य है—

५—पति की आज्ञानुवर्तिनी होना

पति-आदेश का पालन करना आदर्श पत्नी का परम कर्त्तव्य है। जिस प्रकार एक सच्चा शिष्य अपने पूज्य गुरु की आज्ञा का पालन करना परम कर्त्तव्य समझता है, उसी प्रकार एक सच्ची गृहिणी को अपने गृहपति की आज्ञा का पालन अपना कर्त्तव्य तथा परम सौभाग्य समझना चाहिए। कभी भूलकर भी ऐसा कोई कार्य या व्यवहार नहीं करना चाहिए जो पति की आज्ञा या इच्छा के प्रतिकूल हो। ऐसा करने से गृहपत्नी के जीवन से स्वच्छन्दता तथा उच्छृंखलता दूर होकर उसका जीवन संयमित तथा सुखदायी बन जायेगा जो कि अपने तथा पति के जीवन में सुख-शान्ति के संचार करने का कारण बनेगा।

हो सकता है कि पति कभी अज्ञान या भ्रमवश ऐसी भी कोई आज्ञा दे, जोकि वास्तव में मानने योग्य न हो। तब भी कम से कम उस समय तो पति को नकारात्मक उत्तर न देकर उसे स्वीकारात्मक उत्तर ही देना चाहिए और फिर प्रेमपूर्वक अपने उस आज्ञा के अनिष्ट परिणाम को पति के सम्मुख रखकर समझाना चाहिए। ऐसा करने पर समझदार पति स्वयं ही उस अपनी अभद्र आज्ञा पर पश्चात्ताप करेगा और भविष्य में इस प्रकार की आज्ञा के न देने का प्रण करेगा। किन्तु यदि पत्नी ने अपने पति की आज्ञा का एकदम ही लठमार उत्तर दे दिया, तो पति उस आज्ञा को जबरदस्ती मनवाने का प्रयत्न करेगा और इस

प्रकार पति-पत्नी दोनों का जीवन कलहपूर्ण तथा दुःखदायी बन जावेगा। अतः अपने पति की आज्ञानुवर्तिनी होना, यह एक आदर्श पत्नी का बहुत ही सुन्दर तथा सुखदायी गुण है।

६—नम्र तथा मधुर व्यवहार

आदर्श पत्नी का छठा कर्त्तव्य है—अपने पति के प्रति नम्र तथा मधुर व्यवहार का करना। स्त्री की अपेक्षा पुरुष के अन्दर रजोगुण की मात्रा का अधिक होना सम्भव है। इसीलिए उसके अन्दर स्त्री की अपेक्षा क्रोध की मात्रा का अधिक होना भी स्वाभाविक है। यही कारण है कि वह कभी-कभी क्रोधावेश में आकर न चाहते हुए भी कुछ अशिष्ट व्यवहार कर बैठता है। कभी-कभी पारिवारिक विषम परिस्थितियाँ भी उसके क्रोध को जागृत करने का कारण बन जाया करती है।

ऐसी परिस्थिति में यदि स्त्री भी पति की क्रोधावस्था में क्रोध ही करने लगे तो इस प्रकार का व्यवहार भारी कलह का कारण बन जाता है और कभी-कभी तो इसका इतना भयंकर परिणाम होता है कि यावज्जीवन पति-पत्नी दोनों के मध्य विद्वेष और ग्लानि की गहरी खाई खुद जाती है जो कि गृहस्थ जीवन को सदा के लिए दुःखमय बना देती है। इस परस्पर के विद्वेष का बच्चों के ऊपर भी बड़ा अनिष्ट प्रभाव पड़ता है। अतः आदर्श-पत्नी का कर्त्तव्य है कि पति जब भी किसी कारणवश क्रोधावेश में आ जाए, तो उसे अपने नम्र और मधुर वचनों से शान्त कर दे। पति की क्रोधाग्नि पर नम्रता तथा मधुरतारूपी शीतल जल का ऐसा सिंचन करे कि उसे विवश होकर शान्त ही होना पड़े। वचनों में मधुरता, नेत्रों में प्रेम तथा व्यवहार में नम्रता प्रचण्ड क्रोधाग्नि को भी शीतल जल के समान शान्त कर देती है। इसीलिए विवाह संस्कार में—

आपः शिवाः शिवतमाः शान्ताः शान्ततमाः

यह मन्त्र बोलकर वधू के ऊपर जल सिंचन किया जाता है। इसका तात्पर्य यही है कि इस वधू को पतिगृह में जाकर सबको अपने मधुर वचनों तथा प्रिय व्यवहार से जल के समान शान्ति प्रदान करनी होगी। विवाह

संस्कार में पति एक मन्त्र द्वारा वधू को कई प्रकार के बहुत सुन्दर उपदेश देता है। उनमें सबसे पहला उपदेश है—"अघोरचक्षुः" अर्थात् "हे देवि ! तुझे हमारे गृह में आकर अपने नेत्रों से घोरता अर्थात् क्रूरता और क्रोध को दूर कर देना होगा।" अतः अपने गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने की अभिलाषिणी सद्गृहिणी को अपने अन्दर से क्रोध की मात्रा को दूरकर सदा नम्रता, सरलता, मधुरता आदि सद्गुणों को ही धारण करना चाहिए।

७ -- पति सेवा

पति सेवा ही पतिपरायण पत्नी का परम लक्ष्य होना चाहिए। उसे पति-सेवा में सदैव तत्पर रहना चाहिए। उसमें कभी आलस्य या प्रमाद न करना चाहिए। कई स्त्रियां पति की खुशहाली में अर्थात् जब तक उसके पास धन, दौलत और सब प्रकार के भोग्य पदार्थ रहते हैं, तब तक तो पति की सेवा में तत्पर रहती हैं किन्तु यदि दुर्भाग्यवश पति निर्धन हो गया, रुपया-पैसा पास नहीं रहा, या अन्य भोग्य पदार्थ उसके पास नहीं रहे, ऐसी अवस्था में वे पति सेवा से विरत हो जाती हैं। चाहिए तो यह कि ऐसी अवस्था में वे पति की और अधिक सेवा करें तथा उसे धैर्य प्रदान कर उसके चित्त की उदासी को दूर करने का प्रयत्न करें। इसके विपरीत कई स्त्रियाँ तो पति की निर्धनावस्था को देख पतिगृह का परित्याग कर अपने पीहर में ही पधार जाती हैं।

वे इतना भी विचार नहीं करतीं कि जब मैं अपने पति की अर्धाङ्गिनी हूं तो मैं अपने पतिरूपी आधे अंग को दुःखी छोड़कर स्वयं कैसे सुखी रह सकती हूं। अतः सुख में, दुःख में, गरीबी में, अमीरी में हर अवस्था में पति सेवा में तत्पर रहकर उसे प्रसन्न रखना पतिपरायण पत्नियों का परम कर्त्तव्य है। सब प्रकार से पति को प्रसन्न रखने वाली देवी स्वयं भी प्रसन्न रहती है। इसीलिए कामशास्त्र में पति को सदा प्रसन्न रखने की कुछ कलाएं बताई गई हैं। पति-प्रसन्नता-प्रिय देवियों के परिचयार्थ हम उन्हें यहां दे रहे हैं—

पति को प्रसन्न रखने की कुछ कलाएं

१— पति के साथ दो कालिब एक जान होकर रहे। अर्थात् दोनों के शरीर भिन्न होने पर भी वह अपने को पति से अलग न समझे, २—छाया के

समान पति की सदा अनुगामिनी बनकर रहे। अर्थात् पति की आज्ञा के प्रतिकूल कोई कर्म न करे, ३—पति से निःस्वार्थ तथा निष्कपट प्रेम रखे। अर्थात् किसी स्वार्थ पूर्ति के लिए अथवा केवल दिखावे के लिए ही प्रेम नहीं प्रत्युत सच्चे हृदय से पति से प्रेम करे, ४ - परपुरुषों का संग न करे, ५ पति की अप्रसन्नता तथा उदासी को अपनी अप्रसन्नता समझे तथा उसके दूर करने का भरसक प्रयत्न करे, ६ अन्य देवी-देवताओं की पूजा, अर्चना छोड़कर, केवल पति की सेवा को ही सच्ची पूजा समझे, ७ —सदा पति के लिए हितकर कार्यों को ही करे। कभी भूलकर भी ऐसा कार्य न करे जिसमें पति का अहित होता हो, ८—पति की आज्ञानुवर्तिनी रहकर, उसकी सेवा-शुश्रूषा स्वयं अपने हाथों से करे। उसे नौकरों पर न छोड़े।

आशा है कि पति-प्रसन्नता की अभिलाषिणी देवियां उपर्युक्त बातों का अवश्य ध्यान रखेंगी। सम्भवतः आजकल की कई शिक्षित देवियां कहेंगी —आचार्य जी! आपने तो हमें बिल्कुल पति की दासी ही बना दिया। ऐसी देवियों से मेरा नम्र निवेदन है कि मैंने उपर्युक्त बातें आपको पति की दासी बनाने के लिए नहीं लिखीं, प्रत्युत पति को तुम्हारा दास बनने के लिए लिखी हैं। यदि आपके अपने पति के प्रति जो कर्त्तव्य हैं, जिनका मैंने ऊपर निर्देश किया है, उनका पालन करेंगी, तो यह निश्चय है कि पति आपका दास अर्थात् वशवर्ती बन जायेगा।

गृह देवियों के कुछ अन्य कर्त्तव्य

अब गृह देवियों के जो अन्य आवश्यक कर्त्तव्य हैं, उनका भी हम संक्षेप में निर्देश कर रहे हैं जिससे गृह देवियां इन व्यवहारों में प्रवीण होकर अपने गार्हस्थ्य जीवन को आदर्श तथा सुखमय बना सकें।

१— परिवार के अन्य व्यक्तियों के साथ व्यवहार

एक सद्गृहिणी का यह भी कर्त्तव्य है कि वह पति के अतिरिक्त परिवार में जो अन्य प्राणी हैं उनके साथ भी सद्व्यवहार करे। अपने सास-ससुर को माता-पिता समझकर उनकी तन-मन से सेवा करना, उनकी आज्ञा के अनुरूप चलना, उससे कभी कटु वचन न बोलना, सदा उनका आदर-सम्मान करना;

उन्हें अपनी सेवा तथा सद्व्यवहार द्वारा सदा प्रसन्न रखना, रुग्णावस्था में उनकी सेवा-शुश्रूषा में आलस्य और प्रमाद न करना एक आदर्श पत्नी का परम कर्त्तव्य है।

इसी प्रकार जेठ-जेठानी, देवर-देवरानी आदि जितने भी परिवार के सदस्य हैं, उनसे यथा योग्य आदर-सम्मान तथा प्रेमपूर्वक व्यवहार करना चाहिए। ऐसा करने से जहां स्त्री घर के सब सदस्यों की सुख-शांति का कारण बनती है, वहां वह स्वयं भी उनके आशीर्वाद से सदा फलती-फूलती है। परिवार का प्रत्येक प्राणी ऐसी सद्गृहिणी से प्रेम तथा उसका आदर-सम्मान करता है। इसीलिए विवाह के समय पति पत्नी को जहां अन्य शिक्षाएं देता है, वहां वह यह भी कहता है—

शन्नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे

हे प्रिय देवी! तुझे हमारे परिवार में चलकर जितने भी दो पांव वाले सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि मनुष्य प्राणी हैं तथा चार पांव वाले गाय, भैंस आदि पशु प्राणी हैं, उन सबका अपनी सेवा-शुश्रूषा द्वारा सदा कल्याण करने वाली बनना होगा।

२—अपने कार्य स्वयं करना

सद्गृहिणी का एक यह भी सत् कर्त्तव्य है कि वह घर के सारे काम-काज स्वयं अपने हाथ से करे। नौकरों पर न छोड़े। खेद से लिखना पड़ता है कि आजकल की शिक्षित बहुएं अपने घर के काम को भी अपने हाथ से करना भारी अपमान समझती हैं। स्वयं बैठी रहना और नौकरों पर हुक्म चलाती रहना, इसमें ही वे अपनी शान और बड़ाई समझने लगी हैं। वर्तमान पाश्चात्य शिक्षा के जहां अन्य कई दुष्परिणाम हमारे सम्मुख हैं, वहां एक यह भी भारी दुष्परिणाम है। आज देश के युवक-युवतियों ने शारीरिक कार्यों से पीछा छुड़ाने में ही अपना परम गौरव और बड़प्पन समझ लिया है। इसका भयंकर परिणाम आज हमें भुगतना पड़ रहा है।

जहां हमारे युवक ऊंची-ऊंची डिग्रियां प्राप्त करके भी अपने जीवन निर्वाह के लिए कोई स्वतन्त्र परिश्रमसाध्य धन्धा न कर नौकरियों के लिए

ही मारे-मारे फिर रहे हैं, वहां आज हमारी गृह देवियां भी अपने कामकाज को स्वयं न करने के कारण शरीर से रोगी, कमजोर तथा अस्त्रस्थ रहने लगी हैं—विशेष कर सम्पन्न परिवार की महिलायें जोकि खाती तो दुग्ध, घृत आदि पौष्टिक पदार्थ हैं किन्तु काम कुछ भी नहीं करतीं। दिनभर हाथ पर हाथ धरकर खाली बैठी रहती हैं। वे सदा ही रोगिणी तथा वास्तविक वल, शक्ति और स्फूर्ति से रहित, कमजोर तथा अस्वस्थ ही वनी रहती हैं—ऊपर से देखने में चाहे वे कितनी ही मोटी-ताजी तथा हृष्ट-पुष्ट मालूम क्यों न हों। इसके परिणाम जहां अपनी तथा अपने परिवार की शारीरिक शक्ति का नाश तथा रोगादि हैं, वहां धन का भी नाश है।

भला जिस प्रेम और श्रद्धा से गृह देवी पारिवारिक परिजनों को भोजन बनाकर खिला सकती है, क्या वैसा वेतनभोगी भृत्यजन बनाकर खिलायेंगे। फिर जो भोजन रुचिकर, स्वादिष्ट और स्वच्छ नहीं, जिसमें प्रेम तथा श्रद्धा की भावना नहीं, वह चाहे हलुवा-पूरी भी क्यों न हो, कभी भी बल, शक्ति और आरोग्य प्रदान नहीं कर सकता। इससे गृह-देवी तो पुरुषार्थ परित्याग के दुष्परिणाम से सदा बीमार बनी ही रहती है परिवार के अन्य सदस्य भी श्रद्धा और प्रेमपूर्वक न बनाया हुआ सुन्दर, स्वादिष्ट और पौष्टिक भोजन न मिलने से स्वस्थ और नीरोग नहीं रहते।

इसका दूसरा दुष्परिणाम है धन का नाश। रोगी परिवार पर सदा डाक्टरों और वैद्यों की फीसों तथा दवाइयों का बिल बनता ही रहता है और नौकरों को अलग वेतन का बिल चुकाना पड़ता है। परिणामतः परिमित आय वाले परिवार को आर्थिक विषम परिस्थितियां हमेशा घेरे रहती हैं। प्राचीन परिवारों की गृह-देवियां चक्की चलाना, पानी भरना, पात्र मांजना, दही बिलोना, भोजन बनाना, वस्त्र धोना आदि सभी कार्य अपने हाथों से करती थीं।

परिणामतः जहाँ वे स्वयं तथा उनका सारा परिवार स्वस्थ और नीरोग रहता था, वहाँ खर्चीला जीवन न होने से घर में धनाभाव भी नहीं रहता था। थोड़े-से धन से ही परिवार की परिमित आवश्यकताएं आसानी से पूर्ण हो जाती थीं।

आजकल की भाँति महीना समाप्ति से पूर्व ही उन्हें पैसे की खातिर पर-मुखापेक्षी नहीं रहना पड़ता था। अतः गृहदेवी का यह दूसरा परम कर्त्तव्य है कि वह अपने घर का सारा कामकाज अपने हाथ से करे। हां, यदि घर का कार्य पारिवारिक प्राणियों की प्रचुरता के कारण इतना अधिक हो कि उसे गृहदेवी स्वयं करने में असमर्थ हो, तथा प्रभु कृपा से पैसे की कमी न हो तो ऊपर के कामों के वास्ते नौकर भी रखा जा सकता है।

३—सन्तान का पालन-पोषण

अपनी सन्तान अर्थात् बालक-बालिकाओं का भली प्रकार से पालन-पोषण तथा संरक्षण करना गृहदेवी का तीसरा मुख्य कर्त्तव्य है। माता ही बच्चों का भली प्रकार से पालन-पोषण तथा संरक्षण कर सकती है। भगवान् ने जितना माता को अपनी सन्तान के प्रति वात्सल्य प्रेम दिया है, उतना पिता को नहीं। दूसरा—पिता तो अपने आजीविकोपार्जन तथा अन्य बाह्य कार्यों के करने में संग्लन रहता है। उसके पास इतना समय ही नहीं कि वह सन्तान की भली प्रकार से देख-रेख या पालन-पोषण कर सके। अतः यह कर्त्तव्य (ड्यूटी) माता का है। इसीलिए वेद ने गृहदेवी को अपने श्वसुरालय में साम्राज्ञी बनकर रहने की आज्ञा दी है।

अतः गृहदेवी का साम्राज्ञीपन इसी में है कि वह अपनी सन्तान का भली प्रकार से पालन-पोषण तथा संरक्षण करे। बच्चों के स्वास्थ्य का ख्याल, उनके शरीर, वस्त्र, स्थान आदि की सफाई, उन्हें हितकर पौष्टिक आहार देकर उनके शारीरिक बल तथा आरोग्य की वृद्धि आदि का पूरा ध्यान रखे।

४ - सन्तान को सभ्य, सुशील तथा सदाचारी बनाना

धर्मशास्त्रों में माता को बालक का सबसे पहला गुरु बताया गया है। इसलिए अपनी सन्तान को माता जितना सभ्य, सुशिक्षित तथा धर्मपरायण बना सकती है उतना पिता नहीं। अतः विदुषी माता का यह चौथा मुख्य कर्त्तव्य है कि वह अपनी सन्तान को हर प्रकार से योग्य बनाए। इस सम्बन्ध में पहले बहुत कुछ लिखा जा चुका है।

अब तक हमने अपने परिवार में एक सद्गृहिणी का क्या कर्त्तव्य है—इस पर प्रकाश डाला। अब एक सद्गृहपति का क्या कर्त्तव्य होना चाहिये—इस पर थोड़ा प्रकाश डालेंगे।

१—पत्नी के प्रति सदा आदर और प्रेम भाव का होना

पति का अपनी पत्नी के प्रति सबसे पहला और मुख्य कर्त्तव्य है कि वह अपनी पत्नी का आदर और सम्मान करे। उसे तुच्छ व नीच न समझे। जैसे दुर्भाग्य से रूढ़िप्रिय पुरुषों ने स्त्री जाति को मान रखा है। पति को यह भली प्रकार समझ लेना चाहिए कि पत्नी उसकी अर्धाङ्गिनी है। अतः यह कभी नहीं हो सकता कि एक ही शरीर का आधा अंग तो महान् और उच्च हो और आधा अंग तुच्छ और नीच। और जो ऐसा समझते हैं, एक दिन ऐसा आता है कि उन्हें भी उच्चता के शिखर से गिरकर तुच्छ और नीच ही बनना पड़ता है और जो अपनी अर्धाङ्गिनी को सदा उच्च पद प्रदान कर उसका सदा आदर और सम्मान करते हैं, तब एक दिन ऐसा भी आता है कि वे अपने किन्हीं अवगुणों या दोषों आदि के कारण पतनोन्मुख होने पर भी अपनी अर्धाङ्गिनी के संग से स्वयं भी महान् बन जाते हैं। आदर्श पति को यह गुर सदा याद रखना चाहिए कि यदि वह अपनी पत्नी की दृष्टि में देवता बनना चाहता है, यदि वह चाहता है कि उसकी पत्नी उसका देवता के समान आदर और सम्मान करे तो उसका भी यह परम कर्त्तव्य है कि वह अपनी धर्मपत्नी को तुच्छ और नीच न समझ सच्ची देवी समझे और देवी के समान ही उसकी पूजा अर्थात् आदर और सम्मान करे।

ऐसा करने से जहाँ पति-पत्नी में परस्पर प्रगाढ़ अनुराग और अटूट प्रेम बढ़ता है, जहां वे एक-दूसरे की संगति से परस्पर के दोषों और बुराइयों को दूर करते हुए अपने जीवन को उच्च और पवित्र बना सकते हैं, ऐसे आदर्श माता-पिता की सन्तान भी देवता तुल्य अर्थात् दैवी सम्पत्ति से सम्पन्न ही उत्पन्न होगी। क्योंकि माता-पिता अपने को जिस श्रेणी (क्लास) के योग्य बनायेंगे, आत्मारूपी मुसाफिर भी उसी क्लास का उनके यहां जन्म धारण करेगा। अतः अपनी गृहिणी का यथोचित आदर-सम्मान करना मानो अपने गृह में देवताओं को जन्म देना है। महाराज मनु ने कहा है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः

महाभारत शान्ति पर्व में तो मानव कहा ही उसे है, जो अपनी स्त्री का मान करता है।

२—स्त्री को सर्वथा बन्धन में न रखें

कई लोगों का विचार है कि स्त्री को कभी भी स्वतन्त्रता नहीं देनी चाहिए। "न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति" अर्थात् स्त्री कभी स्वतन्त्रता के योग्य नहीं; अतः उसे बचपन में माता-पिता के, जवानी में पति तथा वृद्धावस्था में अपने लड़कों के आधीन रहना चाहिए। दूसरे शब्दों में उसे अपनी सारी जिन्दगी में स्वतन्त्रता के सुख की अनुभूति नहीं करनी चाहिए। परतन्त्रता के पाशों में जकड़े ही जीवन के दिन गुजार देने चाहिए। जिन रूढ़िप्रिय पुरुषों ने कामिनी को पारतन्त्र्य रूपी कारागार के कठोर बन्धन में बांधने के नियम बनाए, वे सम्भवतः मनोविज्ञान की विचारधारा से सर्वथा अनभिज्ञ थे।

मनोविज्ञान का यह नियम है कि मनुष्य—चाहे वह पुरुष हो अथवा स्त्री—जबरदस्ती कठोरता के बन्धन में बांधने से उतना वशवर्ती नहीं बनता जितना प्रेम पाशों में बांधने से। अतः जो पति चाहता है कि उसकी अर्धाङ्गिनी सदा उसके आधीन रहकर उसकी वशवर्तिनी बनी रहे, उसे अपने प्रेम-पाश-रूपी बन्धन में ही बान्ध अपनी वशवर्तिनी बनाना चाहिए। स्वातन्त्र्य सुख का उपभोग करना प्रत्येक प्राणी का जन्मसिद्ध अधिकार है। आत्मा स्वरूप से ही स्वतन्त्र है। फिर भला कोई भी प्राणी परतन्त्र रहना कैसे पसन्द करेगा ?

अतः स्त्री को सर्वथा अपने मकान की चार-दीवारी रूपी कारागार का कैदी बना कर रखना उस पर घोर अन्याय करना है। किन्तु इसका अभिप्राय यह भी नहीं कि स्त्री को इतना स्वतन्त्र बना दिया जाए कि वह उच्छृङ्खलता की ओर ही अग्रसर होने लगे और अपने पति, सास, श्वसुर आदि किसी की परवाह ही न करे। अतः स्त्री को उचित नियन्त्रण में रखना आदर्श पति का परम कर्त्तव्य है। स्त्री को सर्वथा स्वाधीन कर देने से उसके जीवन में कई प्रकार के दोषों का आविर्भाव होना सम्भव है। स्त्री का सरल हृदय सुगमता से परचित्त पराधीन तथा वशवर्ती हो जाया करता है।

अतः उसके इस सरल स्वभाव का दुर्जन अनुचित लाभ उठाने का प्रयास किया करते हैं। ऐसी अवस्था में यदि स्त्री सर्वथा स्वाधीन तथा नियंत्रण-विहीन बन जाए तो दुर्जन स्त्री के उपर्युक्त सरल स्वभाव का दुरुपयोग कर उसे कुपथगामिनी बना सकते हैं। अतः आदर्श पति का कर्त्तव्य है कि वह अपनी जीवनसंगिनी को तो कठोर बन्धन में रखे और न ही उसे सर्वथा नियन्त्रण विहीन कर दे। इसी में पति-पत्नी दोनों का परम हित तथा पूर्ण कल्याण है।

५

ते नो जानन्त्वायतः

अभी तक हमने आदर्श गृहस्थ के वेदमन्त्रोक्त चार गुणों पर विचार किया। अब हम अन्तिम पांचवें आदर्श गृहस्थ जीवन के सद्गुण पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

आदर्श गार्हस्थ्य जीवन का पांचवां लक्षण है—"ते+नः+जानन्तु+आयतः" अर्थात् वे घर के लोग घर में प्रवेश करने वाले हमको भली प्रकार से जानें। इस मन्त्र भाग के दो बड़े सुन्दर अभिप्राय हैं। प्रथम यह कि हम अपने घर में बाहर से जैसी भी अवस्था में आएं उसे घर के लोग अपनी सूक्ष्म बुद्धि से जानकर हमारे साथ ही वैसा व्यवहार करें। बाबूजी आफिस से थके-मांदे आए हैं। चेहरे पर दिनभर के परिश्रम के कारण उदासीनता तथा थकावट प्रतीत हो रही है।

ऐसी अवस्था में एक आदर्श गृहिणी का कर्त्तव्य है कि वह अपने थके-मांदे उदासीन पति से इस प्रकार व्यवहार करे कि उसकी थकावट और उदासीनता ताजगी और प्रसन्नता में परिणित हो जाए। पतिदेव के घर में प्रवेश करते ही मधुर और प्रेममय शब्दों से स्वागत करे। घर में आते ही न तो उसे कोई शोक, रंज या लड़ाई-झगड़े की बात सुनाए और न ही आने के साथ ही उसके सम्मुख अपनी आवश्यकताएं पेश कर दे। थकावट दूर करने के लिए ऋतु के अनुसार ठण्डे या गर्म जल से हाथ-पैर धुलाये। यदि बहुत थकावट हो तो पैर तथा माथा दबाकर पतिदेव की थकावट को दूर करे। इसी प्रकार बाहर से आने वाले माता-पिता, सास-ससुर आदि के साथ भी उनके पुत्र-पुत्रियां, बहू

आदि यथोचित व्यवहार करें, जिससे गार्हस्थ्य जीवन गृहस्थी के लिए दुःखमय न होकर सुख और शान्ति का स्थान बन जाए।

आज हमारे परिवारों में इसके सर्वथा विपरीत होता है। पतिदेव थके-मांदे घर आए हैं। परन्तु श्रीमती जी आने से पूर्व ही तेवर चढ़ाये बैठी हैं और मन में सोच रही हैं—जरा उन्हें घर तो आने दो। ऐसी खरी-खरी सुनाऊंगी कि वे भी याद रखेंगे। वेचारे पतिदेव के घर में पैर रखते ही श्रीमती जी ने तड़क कर कहा—मैं तुम्हें कल से ही कह रही हूं कि घर में आटा नहीं है, दाल नहीं है। आज फिर खाली हाथ घर में घुस आये। खाने के लिए तो झट चौके में बैठ जाते हैं और सामान लाने के लिए मौत आती है। इसी प्रकार कभी साड़ियों की माँग करेंगी, कभी गहनों और बर्तनों आदि की। कभी घर के झगड़े सुनाने वैठ जायेंगी।

इस प्रकार अपने कटु वचनों तथा अशिष्ट व्यवहार से बेचारे उस थके-मांदे पति के हृदय को और अधिक चिन्तित तथा व्यथित कर देंगी। ऐसी पत्नियां मन में यह भी विचार नहीं करतीं कि शायद पतिदेव के पास पैसे न हों या आफिस में कार्याधिक्य के कारण देर हो जाने से फरमाइश को पूरा न कर सके हों। इन बातों का तनिक भी विचार न कर पति के घर में आते ही एकदम चण्डी का रूप धारण कर उसके जीवन को और अधिक दुःखी तथा चिन्तित बना देती हैं।

कहां तो वैदिक भाषा में घर को "शर्म" के नाम से पुकारा गया था अर्थात् जहां जाकर मनुष्य के सब दुःख और चिन्ताएं दूर होकर उसे सच्ची शांति प्राप्त हो और कहां घर में घुसते ही श्रीमती जी के उपर्युक्त कटु व्यवहार से वह दुःखी होकर मन में सोचता है कि क्या अच्छा होता यदि घर में आता ही नहीं। यही आजकल माता-पिता, सास-ससुर आदि के साथ होता है। यही कारण है कि आज हमारे परिवार परस्पर के दुर्व्यवहार से "शर्म" अर्थात् स्वर्ग नहीं, अपितु नरक के द्वार बन रहे हैं। इसीलिए वेद ने आदर्श गृहस्थ का छटा लक्षण बताया—"ते-नो-जानन्तु-आयतः।"

इस वेद वाक्य का एक और भी सुन्दर भाव है। वह यह कि जब हमारे घर की पुत्र-पुत्रियां बाहर से खेल-कूद कर या पढ़-लिखकर अथवा किसी से

मिल-मिलाकर वापस घर आएं तो उनके माता-पिता आदि संरक्षक उनकी आकृति तथा चेष्टाओं को देखते ही भली प्रकार जान जाएं कि वह किसी की बुरी संगत में फंसकर अपने ब्रह्मचर्य आदि को भंग तो नहीं कर आए। किसी बुरी सोहबत में बैठकर गाली देना, जुआ खेलना, नशा करना आदि कोई अवगुण तो नहीं सीख आए और यदि माता-पिता को तनिक भी अपनी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्म बुद्धि से उनकी आकृति या चेष्टाओं से उनके कदाचरण की प्रतीति हो जाए, तो उन्हें प्रेम से अथवा डांट-डपट से भविष्य में बुरी संगति से बचाने का पूर्ण प्रयत्न करें।

आजकल के माता-पिता इस पर तनिक भी ध्यान नहीं देते। विशेषकर धनी परिवार के माता-पिता। वे अपनी सन्तानों को खिलाते-पिलाते तो खूब हैं, किन्तु इतना खिलाने-पिलाने पर भी जब उनके बालक-बालिकाएं दिन-प्रति-दिन निर्बल तथा निस्तेज होते जाते हैं तो वे चिन्तित तो होने लगते हैं, किन्तु वे इस बात पर कुछ भी विचार नहीं करते कि ऐसा क्यों हो रहा है ?

जब हम अपने लड़के या लड़की को दुग्ध, घृत, फल, मेवे आदि पौष्टिक पदार्थों का सेवन कराते हैं तो क्या कारण है कि वे फिर भी निर्बल, निस्तेज तथा निर्वीर्य बनते जा रहे हैं और न ही वे अपने लड़के-लड़कियों से इसका कारण पूछते हैं। बल्कि ऐसी बातें पूछने में उन्हें लज्जा महसूस होती है। चाहे वे अपने बच्चों तथा बहू-बेटियों के सम्मुख कितनी ही कुचेष्टाएं करते रहें, कितनी ही गन्दी-गन्दी गालियां तथा अपशब्द क्यों न बोलते रहें। रेडियो से चाहे कितने गन्दे गाने उनके सम्मुख क्यों न सुनते रहें। इसमें उन्हें तनिक भी लज्जा तथा शर्म महसूस नहीं होती। किन्तु अपनी सन्तान के कल्याणार्थ उन्हें कुपथ से सुपथ पर लाने के लिए उनसे साफ-साफ पूछने में उन्हें शर्म अनुभव होने लगती है। यही कारण है कि आज हमारे लड़के तथा लड़कियां बुरी संगति में फंसकर अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं। नाना प्रकार के दुर्व्यसनों में ग्रसित हो छोटी अवस्था में ही अनेक प्रकार के भयंकर रोगों तथा निर्बलताओं का शिकार बन रहे हैं तथा अपने जीवन को दुःखमय बना रहे हैं। इसीलिए वेद में अपने जीवन का उत्थान तथा कल्याण चाहने वाले बालक-बालिकाओं द्वारा प्रभु से प्रार्थना की गई है—

भगवन्, जब हम खेल-कूदकर या किसी की संगत करके घर में प्रवेश करें तो हमारे माता-पिता हमारी चेष्टाओं आदि से इस बात को भली प्रकार जान लें कि हम बुरी संगति द्वारा अपना पतन कर आए हैं अथवा भली संगति द्वारा अपना कल्याण और उत्थान। उत्थान या कल्याण की अवस्था में जहां वे हमें अपने आशीर्वाद आदि से प्रोत्साहित तथा कल्याण मार्ग की ओर प्रेरित करें वहां पतन की अवस्था में ताड़ना आदि द्वारा हमें कुपथगामी होने से बचावें; जिससे भविष्य में हम बुरी संगति में फंसकर अपने जीवन को नष्ट न करें।

प्रिय पाठक देखें कि वेद ने "ते-नो-जानन्तु-आयत:" इस एक ही वाक्य में गार्हस्थ्य जीवन को सुखमय बनाने के लिए कितने सुन्दर तथा सारगर्भित विचारों को व्यक्त किया है।

यह है "वैदिक आदर्श गार्हस्थ्य जीवन", जिसका दिग्दर्शन मैंने अपनी इस रचना में एक वेद मन्त्र के आधार पर प्रिय पाठकों के सम्मुख किया है। यदि हमारे युवक-युवतियों ने अपने गार्हस्थ्य जीवन को इस वैदिक सांचे में ढालने का प्रयत्न किया तो मैं अपने इस प्रयास को सफल समझूंगा।

धार्मिक तथा सर्वश्रेष्ठ वैदिक साहित्य

श्री पं० हरिदेव आर्य द्वारा सम्पादित

मधुर भजन पुष्पांजली (प्रथम भाग)	१०.०
मधुर पुष्पांजली (द्वितीय भाग)	१२.००
प्रभात गीत (जलसे-जलूसों में गाये जाने वाले भजनों का संग्रह)	२.५०
वैदिक नित्यकर्म विधि (षष्ठ संस्करण)	१८.००

श्री पं० व्रजपाल शर्मा 'कर्मठ'

कर्मठ गीतांजली (प्रथम भाग)	२.००
कमठ गीतांजली (द्वितीय भाग)	३.००
वैदिक सरल गीत श्री सत्यपाल "सरल"	३.००
रोगों की सरल चिकित्सा : श्री स्वामी स्वरूपानन्द	६ ००
अमर दीप : श्री प्रणव शास्त्री	४.००
तरंगित हृदय : श्री राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	६.००
सुधारक-सन्देश : श्री रघुवर सिंह 'सुधारक'	३.५०
महिला गीतांजली : बहिन सुशीला	६.००
उत्तर रामचरित (हिन्दी काव्य) श्री भंवरलाल शर्मा	६.००
राजस्थान के आर्यमहापुरुष : डा० भवानीलाल 'भारतीय'	१५.००
तड़प वाले : तड़पाती जिनकी कहानी (प्रथम) : प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु	१८.००
तड़प वाले : तड़पाती जिनकी कहानी (द्वितीय) : " " "	३०.००
यजुर्वेद शतकम् : श्री सच्चिन्दानन्द शास्त्री	१४.००
उपनिषद् प्रकाश : स्वामी दर्शनानन्द	५०.००
परमेश्वर पुत्र 'ईसा' : श्री जगदीश्वर वानप्रस्थ	१४.००
शिक्षाप्रद, ऐतिहासिक कहानियां : श्री सच्चिदानन्द शास्त्री	१५.००
मधुर शिष्टाचार ओर सदाचार : श्री राजपाल सिंह शास्त्री	१४.००
आर्य युवक संदेश : श्री मांगे राम एम. ए.	४.००
सुखी गृहस्थ : प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु'	५.००
नारी दर्पण : श्री सच्चिदानन्द शास्त्री	१५.००
यज्ञोपवीत मीमांसा : श्री सच्चिदानन्द शास्त्री	३.००

अन्य सभी प्रकार के वैदिक साहित्य के लिए प्रकाशक एवं विक्रेता से सम्पर्क कीजिए ।

वैदिक-प्रकाशन

आर्यसमाज मन्दिर, २८०४-बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

फोन : २६८२३१ : ५१३२०६

वैदिक कर्मकाण्ड के लिए उपयोगी साहित्य

वैदिक नित्य कर्म विधि (पं० हरिदेव आर्य, एम०ए०) १५)

हवन मंत्र की अपने ढंग की नवीनतम पुस्तक है। अपने गुणों के कारण छटा संस्करण आपके हाथ में है। सभी मंत्र मोटे टाईप में हैं। दो रंग में छपाई, और विशेषता यह है कि इसमें जन्म दिन, वर्षगांठ, सगाई, गोद भरना, वर तथा बारात का स्वागत. व्यापार का शुभारम्भ, भवन-शिलान्यास, क्रिया सम्बन्धी (उठाला), शुद्धि संस्कार पद्धति, यजुर्वेद के ४०वें अध्याय से युक्त। २३ × ३६ का वड़ा साईज, आकर्षक टाईटिल/पृष्ठ १६० है।

वैदिक सत्संग पद्धति (पं० हरिदेव आर्य, एम०ए०) ६)

इस पुस्तक में मोटे अक्षरों में मन्त्र और प्रत्येक मंत्र के प्रारम्भ में 'ओ३म्' लगाया गया है। संध्या, प्रातःकाल का यज्ञ सायंकाल का यज्ञ, प्रातः और सायं काल दोनों समय का यज्ञ, विशेष यज्ञ, आदि सब अलग-अलग हैं। बार-बार पृष्ठ बदलने की आवश्यकता नहीं। इनके अतिरिक्त प्रभु भक्ति के भजन, अमावस्या-पूर्णिमा आदि के विशेष मन्त्र, संगठन सूक्त आदि से परिपूर्ण है। पृष्ठ सं० ७६।

वैदिक नित्य कर्म विधि (गुटका) १.५०)

सम्पूर्ण संध्या, हवन, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, अमावस्या-पूर्णिमा आदि सभी आवश्यक विधि इसमें है। पृष्ठ सं० ६४ है।

वेद पारायण बृहद यज्ञों का विधि-विधान (पं० सुरेन्द्र शर्मा गौड़) ४)

पं० जी ने अपने विशेष अनुभवों के आधार पर इस पुस्तक को तैयार किया है। वेद पारायण यज्ञों की एक एकरूपता का प्रचलन हो।

वैदिक विवाह संस्कार विधि (पं० महेन्द्र कुमार शास्त्री) १५)

आवश्यक सभी स्थलों की व्याख्या, दो रंग में, मोटे अक्षर, आकर्षक टाईटिल, बढ़िया आफसेट कागज।

Vedic Marriage Procedure
(Dr. Roop Kishor Shastri) ८)

अंग्रेजी और संस्कृत भाषा में प्रकाशित, आफसेट पेपर, आकर्षक टाईटिल।

वैदिक प्रार्थना (पं० जगत कुमार शास्त्री, साधुसोमतीर्थ) ८)

३१ मन्त्रों का पदार्थ. भावार्थ और प्रार्थना। प्रतिदिन एक मंत्र का पाठ।

इनके अतिरिक्त स्वाध्याय हेतु प्रेरणाप्रद ग्रन्थों के लिए बृहद् सूची पत्र मंगायें।

वैदिक-प्रकाशन

आर्यसमाज मन्दिर, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

सभी प्रकार के वैदिक साहित्य हेतु सम्पर्क कीजिए

सम्पूर्ण वेद का सैट			५५०-००
सत्यार्थ प्रकाश (स्थूल)			४०-००
सत्यार्थ प्रकाश			१२-००
ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका			२०-००
व्यवहार भानुः			२-००
योग प्रवेश	१०-००	योग जीवन	१०-०
योग रश्मि	३०-००	योग चेतना	१०-००
yog Rashmi (English)	३०-००	Door Way to yog	१०-००
Towards yog			१०-००
परमेश्वर पुत्र ईसा			१४-००
संस्कार विधि			१०-००
अच्छी-अच्छी कथाएं	१८-००	रामायण : एक अध्ययन	१८)
प्रभु भक्त दयानन्द	५-००	योग और स्वास्थ्य	१५-००
आदर्श गार्हस्थ्य जीवन			१८)
आर्य युवक सन्देश			४-००
बाल महाभारत	१२-००	बाल रामायण	८-००
चिकित्सा आलोक			४०-००
सचित्र रस शास्त्र			४०-००
आयुर्वेदिक द्रव्य गुण-विज्ञान			४०-००
सचित्र प्रसूति शास्त्र			४०-००
राजस्थान के आर्य महापुरुष			१५-००
सती प्रथा वेद विरुद्ध है			१-५०
किसानो जागो	३-००	कुशवाहों का इतिहास	५०-००
जाट महान्	५-००	जाटों का इतिहास	५०-००
वैदिक संस्कार रहस्य (प्रथम भाग)	१५-००	आनन्द रत्न	४-००

मधुर-प्रकाशन

२८०४, गली आर्यसमाज, बाजार सीताराम

दिल्ली-११०००६

महापुरुषों के जीवन-चरित्र पढ़ें

स्वामी विरजानन्द (स्वामी वेदानन्द सरस्वती) १५)
सर्वविध क्रान्ति के प्रवर्त्तक स्वामी विरजानन्द जी का जीवन-चरित एक बार अवश्य पढ़ें। महर्षि दयानन्द सरस्वती के गुरु। टाइटिल विशेष आकर्षक।

महर्षि दयानन्द (विद्याभास्कर रामेश्वर शास्त्री) ३)
बालोपयोगी संस्करण। सम्पूर्ण जीवनी। मोटा टाइप।

दर्शनानन्द सरस्वती (डा० भवानी लाल 'भारतीय) २-५०
अनेक पुस्तकों के लेखक, तार्किक शिरोमणि, अनेक गुरुकुलों के संस्थापक, अनेक शास्त्रार्थ करने वाले की जीवनी अवश्य पढ़ें

अमर कहानी वीर हकीकत राय (प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु') ५)
बलिदानी आर्य युवक की सच्ची कहानी। मोटा टाईप।

स्वामी श्रद्धानन्द (पं० हरिदेव आर्य, एम० ए०) २०)
संघर्षमूर्ति स्वामी श्रद्धानन्द की जीवनी तथा उनके द्वारा लिखित ग्रन्थों में से संग्रहीत सूक्तियां (कुटेशन्स)

श्री लालबहादुर शास्त्री (श्री परमेश शर्मा, एम० ए०) १२)
भारत के प्रधानमन्त्री श्रीशास्त्री जी की प्रेरणाप्रद जीवनी और संस्मरण पढ़िये।

लोह-पुरुष चौ० चरण सिंह (श्री परमेश शर्मा, एम० ए०) १४)
मनसा-वाचा-कर्मणा, स्वदेशी और सात्विक जीवन जीने वाले चौधरी साहब की कथनी और करनी में अन्तर नहीं था।

व्यक्ति से व्यक्तित्व (प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु') २०)
स्व० पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय की विस्तृत जीवनी।

आत्म-कथा - पं० रामप्रसाद 'बिस्मिल' श्री राजपाल सिह शास्त्री, १०)
क्रान्तिकारी श्री बिस्मिल जी ने आत्म कथा, जो फांसी से तीन दिन पहले कारावास में बैठकर लिखी। ओजस्वी भाषा में पढ़ें।

क्रान्ति के अग्रदूत (श्री सच्चिदानन्द शास्त्री) १२)
अनेक दिवंगत क्रान्तिकारी आर्य वीरों की जीवनी पढ़िये।

लाला लाजपत राय (प्रो० राजेन्द्र 'जिज्ञासु') १६)
आर्यवीर, श्री लाला जी की जीवनी ओजस्वी भाषा में पढ़ें। आकर्षक टाईटिल, बढ़िया कागज।

इनके अतिरिक्त अनेक जीवनोपयोगी साहित्य के लिए बृहत् सूचीपत्र मंगायें।

मधुर-प्रकाशन

२८०४-गली आर्यसमाज, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

नित्यप्रति स्वाध्याय योग्य पुस्तकें

पुस्तक	लेखक	मूल्य
जगमगाते हीरे	(श्री हरिदेव आर्य, एम० ए०)	८-००
ईश्वर की सत्ता और उसका स्वरूप	(डॉ० रणजीत सिंह)	४-००
ओ३म् नाम का आश्रय	(डॉ० रणजीत सिंह)	१-००
यजुर्वेद शतकम्	(श्री सच्चिदानन्द शास्त्री, एम० ए०)	१४-००
तड़प वाले : तड़पाती है जिनकी कहानी (प्रथम भाग)	(प्रो० जिज्ञासुजी)	१८
” ” ” ” ” (द्वितीय भाग)	” ”	३०)
एकता का शंखनाद	(प्रो० राजेन्द्र जिज्ञासु)	६)
दयानन्द दर्शन	(प्रो० ज्वलन्त कुमार शास्त्री)	३)
सती प्रथा वेद विरुद्ध है	” ”	१.५०
हवन-यज्ञ और विज्ञान	(स्वामी वेदमुनि परिव्राजक)	१-५०
आर्ष गीता	(डॉ० भवानीलाल 'भारतीय')	८)
कर्म और भोग	(स्वामी अखिलानन्द सरस्वती)	१२)
सामवेद (भाषा भाष्य)	(श्री पं० हरिशरण सिद्धान्तालंकार) पूर्वार्चिक	७०)
सामवेद (भाषा भाष्य)	(श्री ” ” ” उत्तरार्चिक)	१३०)
वैदिक प्रार्थना	(श्री पं० जगत्कुमार शास्त्री)	८)
ब्रह्मचर्य-प्रदीप	(” ” ”)	८)
श्वेताश्वतरोपनिषद्	(” ” ”)	१५-००
यम-नियम-प्रदीप	(” ” ”)	८-००
स्वस्ति-सुधा-शान्ति-सुधा	(” ” ”)	५-००
उपनिषद्-प्रकाश	स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती)	६०)
दर्शनानन्द ग्रन्थ संग्रह	(” ”) ६ प्रसूनों में	—४८)
वैदिक धर्म परिचय	(श्री जगदेव सिंह शास्त्री, 'सिद्धान्ती'	६)
छात्रोपयोगी विचार माला	” ”	६)
तत्त्व ज्ञान	(श्री आनन्द मुनि वानप्रस्थ)	१०)

मधुर-प्रकाशन

२८०४, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६

फोन—२६८२३१—५१३२००६

आचार्य भद्रसेन द्वारा लि

जन्म १६०० ई० — निधन २७-१-१६७५ ई०

१. आदर्श गार्हस्थ्य जीवन
२. योग और स्वास्थ्य
३. प्रभुभक्त दयानन्द तथा उनके आध्यात्मिक उपदेश

शीघ्र प्रकाशित होने वाला साहित्य

१. आदर्श की ओर
२. यौगिक प्राकृतिक तथा आयुर्वेदिक चिकित्सा, ३. प्राणायाम,
४ हम आर्य हैं, ५. आर्य कर्त्तव्यादर्श ।

वैदिक प्रकाशन दिल्ली-६

प्रमुख वितरक —

मधुर प्रकाशन

२८०४, गली आर्यसमाज, बाजार सीताराम, दिल्ली-११०००६